(१५)

बहादुर बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी० आइ० ई० कृत

# कपालकुण्डला

---

एफ़, डब्लू कौफर के. सी. आइ. ई., एम. ए.,
डिरेक्टर ओफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन बङ्गाल के
आज्ञानुसार

प्रताप नारायण मिश्र द्वारा अनुवादित

ग्रियर्सन साहिब बहादुर सी. आइ. ई., पी. एच. डी.,
अनुमोदित

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बाँकीपुर
प्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित
१९१४
दूसरी बार—दाम ॥=)

# KAPAL-KUNDALA.

## A ROMANCE

BY

THE LATE RAI BAHADUR

**BANKIM CHANDRA CHATTERJEE, C. I. E.**

TRANSLATED

FROM BENGALI INTO HINDI

AT THE SUGGESTION OF

DR. G. A. GRIERSON, PH. D., C. I. E., ETC.

*Indian Civil Service and Director of*

*The Linguistic Survey of India*

AND UNDER THE DIRECTIONS OF

SIR ALFRED W. CROFT, M. A., K. C. I. E.,

*Director of Public Instruction, Bengal,*

BY

THE LATE PANDIT PRATAP NARAYAN MISRA

EDITOR, "BRAHMAN" ETC.

---

[illegible] CHANDI PRASAD SINHA

AT THE KHADGA VILAS PRESS,

**BANKIPUR**

1914

# कपाल-कुण्डला।

## प्रथम खण्ड।

---

## प्रथम परिच्छेद।

---

### सागरसंगम।

"Floating straight obedient to the stream."

"सीधी बहत धार सब देखो।"

*Comedy of Errors*

य: ढाई सौ वर्ष हुए कि एक दिन माघ मास में थोड़ी र
त्रियों को एक नौका गंगासागर से फिरी आती थी। पो
और अन्यान्य नाविक दस्युओं के भय से यात्रियों को न
ब के आती जाती थीं; किन्तु यह नौका अकेली ही थी, ए
रण यह था रात्रि शेष होने पर कुहरे से सब दिशा व

हो गई थीं। अतः नाविक दिशा का निश्चय न कर सकने के कारण बन्दर से दूर हो गये थे। इस समय उन्हें यह निश्चय न था कि नाव किस दिशा में और कहां जा रही है। सब नौकारोही सो गये थे केवल एक वृद्ध और एक युवा,—यही दो व्यक्ति जाग्रत अवस्था में वृद्ध युवक के संग कथोपकथन करता था। इतने में वृद्ध ने कहा, बातें रोक के मांझी से पूछा "क्यों मांझी! आज कितनी दूर जा सकोगे?" वह कुछ सोच विचार के बोला, "कह नहीं सकते"। इस पर वृद्ध क्रुद्ध होके मांझी का तिरस्कार करने लगा। युवक ने कहा "महाशय! जो बात ईश्वर के हाथ में है उसे पण्डित भी नहीं कह सकते, यह मूर्ख क्या कहेगा? आप घबराइये मत।"

वृद्ध ने उग्रभाव से कहा "क्या कहा, घबराऊं मत? दुष्टलोग बीस पचीस बीघा धान काट ले गये, अब वर्ष दिन तक लड़के बाले क्या खायंगे?"

यह संवाद उस ने गंगासागर पहुंचने पर लौटि आए कुछ यात्रियों के मुंह से सुना था। युवा ने कहा "इस से तो पण्डित ने कहा था कि आप के घर में दूसरा कोई प्रबंध करनेवाला नहीं है, इस लिये आप की यात्रा उत्तम नहीं है।"

वृद्ध ने पूर्ववत् क्रोध से कहा, "हम न आते? तीन पन बीत गए चौथे में पांव रक्खा है; अब भी परलोक का कार्य न करें फिर कब करेंगे?"

युवा ने कहा "यदि शास्त्र देखिए तो जान पड़ेगा कि तीर्थ-दर्शन में जैसा पारकालिक कर्म होता है, उसी प्रकार घर बैठे भी हो सकता है।" वृद्ध ने कहा "तो तुम क्यों आए?"

युवा ने उत्तर दिया " हम तो पहिले ही आप से कह चुके है कि समुद्र देखने की बड़ी इच्छा थी, इसी लिये आए हैं।" फिर पूर्व की अपेक्षा कुछ मृदुस्वर से कहने लगा, "अच्छा ! जो कुछ देखा है उसे जन्मान्तर में भी न भूलूंगा।"

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।

आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा॥

इस के कान कविता की ओर न थे, नाविक लोग जो परस्पर बातचीत करते थे, वही वह ध्यान पूर्वक सुनता था। एक नाविक दूसरे से कहता था " अरे भाई ! इतना बड़ा काम बिगड़ गया। हम लोग नदी से बाहर निकलके न जानें महासमुद्र में आपड़े वा किसी दूसरे देश में आगये, कुछ समझ ही नहीं पड़ता।"

कहने वाले का स्वर अत्यंत भयकातर था। इस ने समझा कि विपद की आशंका का कोई हेतु उपस्थित है, इस से सशंकित होके पूछा "मांझी ! क्या हुआ ?" मांझी ने उत्तर नहीं दिया। किन्तु युवक उत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर आया। और देखा कि प्रभात हुआ चाहता है, सब दिशा सघन कुहरे से ढकी है, आकाश, नक्षत्र, चंद्र और उपकूल किसी ओर कुछ भी नहीं दिखाई देता; समझे मल्लाहों को दिग्भ्रम हो गया है। इस समय किधर जाते हैं सो भी निश्चय नहीं होता। पीछे कहीं बड़े समुद्र में पड़ के अकूल में मारे न जायं इसी आशंका से भयभीत हुए हैं।

हिमनिवारण के लिये सामने आवरण ( परदे ) पड़े थे। इस लिये आरोही लोग भीतर से इन सब विषयों को कुछ भी न जान सके, किन्तु युवक ने सब वृत्तान्त जान के इन से कहा, तब नौका

में महा कोलाहल होने लगा, नाव में जो स्त्रियां थीं, उन में से कई इसी कोलाहल से जग उठीं और सुनते ही आर्त्तनाद करने लगीं। बूढ़े ने कहा "किनारे उतर पड़ो! किनारे उतर पड़ो! किनारे उतर पड़ो!!!" युवा ने ईषत् हास्य करके कहा "जो यह जानते कि किनारा कहां है तो इतनी विपत्ति क्यों होती?"

यह सुन के नौकारोहियों का कोलाहल और भी बढ़ गया। युवा ने किसी प्रकार उन लोगों को शान्त करके मांझियों से कहा, "कोई डर की बात नहीं है, प्रभात हुआ—चार पांच दंड के भीतर अवश्य सूर्योदय होगा। और चार पांच दंड के मध्य नाव भी कदाचित् नहीं डूबेगी। तुमलोग अब खेना मत; धारा में नाव को छोड़ दो, चाहे जिधर जाय। फिर सूर्योदय होने पर विचार किया जायगा।

नाविकगण इस परामर्श से संमत हो के उसी प्रकार आचरण करने लगे।

बहुत देर तक मांझी लोग थमे रहे। यात्रियों का प्राण भय से कंठागत था, विशेष वायु नहीं थी, इस लिये तरंगांदोलन कम्प विशेष नहीं जान पड़ा तथापि सभी ने निश्चय किया कि मृत्यु निकट है। मनुष्य लोग चुपचाप दुर्गाजी का नाम जपने लगे, स्त्रीजन उच्चैःस्वर से अनेक शब्द विन्यासपूर्वक रोने लगीं।

एक स्त्री गंगासागर में संतान विसर्जन कर आई थी, लड़के को जल में फेंक कर फिर से लड़के को नहीं निकाला था, केवल वही नहीं रोई। प्रतीक्षा करते २ प्रायः पहर भर दिन चढ़ा। इसी अवसर में नाविक लोग दर्या के पांच पीरों का नाम कीर्तन कर के महा कोलाहल करने लगे सभी यात्री पूछने लगे, "क्या है

क्या है! मांझी! क्या हुआ?" मांझी लोग भी एक संग कोलाहल करके कहने लगे "धूप निकली, धूप निकली, वह देखो किनारा!" सब यात्रीगण उत्सुक होके नाव के बाहर आकर 'कहां आए, क्या वृत्तांत है?' देखने लगे। देखा कि सूर्योदय हुआ है। कुहरे के अंधकारराशि से दिङ्मंडल एकबार ही मुक्त होगया है। एक प्रहर से अधिक दिन चढ़ आया है। जहां नाव पहुंची है, वह प्रकृत महासमुद्र नहीं है, केवल नदी का मुहाना है; किन्तु वहां पर नदी जैसी विस्तृत है वैसा विस्तार दूसरी जगह नहीं दिखाई देता। नदी का एक किनारा समीप है, जो अनुमान पचास हाथ के लगभग दूर होगा, किन्तु दूसरे किनारे का चिन्ह तक नहीं दिखाई देता। और जिस ओर देखो, उसी ओर अनन्त जलराशि चंचल सूर्य की किरणों से प्रदीप्त होके गगन प्रान्त में आकाश से मिल रही है। निकटस्थ जल कर्दममय नदियों के जल के सदृश है, पर दूर का पानी नील वर्ण है, आरोहियों ने ठीक सिद्धान्त किया था कि हमलोग महा समुद्र में आपड़े हैं, परन्तु सौभाग्य यह था कि उपकूल निकट है। कुछ भय की बात नहीं है। सूर्य की ओर देख के दिशा का निश्चय किया। सामने जो उपकूल देखते थे, वह सहज ही समुद्र का पश्चिम किनारा प्रतीत हुआ। नौका से थोड़ी दूर किनारे पर एक नदी का मुख मंदगामी कलधौत प्रवाह की भांति आके गिरता था। संगम स्थल के दहने किनारे बलुई भूमि पर अनेक प्रकार के असंख्य पक्षिगण क्रीड़ा करते थे। अब इस नदी ने "रसूलपुर की नदी" नाम धारण किया है॥

# द्वितीय परिच्छेद ।

## उपकूल ।

"Ingratitude ! Thou marble-hearted fiend !—"

" तेरो हियो पखान, है कृतघनता राकसी ।"

*King Lear*

आरोहियों की स्फूर्तिव्यंजक बातें समाप्त हुईं। माझियों ने प्रस्ताव किया कि ज्वार के आने में विलंब है; इस अवकाश में आप लोग सामनेवाली रेता पर रसोई कर लीजिये, तदनंतर जलो च्छ्वास आरंभ होने पर अपने देश की ओर यात्रा करेंगे; आरोहियों ने भी इस परामर्श में संमति दी तब नाविकों ने तीर पर नौका लगादी, यात्री लोग उतर के स्नानादि प्रातःकृत्य संपादन करने में प्रवृत्त हुए। इस के अनंतर भोजन बनाने के उद्योग में और एक विपत्ति उपस्थित हुई। नाव पर ईंधन नहीं था। व्याघ्र के भय से काष्ठादि लाने के लिये कोई ऊपर जाने में स्वीकृत भी नहीं हुआ। अंत में सभी के उपवास का लक्षण देख के वृद्ध ने पुर्वोक्तयुवक से कहा, " बाबू नवकुमार ! तुम इस का उपाय न करोगे तो हमसबों के प्राण जायंगे। "

नवकुमार थोड़ी देर चिन्ता करके कहा, " अच्छा हम जायंगे, कुल्हाड़ी दे दो और एक आदमी दाब लेके हमारे संग आओ। "

किसी ने नवकुमार के संग जाना स्वीकार न किया " खाने के समय समझा जायगा" यह कह कर कमर बांध के नवकुमार अकेले कुठार लेके लकड़ी लाने चले।

कगार के ऊपर चढ़के नवकुमार ने देखा कि जहां तक दृष्टि जाती है, उसकी दूर तो कहीं भी बस्ती का लक्षण कुछ नहीं दीख पड़ता; केवल वन दिखाई देता है। किन्तु वह वन विशाल वृक्षा-वली शोभित वा निविड़ वन न था—केवल कहीं २ उद्भिज के मण्डल से कोई २ भूखंड व्याप्त था। नवकुमार ने उन वृक्षों में लेने योग्य काष्ट न देखा; सुतरां उपयुक्त वृक्ष की खोज में नदीतट से अधिक दूर गमन करना पड़ा, अन्त में काटने योग्य एक वृक्ष देख के उस में से प्रयोजन भर काष्ट ले लिया। उस का बोझा लेके आना भी एक विषम व्यापार बोध हुआ। नवकुमार दरिद्र के बालक नहीं थे; अतः इन सब कामों से अभ्यास न था। बिना पूर्वा-पर विचारे लकड़ी लाने आये थे, किन्तु अब काष्टभार का ढोना अतीव कष्टकर हुआ। जो हो, जिस काम में प्रवृत्त हुए थे, उस में थोड़े से कष्ट से क्लान्त होना नवकुमार का स्वभाव न था, इस लिये जैसे तैसे गट्ठर सर पर ले चले, थोड़ी दूर चले, फिर क्षण भर बैठ के विश्राम करें फिर चलें, इसी प्रकार आने लगे।

इसी कारण नवकुमार के आने में विलंब हुआ, इस से साथवाले उद्विग्न होने लगे। उन लोगों को यह आशंका हुई कि नवकुमार को व्याघ्र ने मार डाला। संभाव्य काल के अतीत होने से उन लोगों के मन में यही स्थिर सिद्धान्त हो गया। पर किसी को भी इतना साहस न हुआ कि किनारे से थोड़ी दूर भी आगे जाके अनुसंधान करें।

नौकारोही लोग इसी प्रकार कल्पना करते थे। इसी अवसर में जलराशि में भीषण लहरें उठने लगीं। मांझियों ने समझा कि

ज्वार आ गया। वे अच्छी तरह जानते थे कि इन २ स्थानों में जलोच्छ्वास के समय तट प्रदेश में ऐसा तरंगाघात होता है कि उस समय तीर रहने से भी नौका खण्ड २ हो जाती है। इस लिये वह लोग अति व्यस्त होके नौका का बंधन खोल के नदी के बीच जाने लगे। नाव खुलते २ सम्मुखस्थ वालुकाभूमि जल में डूब गई, केवल यात्रियों ने बड़ी कठिनता से नाव पर चढ़ने का अवकाश पाया। तंडुल आदि जो कुछ बाहर था सो सब डूब गया। दुर्भाग्यवश नाविक निपुण नहीं थे; अत नौका को सम्भाल भी न सके; प्रबल प्रवाह वश नौका को रसूलपुर की नदी में ले चला। एक आरोही ने कहा, "नवकुमार तो रह गये?" एक मांझी बोला, "अह! नवकुमार तुम्हारा कौन है? उसे स्यार खा गये।"

जल वेग से नौका को रसूलपुर की नदी में लिए जाता है, फिर प्रत्यावर्त्तन करने में बड़ा क्लेश होगा, इस लिये नाविक लोग उस के बाहर लाने के लिये प्राणपण से चेष्टा करने लगे। यहां तक कि इस माघ महीने में भी उन लोगों के ललाट से स्वेदबिन्दु टपकने लगे। यद्यपि इस प्रकार परिश्रम करके रसूलपुर की नदी से बाहर आने लगी, किन्तु नाव जैसे बाहर आई, वैसे ही वहां के प्रबलतर स्रोत से उत्तर मुख होके तीर के तुल्यवेग से बह चली। नाविक लोग उसे तिलार्द्ध मात्र भी नहीं रोक सके, इस बेर नौका नहीं फिरी।

जब जल का वेग इतना मंद हो गया था कि नाव की गति रोकी जा सकै, तब तक यात्री लोग रसूलपुर के मुहाने को लांघ के अधिक दूर चले आये थे। अब नवकुमार के लिये प्रत्यावर्त्तन

किया जाय कि नहीं इस विषय की मीमांसा होने लगी। यहीं पर कहना आवश्यक है कि नवकुमार के संग के यात्री उन के पड़ोसी मात्र थे, कोई आत्मीयबंधु न था। उन लोगों ने विवेचना करके देखा कि यहां से प्रतिवर्त्तन करना एक भाठा का काम है। पीछे रात्रि हो जायगी, फिर रात में नाव न चल सकैगी, अतएव दूसरे दिन के ज्वार की प्रतीक्षा करनी होगी तब तक सब को निराहार रहना होगा। दो दिन निराहार रहने से सब का प्राण होठों पर आ रहेगा। विशेषत: लौटने में नाविक लोग असम्मत हैं। वे लोग बात नहीं मानते हैं, कहते हैं कि नवकुमार को बाघ ने मार डाला है। यही संभव भी है। तो फिर किस लिये इतना क्लेश स्वीकार करें? इस प्रकार विवेचना करके नवकुमार को छोड़ के यात्री लोगों ने स्वदेश जाना ही उचित समझा। नवकुमार इस भयानक समुद्रतीर बनवास के लिये विसर्जित हुए।

यह सुन के यदि कोई प्रतिज्ञा करै कि कभी किसी के उपवासनिवारण के लिये लकड़ी लाने न जायगे—तो वह उपहास के योग्य है। आत्मोपकारी को बनवास के लिये विसर्जन करने की जिन लोगों की प्रकृति है, वे लोग चिरकाल अपने उपकारी को बनवास देंगे। पर जितनी बार बनवासित क्यों न करिये, दूसरे के लिये काष्ट लाना जिन का स्वभाव है वह फिर भी दूसरे के लिये लकड़ी लाने जायेंगे। "तुम अधम हो"—इस से मैं उत्तम न होऊं, सो क्यों?

---

# तृतीय परिच्छेद।

## विजन।

"—Like a veil,
Which if withdrawn, would but disclose the frown
Of one who hates us, so the night was shown
And grimly darkled o'er their faces pale
And hopeless eyes."

" इन के पियरे बदन निरासिनि अंखियन ऊपर।
इमि भयकारक अंधकार छायो रजनी कर॥
जिमि क्रोधातुर बैरिवदन दरसावनहारी।
अति अनभावनहारि जवनिका परति निहारी॥

*Don Juan*

जिस स्थान में नवकुमार को परित्याग कर के यात्री लोग चले गये थे, उस स्थान से थोड़ी ही दूर पर दौलतपुर और दर्यापुर नामक दो छोटे गांव इस समय दिखाई पड़ते हैं। किन्तु जिस समय का वर्णन करने को हम प्रवृत्त हैं, उस समय वहां पर मनुष्यों की बस्ती का कोई ठीक न था, केवल अरण्य था। किन्तु बंगाल देश के और २ ठौर में प्राय: जिस प्रकार की भूमि अनुद्घातिनी है, इस प्रदेश की वैसी नहीं है। रसूलपुर के सामने से सुवर्णरेखा पर्यंत बराबर कई योजन पथ व्याप्त कर के बालुकास्तूपश्रेणी विराज रही है। और कुछ ऊंचा होने से इस बालुकास्तूपश्रेणी को बालू की छोटी पर्वतश्रेणी कह सकते हैं। अब उसे लोग बालू की भूमि ( बालियाड़ी ) कहते हैं। इन सब

बालू भूमि की धवल शिखरमाला मध्याह्न की सूर्यकिरण में दूर से अतीव प्रभाविशिष्ट दिखाई पड़ती है। उन के ऊपर ऊंचे २ वृक्ष नहीं उगते। स्तूप के नीचे एक सामान्य छोटा सा बन जमता है किन्तु मध्यभाग वा ऊपर के भागों में प्रायः छायाशून्य धवल शोभा ही विराजती है। अधोभाग के भूषण करने वाले वृक्षों में झाड़ी बनझाऊ और बनपुष्प ही अधिक हैं।

ऐसे अप्रफुल्लकर स्थान में नवकुमार संगियों से छूटे थे। उन्हों ने प्रथम लकड़ी का बोझा लेके नदी तीर पर आके नौका को न देखा, तब उन्हें अकस्मात् अत्यन्त भय संचार हुआ, किन्तु सभी लोग हमें एकबारही परित्याग कर गये हैं, यह बोध न हुआ। विवेचना की कि जलोच्छ्वास में सैकतभूमि के प्लावित हो जाने से लोगों ने निकटस्थ किसी स्थान में नौका की रक्षा कर ली है, हम शीघ्र ही उन का संधान कर लेंगे, इसी प्रत्याशा से कुछ देर तक वहीं बैठ के प्रतीक्षा करने लगे, किन्तु नाव न आई। नौकारोही भी कोई न दिखाई पड़े। नवकुमार क्षुधा से अत्यंत पीड़ित हुए। अतः विशेष प्रतीक्षा न कर के नौका के संधान के लिये नदी के किनारे २ घूमने लगे। पर कहीं भी नौका का संधान न पाया तो लौट कर पूर्वस्थान पर चले आए। तब तक नौका न देख कर सोचा कि ज्वार के वेग से नौका बहगई होगी; अब प्रतिकूल सोत ( धारा ) में प्रत्यागमन करने से अगत्या संगी लोगों को विलम्ब हो रहा है। किन्तु ज्वार भी शेष हो गया। तब सोचे कि प्रतिकूल धारा के अधिक वेग के कारण ज्वार में नाव फिर के नहीं आ सकी। किन्तु भाठा भी अवश्य फिर आता है, भाठा

भी धीरे २ अधिक हुआ—क्रम क्रम से दिन भी बोत चला; सूर्य्यास्त हुआ। यदि नौका को फिरना होता तो, अब तक फिर आती।

तब नवकुमार को विश्वास हुआ कि, या तो जलोच्छ्वास संभूत तरङ्ग में नौका जलमग्न हुई है, या संगीजन हमें इस विजन वन में परित्याग ही कर गये हैं।

नवकुमार ने देखा कि गांव नहीं, आश्रय नहीं, आग नहीं, भोजन का पदार्थ नहीं, पानी नहीं है; नदी का जल असह्य खारा है; अथच क्षुधा पिपासा से उन का हृदय विदीर्ण होता था। भयानक शीत के निवारण के लिये कोई आश्रय भी नहीं है; शरीर ढांपने के लिये वस्त्र तक नहीं है। इस तुषार के शीतल वायु संचारित नदी तीर पर, हिमवर्षी आकाश के नीचे, निराश्रय औ निरावरण शयन करना पड़ेगा। रात को बाघ भालुओं के सामना होने की संभावना है। फिर प्राणनाश ही निश्चित है।

मन की चंचलता से नवकुमार अधिक काल पर्यंत एक जगह नहीं ठहरते थे, वे कूल को छोड़ के ऊपर चढ़े, इधर उधर भ्रमण करने लगे। धीरे २ अंधेरा हो गया। मस्तक के ऊपर आकाश में नक्षत्रमंडली चुपचाप उदय होने लगी, जिस प्रकार नवकुमार के देश में निकलती थी, उसी प्रकार निकलने लगी। अंधकार में चारों ओर जनहीन था;—आकाश, प्रान्तर, समुद्र, सर्वत्र नीरव था, केवल अविरल कल्लोलित समुद्रगर्जन और कभी २ वन्यपशुओं का रवमात्र होता था। तथापि नवकुमार उसी अंधकार में शीत बसानेवाले आकाश के नीचे बालुकास्तूप के चारों ओर

भ्रमण करने लगे। कभी उपत्यका में, कभी अधित्यका में, कभी स्तूपतल में, और कभी स्तूपशिखर पर भ्रमण करने लगे। चलते २ प्रतिपद में हिंसक पशुओं से आक्रांत होने की सम्भावना थी। किन्तु एक जगह बैठे रहने में भी वही आशङ्का थी।

भ्रमण करते २ नवकुमार को श्रम हुआ। समस्त दिन अनाहार रहे थे, इस लिये अधिक थक गये। एक स्थल पर 'बालुकाभूमि' के पार्श्व में पीठ लगा के बैठे। गृह की सुखपूर्ण शय्या स्मरण हुई। जब शारीरिक और मानसिक क्लेश के अवसाद में चिन्ता उपस्थित होती है, तब कभी २ निद्रा भी संग हो आती है। नवकुमार चिन्ता करते २ तंद्राभिभूत हुए। जान पड़ता है, यदि ऐसा नियम न होता तो सांसारिक क्लेश का अप्रतिहत वेग सब कोई सब समय में न सहन कर सकते।

---

## चतुर्थ परिच्छेद।

### स्तूपशिखर।

"———विस्मय जुत देख्यो निकट,
भीषन दर्सन रूप।"

मेघनादबध।

जब समय नवकुमार की निद्रा भंग हुई, उस समय रजनी गंभीर थी। अभी तक जो व्याघ्र ने उन को हत्या नहीं की, यह उन्हें आश्चर्य बोध हुआ। इधर उधर निरीक्षण करके देखने लगे कि बाघ आता है कि नहीं एकाएक सम्मुख बहुत दूर पर

उजियाला देखा। पीछे कहीं भ्रम न हो इस लिये नवकुमार ध्यान लगा के उस की ओर देखने लगे। आलोक परिधि क्रम क्रम से वर्द्धितायन और उज्वलतर होने लगी,—और आग्नेय आलोक की प्रतीति हुई। इस से नवकुमार की जीवनाशा फिर से उद्दीप्त हुई। मनुष्य के समागम बिना इस आलोक की उत्पत्ति का संभव नहीं है, क्योंकि यह दावानल का समय नहीं है। नवकुमार टह आर कर उठे औ जिधर आलोक था, उसी ओर को चले। एक बार मन में विचारा, "यह भौतिक आलोक है?—हो भी सकता है; किन्तु शंका से निरस्त रहने ही से कैसे जीवन रक्षा होगी?" यह सोच के निर्भय चित्तपूर्वक आलोकको लक्ष्य करके चले। वृक्षलता, औ बालुकास्तूप प्रतिपद में उन का गतिरोध करने लगे। पर वे वृक्षलता को पददलित करके औ बालुकास्तूप को लंघन करके चले। आलोक के निकट पहुंच देखा कि एक अत्युच्च बालुकाशिखर के ऊपर अग्नि जलती है। उस की प्रभा से शिखरासीन मनुष्य की मूर्ति आकाशपट में चित्र की तरह दिखाई देती है। नवकुमार उस के पास पहुंचने की मनसा से पूर्णवेग के साथ चले। अंत में स्तूप के ऊपर आरोहण करने लगे। उस समय किंचित् शंका होने लगी तथापि अकंपित चरण से स्तूप के ऊपर आरोहण करने लगे। अस्तु निकट जाके जो कुछ देखा, उस से रोए खड़े होते थे। ठहरें, कि लौट चलें, कुछ स्थिर न कर सके।

शिखरासीन मनुष्य नयन मूंदे हुए ध्यान कर रहा था, उस ने पहले नवकुमार को नहीं देखा। नवकुमार ने देखा कि उस का वयःक्रम प्रायः पचास वर्ष का होगा। परिधान में कोई कपड़ा है

कि नहीं, यह नहीं दीख पड़ा ; क्योंकि कटिदेश से जंघा पर्यंत व्याघ्रचर्मद्वारा आवृत्त था। गले में रुद्राक्षमाला; प्रशस्त मुखमंडल; और श्मश्रुजटा परिवेष्टित था। सन्मुख काष्ट की ढेरी में अग्नि जलती थी,—इसी अग्नि के प्रकाश को लक्ष्य कर के नवकुमार यहां तक पहुंच सके थे। नवकुमार को एक प्रकार की विकट दुर्गंध मालूम हुई ; उस के आसन की ओर नेत्रपात करके उस का कारण निश्चय किया। जटाधारी एक सिरकटे गलित मृतक शरीर के ऊपर बैठा था। और भी भयपूर्वक देखा कि सन्मुख नरकपाल रक्खा है, उस में रक्तवर्ण द्रव पदार्थ भरा है। स्थान स्थान पर इधर उधर अस्थि पड़ी है,—यहां तक कि योगासीन पुरुष के कंठ की रुद्राक्षमाला में छोटे २ अस्थिखंड भी ग्रथित हैं। नवकुमार मंत्रमुग्ध से हो रहे। आगे बढ़ें कि स्थान परित्याग करें, कुछ सोच न सके। वह कापालिकों की कथा सुन चुके थे। समझे कि यह व्यक्ति कापालिक है।

जब नवकुमार पहुंचे थे उस समय कापालिक मंत्रसाधन में, वा जप में, अथवा ध्यान में लीन था। इस से इन्हें देख के भ्रूक्षेप भी न किया। अनेक क्षण पीछे जिज्ञासा की " कस्त्वं ?" नवकुमार ने कहा " ब्राह्मण "।

कापालिक ने कहा, "तिष्ठ" यह कह के पूर्व कार्य में नियुक्त हुआ। नवकुमार खड़े रहे।

इसी प्रकार आधा पहर बीत गया। अन्त में कापालिक उठ के नवकुमार से पूर्ववत् संस्कृत में बोला, "मामनुसर"। यह निश्चय कहा जा सकता है कि अन्य समय नवकुमार कदापि इस के संगी

न होते। किन्तु इस समय क्षुधा पिपासा से प्राण कंठागत है; अतएव बोले, "प्रभु की जैसी आज्ञा! किन्तु इस भूख प्यास से बहुत कातर हूँ, आज्ञा दीजिये कि कहां जाने से भोजन की सामग्री पाऊँगा?"

कापालिक ने कहा, "भैरवीप्रेरितोऽसि; मामनुसर, परितोषंमे भविष्यति।"

नवकुमार कापालिक के अनुगामी हुए। दोनों ने बहुत मार्ग अतिवाहित किया—मार्ग में किसी से कोई बात न कही। अन्त में एक पर्णकुटीर मिली—कापालिक ने पहिले प्रवेश करके नवकुमार को प्रवेश करने की अनुमति दी; और नवकुमार के अबोधगम्य किसी एक लकड़ी के टुकड़े से आग जलाई। नवकुमार ने उस के प्रकाश में देखा कि यह कुटीर सर्वांश में बड़े २ पत्तों से बना है। उस में कईएक व्याघ्रचर्म, एक कलशजल, और कुछ फल मूल हैं।

कापालिक ने अग्नि बाल के कहा, "फल मूल जो है, उसे आत्मसात् कर सकते हो। पत्ते का दोना बना के कलस का जल पीना। व्याघ्रचर्म पड़ा है, रुचि होय तो शयन करना। निर्विघ्न रहो—व्याघ्र का भय मत करना। दूसरे समय हम से भेंट होगी। जब तक साक्षात् न होय, तब तक इस कुटीर को मत छोड़ना।"

यह कह के कापालिक ने प्रस्थान किया। नवकुमार ने वह सामान्य फल मूल आहार कर और वही ईषत्तिक्त जलपान करके परम परितोष लाभ किया। पीछे व्याघ्रचर्म पर शयन किया, समस्त दिन जनित क्लेश वशत: शीघ्र ही निद्राभिभूत हुए।

## पञ्चम परिच्छेद।

### समुद्रतट।

" ——————योगप्रभावोनचलक्ष्यतेते।

विमर्षिथाकार मनिर्वृतानां मृणालिनीहैममिवोपरागम्॥"

रघुवंश।

प्रातःकाल उठ के नवकुमार सहजही घर जाने के उपाय में व्यस्त हुए; विशेषतः इस कापालिक के समीप रहना किसी तरह श्रेयस्कर ज्ञात न हुआ। किन्तु बिना बूझे समझे इस पथहीन वन के मार्ग से किस प्रकार निकलें? और किस प्रकार से पथ चीन्ह के घर जायें? कापालिक अवश्य पथ जानता होगा; पूछने से क्या न बता देगा? विशेषतः जहां तक देखा गया है, कोई शंकामूलक आचरण भी उस ने नहीं किया. तो कैसे वे भीत हों? इधर कापालिक ने इन्हें अपने पुनर्मिलाप के पूर्व कुटीर के त्याग का निषेध कर दिया था, और उस के अबाध्य होने से उसे क्रोध होने की संभावना है। नवकुमार सुन चुके थे कि कापालिक लोग मन्त्रबल से असाध्य साधन कर सकते हैं— इस लिये उस के अबाध्य होना अनुचित है। यही सब पूर्वापर सोच विचार के नवकुमार ने तब तक कुटीर ही में रहना स्थिर किया।

किन्तु क्रमे २ दिन ढल चला तथापि कापालिक न लौटा। प्रथम दिन उपवास, आज अभी तक अनशन, इस से क्षुधा प्रबल हो उठी। कुटीर में जो थोड़ा सा फल मूल था, वह पहलीही रात को खा लिया था—अब बिना कुटीर त्यागे वा फल मूल का अन्वेषण किये, प्राण जाता है। थोड़ा दिन रहने पर क्षुधा से व्याकुल

हो के नवकुमार फल के अन्वेषण के लिये बाहर निकले। फल की खोज में सारे वालुकास्तूपों के चारो ओर घूमने लगे। जो दो एक प्रकार के वृक्ष वालू में हुआ करते हैं, उन के फल को आस्वादन करके देखा कि एक वृक्ष का फल बादाम की तरह अत्यंत सुस्वादु है। उसी से क्षुधा को शांत किया।

उस वालू के स्तूपों की श्रेणी की चौड़ाई बहुत थोड़ी था, अतएव नवकुमार थोड़े ही काल परिभ्रमण करके उस के पार हुए। फिर वालूरहित घने वन में जा पड़े। जिन्हों ने क्षण भर भी अनजान वन में भ्रमण किया है, वे जानते हैं कि पथहीन वन में क्षण भर ही में पथभ्रांति हो जाती है। नवकुमार को भी वही हुआ। कुछ ही दूर जाने पर यह निश्चय न कर सके कि आश्रम को मार्ग को किस ओर छोड़ आए हैं। गंभीर जल का कल कल शब्द उन के कान में पहुंचा; उन्हों ने समझा कि यह समुद्र का गर्जन है। थोड़ी देर पीछे अकस्मात् वन में से बाहर हो के देखा कि सामने ही समुद्र है। अत्यन्त विस्तृत नीलजल का मण्डल सामने देख के उत्कट आनन्द से हृदय परिपूर्ण हो गया। बलुही तट पर आ के बैठ गये। फेनिल, नील, अनन्त समुद्र है! दोनों ओर जितनी दूर नेत्र जाते हैं, वहां तक तरंग के भंग से उठी फेन की रेखा है; स्तूपीकृत विमल कुसुम समूह से गुथी माला की भांति वह धवल फेनरेखा, हेमकान्त सैकत (वालुकामयटत) में सजाई हुई है; वह माना आगमकुन्तला धरणी के योग्य अलकाभरण है। नीले जल-मण्डल के सहस्रों स्थानों में फेन सहित तरंग उठ रही थीं। जो कभी ऐसे प्रचंड पवन का चलना संभव हो कि जिस के वेग से

मन्दपमाला सहस्र २ स्थानों से च्युत हो के नीले मेघ में आन्दोलित होता हो, तभी उस सागरतरंग भंग का स्वरूप दृष्ट हो सकता है। इस समय अस्तगामी दिनमणि की मृदुल किरण में नील जल का एकांश पिघले सुवर्ण की भांति प्रकाशमान था। किसी युरोपीय वणिकजाति का सिन्धुयान (जहाज) श्वेतपक्ष फैलाये हुए बृहत् पक्षी की भांति जलधिहृदय में बहुत दूर उड़ता सा जान पड़ता था। कितनी देर तक नवकुमार तट पर बैठे एकाग्र मन से समुद्र की शोभा देखते रहे, इस का मान उस समय उन्हें कुछ भी नहीं ज्ञात हुआ। पीछे एक बार ही प्रदोषतिमिर आके नीले जल पर बैठ गया। तब नवकुमार को चेत हुआ कि आश्रम का अनुसन्धान करना चाहिये। वे लंबी सांस ले कर उठ खड़े हुए। लंबी सांस क्यों ली? सो मैं नहीं कह सकता— उस समय उन के मन में किसी भूतपूर्व सुख का उदय होता था, यह कौन कहै? उठ कर समुद्र की ओर से पीछे फिरे तो देखा कि, एक अपूर्व मूर्त्ति है! उस गंभीर नाद वाले समुद्र तीर पर बालू की भूमि में अस्पष्ट संध्या के आलोक में खड़ी हुई अपूर्व रमणीय मूर्त्ति है। केशसमूह, खुला, बिखरा समिट कर हवा तक कहर रहा है; उस के आगे देह रत्न है, मानो चित्रपट के ऊपर चित्र दिखाई देता था। अलकावली की बगराहट से मुख-मण्डल अच्छी रीति से प्रकाशित नहीं होता था। तथापि बादल के टूकड़ों के बीच से छिटकी चांदनी की भांति प्रतीत होता था। विशाल लोचन में कटाक्ष अति स्थिर, नितांत स्निग्ध, अतीवगंभीर, और ज्योतिमय था। वह कटाक्ष, जभी समुद्र हृदय में खेलती

चंद्रकिरण की रेखा की भांति स्निग्ध, उज्ज्वल और दीप्तिमान था। केशों से कंधा भी दोनों बाहु ढके थे। दोनों कंधे तो एक बार अदृश्य ही था; पर दोनों बाहुओं की विमल श्री कुछ २ दिखाई देती थी। रमणी की देह सर्वथा निराभरण थी। मूर्त्ति में एक मोहनी शक्ति थी, वह वर्णन नहीं की जा सकती। अर्द्ध चंद्रनिःसृत कौमुदी का सा वर्ण था; और श्यामेघ के समान केशकूट थे। परस्पर के सान्निध्य से जो वर्ण और केश दोनों में श्रीविकसित हो रही थी, वह गंभीरनादी सागरतट पर संध्या समय के आलोक में बिना देखे उस की मोहिनी शक्ति अनुभूत नहीं हो सकती।

नवकुमार अकस्मात् ऐसे दुर्गमस्थल में देवीमूर्त्ति को देख के काठ की पुतली की तरह ठठके खड़े रहे। उन की वाक्शक्ति जाती रही—स्तब्ध हो के देखने लगे। रमणी भी निश्चल थी। उस ने टकटकी बांध कर विशाल नेत्र की स्थिर दृष्टि नवकुमार के खड़े मुख पर जमा दी। दोनों में इतना ही प्रभेद था कि, नवकुमार की दृष्टि चकित मनुष्य की भांति थी, और रमणी की दृष्टि में वह लक्षण किंचित् मात्र न था, परन्तु उस से विशेष उद्वेग का प्रकाश होता था।

अनन्तर समुद्र के जनहीन तट पर इसी भांति बहुत देर तक दोनों जने देखते रहे। क्षण भर पीछे तरुणी का कंठस्वर सुनाई दिया। उस ने अति मृदु स्वर से कहा, "पथिक! तुम पथ भूल गये हो?"

इस कंठस्वर के संग नवकुमार की हृदयतंत्री बज उठी

विचित्र हृदययंत्र का तंत्रीसमूह कभी २ ऐसा लयहीन हो जाता है कि कितना ही यत्न करो, किसी प्रकार परस्पर नहीं मिलता। किन्तु एक शब्द से, एक रमणीसंभूत स्वर से संशोधित हो जाता है। सभी एक लय में मिल जाता है। तभी संसारयात्रा सुखमय संगीत प्रवाह ज्ञात होती है। नवकुमार के कानों में यह ध्वनि उसी प्रकार बजी।

"पथिक, तुम पथ भूल गये हो?" यह ध्वनि नवकुमार के कान में पड़ी। इस का क्या अर्थ है, और क्या उत्तर देना होगा, कुछ भी मन में न आया। ध्वनि मानो हर्ष से कांप के घूमने लगी; वह ध्वनि मानो पवन में बही; वृक्ष के पत्तों में खरखराहट होने लगी; सागरनाद में मंदीभूत होने लगी। सागरवसना पृथ्वी सुंदरी थी; रमणी सुंदरी थी, औ ध्वनि भी सुंदर थी। हृदयतंत्री में सौंदर्य की लय उठने लगी।

रमणी कोई उत्तर न पाके "यहां आओ!" यह कह के चल दी; पग की आहट नहीं सुन पड़ी। वसंतकाल में मंदानिल सञ्चालित शुभ्र मेघ की भांति धीरे २ अलक्ष्य पादविक्षेप करके चली; नवकुमार कल की पुतली की भांति संग चले। एक स्थान में एक छोटा सा वन परिवेष्टन करना था; वन में भीतर जाने पर फिर सुंदरी को नहीं देखा। वन वेष्टन के आगे देखा कि सामने कुटीर है।

---

# षष्ठ परिच्छेद।

## कापालिक संग।

"कथं निगड़संयतासि द्रुतम्।
नयामि भवती मितः—"

रत्नावली।

नवकुमार कुटीर में प्रवेश कर, द्वार बंद कर के करतल पर मस्तक रख के बैठे और शीघ्र मस्तकोत्तोलन न किया।

"यह क्या देवी हैं?—या मानुषी—अथवा कापालिक की माया है!" नवकुमार निस्पन्द हो के हृदय में इस बात का आन्दोलन करने लगे, पर कुछ भी न समझ सके। अत: अनमने हो गए, इसलिये और कुछ व्यापार न देख सके। उसी कुटीर में उन के आगमन के पहिले ही से एक लकड़ी जलती थी। फिर जब बहुत रात बीत जाने पर स्मरण हुआ कि, संध्या का कृत्य समाप्त नहीं हुआ है—तब जल के अन्वेषण के अनुरोध से, चिंता छोड़कर के इस विषय की असंभाविता हृदयंगम करने लगे। केवल प्रकाश ही न था, चावल आदि पाकोपयोगी कुछ २ सामग्री भी थी। नवकुमार विस्मित नहीं हुए—मन में सोचा कि यह भी कापालिक का काम है—इस स्थल में विस्मय का विषय क्या है?

"शस्यंच गृहमागतं" यह कुछ बुरी बात नहीं है, "भोज्यं च उदरागतं" कहने से और भी स्पष्ट हो जाता है। ऐसा न था कि नवकुमार इस बात का माहात्म्य न जानते हों। सायंकृत्य समाप्त करके कुटीर में मिले हुए एक मिट्टी के बर्तन में भात बना कर भोजन किया।

दूसरे दिन प्रातः काल चर्मशय्या से उठते ही समुद्र के तीर की ओर चले। पूर्व दिन के आने जाने के कारण आज थोड़े ही कष्ट से पथ चीन्ह लिया। वहां प्रातःकृत्य समापन करके प्रतीक्षा करने लगे। किस की प्रतीक्षा करने लगे ? पूर्वदृष्ट मायाविनी फिर यहां आवेगी—यह आशा नवकुमार के हृदय में कहां तक प्रबल हुई थी, सो मैं नहीं कह सकता। किन्तु उस स्थान को वह परित्याग नहीं कर सके। बहुत दिन चढ़ गया, तथापि वहां कोई न आया। तब नवकुमार उस स्थान के चारो ओर भ्रमण कर वृथा अन्वेषण-मात्र करने लगे। मनुष्यसमागम का चिन्हमात्र भी न देखा। पुनः लौट के उसी स्थान पर बैठे। सूर्य अस्त हुए; अन्धकार होने लगा; नवकुमार हताश होके कुटीर में फिर आए। सायंकाल समुद्रतीर से लौट कर नवकुमार ने देखा कि कुटीर के भीतर भूमि में कापालिक चुपचाप बैठा है। नवकुमार ने प्रथम स्वागत पूछा; इस का कापालिक ने कोई उत्तर न दिया।

नवकुमार ने कहा, "अब तक आप के दर्शन से क्यों हम वंचित रहे ?" कापालिक ने कहा "हम अपने व्रत में लगे थे।"नवकुमार ने अपने घर जाने की अभिलाषा प्रगट की,—कहा, " मार्ग नहीं चीन्हते, मार्गव्यय नहीं है; आप के साक्षात् लाभ होने से उचित विधान हो सकेगा, इसी भरोसे है" पर कापालिक ने केवल यही कहा, "हमारे संग आओ" यह कहके उदासीन उठ खड़ा हुआ। घर जाने का कोई सदुपाय हो जायगा, इसी आशा से नवकुमार भी उस के पीछे २ चल पड़े।

तब तक सध्याऽऽलोक अन्तर्हित नहीं हुआ था—कापालिक आगे आगे, औ नवकुमार पीछे २ जाने लगे। अकस्मात् नवकुमार के पीठ पर किसी का कोमल कर आ लगा। पीछे फिर के जो देखा, उस से ठठक गए। यह वही वनदेवी है जिस की घनी चिकनी खुली चोटी छवी तक छहरा रही है। पूर्ववत् काठ की पुतली सी चुप चाप खड़ी हैं। कहां से यह मूर्त्ति अकस्मात् उन के पीछे आ गई? नवकुमार ने देखा, "रमणी मुख पर अंगुली धरे हुए है।" इस से समझा कि बोलने का निषेध करती है। किन्तु निषेध का बहुत प्रयोजन नहीं था। नवकुमार कौन सी बात कहैंगे? वह चमत्कृत होके वहां खड़े हो रहे। कापालिक यह सब कुछ भी न देख सका, आगे बढ़ कर चला गया। रमणी ने उस उदासीन के बहुत दूर चले जाने पर मृदुस्वर में न जाने क्या बात कही। नवकुमार के कानों में यह शब्द प्रविष्ट हुआ—

"कहां जाते हो? मत जाओ, लौट जाओ, पलायन करो।" इस बात के समाप्त करते ही सुन्दरी हट गई, प्रत्युत्तर सुनने के लिये खड़ी नहीं रही। नवकुमार थोड़ी देर वृक्ष की भांति खड़े रहे; पश्चाद्वर्ती होने में व्यग्र हुए; किन्तु रमणी किस ओर गई इस को कुछ भी स्थिर न कर सके। मन में विचारने लगे, "यह भी किसी की माया है? वा हमी को भ्रम होता है? जो बात सुनी—वह तो आशंकासूचक है, किन्तु किस की आशंका? तांत्रिक लोग सभी कर सकते हैं। तो क्या भाग जायं? वा क्यों भागें? उस दिन यदि बच गये हैं, तो आज भी बच जायंगे। कापालिक भी मनुष्य है औ हम भी मनुष्य हैं।"

नवकुमार इसी भांति चिंता करते थे, इतने ही में देखा कि कापालिक इन्हें संग न देख के लौटा आ रहा है। कापालिक ने कहा, " विलम्ब क्यों करते हो ? "

कापालिक के फिर पुकारने पर नवकुमार बिना कुछ बोले उस के पश्चाद्वर्त्ती हुए।

कुछ दूर जाकर सामने मिट्टी की दीवार से घिरा एक कुटीर देखा। उसे कुटीर भी कहा जा सकता है और छोटा गृह भी कह सकते हैं। किन्तु इस से हमलोगों को कोई प्रयोजन नहीं है। इस के पीछे ही बालुकामय समुद्रतट है। गृह के पास होकर कापालिक नवकुमार को उसी सैकत में ले चला; इसी अवसर में बाण के समान वेग से पूर्वदृष्टा रमणी उन के पास होकर चली गई। लौटते समय इन के कान में कहती गई, " अब भी भाग निकलो, नरमांस के बिना तांत्रिक की पूजा नहीं होती, तुम क्या नहीं जानते ? "

नवकुमार के ललाट में पसीना आने लगा, दुर्भाग्यवश युवती की यह बात कापालिक के कान में गई। उस ने कहा, " कपालकुंडले ! "

यह स्वर नवकुमार के कान में मेघगर्जनवत् ध्वनित हुआ। किन्तु कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़ के ले चला। मनुष्यघाती के करस्पर्श से नवकुमार का शोणित धमनी में शतगुण वेग से प्रधावित हुआ—गया साहस फिर लौट आया। कहा, "हाथ छोड़ दीजिये"

कापालिक ने उत्तर न दिया। नवकुमार ने फिर भी जिज्ञासा की "हमें कहां लिये जाते हैं?"

कापालिक ने कहा, "पूजा के स्थल में"।

नवकुमार ने कहा, "क्यों?"

कापालिक ने कहा, "वध के लिये"।

अति तीव्र वेग से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा, जैसे बल से उन्हों ने हाथ खींचा था, उस से यदि सामान्य पुरुष उन का हाथ पकड़े रहता तो, हस्तरक्षा करना तो दूर रहे, वेग से भूमिपर लोट जाता। किन्तु कापालिक का अंग भी न हिला— नवकुमार का पहुंचा उस के हाथ ही में रहा। नवकुमार की सब अस्थिग्रन्थि मानों भग्न हो गई। देखा कि बल से काम न होगा। कौशल का प्रयोजन है "अच्छा देखा जायगा"—इस प्रकार स्थिर करके कापालिक के संग संग चले।

सैकत के मध्यस्थल में पहुंच के नवकुमार ने देखा कि पूर्व दिन की भांति वृहत् काष्ठ में अग्नि जल रही है। चारों ओर तांत्रिकी पूजा का सामान रक्खा है, मध्य में नरकपाल में मदिरा भरी है, किन्तु शव नहीं है। अनुमान किया कि हमीं को शव बनना पड़ेगा।

कईएक शुष्कलतागुल्म पहिले ही से वहां लाके रक्खी थीं। कापालिक ने उन से नवकुमार को बान्धना आरम्भ किया। नवकुमार यथासाध्य बलप्रयोग करने लगे। किन्तु बलप्रकाश तनक भी फलदायी नहीं हुआ। उन्हें प्रतीति हुई कि इस वयस में भी कापालिक ने मत्तमातंग का बलधारण किया है। नवकुमार का बलप्रयोग देख के ने कहा "

" मूढ़ ! किस लिये भय प्रकाश करता है ? तेरा जन्म आज सार्थक हुआ। भैरवी की पूजा में तुम्हारा मांसपिंड अर्पित होगा, इस से अधिक तुम्हारे तुल्य व्यक्ति का और क्या सौभाग्य हो सकता है ?"

कापालिक ने नवकुमार को दृढ़ बांध के सैकत के ऊपर डाल दिया और वध के पूर्वकालिक पूजादि क्रिया में तत्पर हुआ। तब तक नवकुमार बंधन तोड़ने की चेष्टा करते रहे; किन्तु शुष्कलता अति कठिन थी—बंधन अतीव दृढ़ था। मृत्यु आसन्न है ! नवकुमार ने इष्टदेव के चरण में चित्त लगाया। एक बार जन्मभूमि स्मरण हुई ; अपने सुख का सदन मन में आया; एकबार, बहुत दिन के बिछुड़े जनक और जननी का मुख स्मरण हुआ; अश्रुजल की दो एक बूंद गिर के बालुका में सूख गई। कापालिक बलि की प्राक्कालिक क्रिया समाप्त करके बधार्थ खड्ग लेने के लिये आसन त्याग कर उठा।

किन्तु जहां खड्ग रक्खा था, वहां खड्ग न पाया। आश्चर्य ! कापालिक कुछ विस्मित हुआ। उसे ठीक स्मरण होता था कि अपराह्न में खड्ग ला के उपयुक्त स्थान में रक्खा था, एवं स्थानान्तरित भी नहीं किया, तब खड्ग कहां गया ? कापालिक इधर उधर अनुसंधान करने लगा। पर कहीं भी न पाया, तब पूर्वोक्त कुटीर की ओर मुख करके कपालकुंडला को पुकारने लगा। किन्तु बारंबार पुकारने पर भी कपालकुंडला ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब कापालिक के चक्षु वर्ण रक्त और भ्रूयुगल आकुंचित हुए। शीघ्रता से दौड़ के घर की ओर चला तब तक बंधन लता को

तोड़ने के लिये नवकुमार ने और एक बार परिश्रम किया--किन्तु वह यत्न भी सफल नहीं हुआ।

इसी अवसर में निकट बालुका के ऊपर अति कोमल पदध्वनि हुई—यह पदध्वनि कापालिक की नहीं थी। नवकुमार ने नयन फिर के देखा कि वही मोहिनी—कपालकुंडला है। उस के हाथ में खड्ग डोलता था।

कपालकुण्डला ने कहा, "चुप! बोलना मत, खड्ग मेरे ही पास है, चुरा के रख लिया है।"

यह कहके कपालकुंडला अति शीघ्र हस्त चालन करके खड्ग द्वारा नवकुमार का लताबंधन काटने लगी। और क्षण भर में मुक्त किया—कहा, "भागो; मेरे पीछे आओ, मार्ग दिखाये देती हूं।"

यह कह के कपालकुण्डला तीव्र वेग से पथ दिखाती हुई चली। नवकुमार ने झपट के उस का अनुसरण किया।

# सप्तम परिच्छेद ।

## अन्वेषण ।

" And the great lord of Luna
Fell at that deadly stroke :
As falls on mount Alvernus
A thunder-smitten oak "

खाय प्रान हरघाय गिर्‌यो नरनायक ऐसे ।
गिरि पर तरुवर गिरै बजर को मार्‌यो जैसे ॥

*Lays of Ancient Rome.*

इधर कापालिक ने गढ़े में रत्ती रत्ती अनुसन्धान कर के और न खड्ग और न कपालकुण्डला को देख के संदिग्ध चित्त से सैकत की ओर लौटा। वहां देखा कि नवकुमार भी नहीं है। इस से अत्यन्त विस्मय हुआ। थोड़ी देर पीछे ही छिन्न-लतावन्धन के ऊपर दृष्टि पड़ी। तब तो अनुभव कर के कापालिक नवकुमार के अन्वेषण में धावित हुआ। किन्तु विजन में वह किधर किस मार्ग हो कर गया है, यह स्थिर करना दुःसाध्य था। अन्धकार के कारण किसी को भी देख न सका। इस लिये वाक्यशब्द लक्ष्य कर के क्षण भर इधर उधर भ्रमण करने लगा, किन्तु कण्ठध्वनि भी सुनाई न दी। अतएव अच्छी तरह चारों ओर पर्यवेक्षण करने के अभिप्राय से ऊंचे बालू के एक टीले पर चढ़ गया। कापालिक एक ओर से चढ़ा; उसका दूसरा किनारा वर्षा के जलप्रवाह से खोखर गया था, इसे वह नहीं जानता

था। शिखर पर आरोहण करते ही उस के शरीर के भार से वह पतनोन्मुख शिखर भग्न हो के अत्यन्त घोर रव पूर्वक पृथ्वी में पतित हुआ। पर्वत शिखर से च्युत महिष की भांति कापालिक भी उस के संग गिर पड़ा।

# अष्टम परिच्छेद।

आश्रय।

" And that very night——

Shall Romeo bear thee to Mantua "

" वाही निसि मनरमन तोहि लै जैहै मैनमनगर को "

*Romeo and Juliet.*

उस अमावस्या की घोरान्धकारमयी रजनी में दोनों व्यक्ति ने उर्द्ध्वास से वन में प्रवेश किया था। वन्यपथ नवकुमार को नहीं ज्ञात था। केवल साथ की युवती को लक्ष्य कर के उस के पीछे २ चले चलने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था। मन ही मन सोचा, " यह भी कपाल में था।" नवकुमार नहीं जानते कि यहांकी अवस्था के वशीभूत हैं, अवस्था बंगाली की वशीभूत नहीं है, जानते तो यह दुःख न उठाते। क्रमशः वे दोनों दबे पांव धीरे धीरे चलने लगे। अन्धकार में कुछ भी दिखाई नहीं देता; केवल कभी २ कहीं २ नक्षत्रालोक से कोई कोई वालुकास्तूप का शुभ्र शिखर अस्पष्ट देख पड़ता था—और कहीं कहीं जुगनुओं की चमक में हक्षों का डाल पात झलक जाता था।

कपालकुण्डला पथिक को संग लेके, निभृत कानन के भीतर में पहुंचीं। उस समय रात्रि दो पहर थी। सम्मुख अन्धकार में वन के मध्य में एक अत्युच्च देवालय का शिखर लक्षित हुआ; उस के निकट ईंटों से बनी दीवार से घिरा एक गृह भी दिखाई पड़ा। कपालकुण्डला प्राचीरद्वार के निकट आके उस

में कराघात करने लगी। बारम्बार आघात करने पर भीतर से एक व्यक्ति ने कहा, "कौन है कपालकुण्डला?" कपालकुण्डला ने कहा, "द्वार खोलिये।"

उत्तर देनेवाले ने आकर द्वार खोल दिया। जिस व्यक्ति ने द्वार खोला, वह इस देवालय की अधिष्ठात्री देवी का पुजारी या अधिकारी था; अवस्था में पचास वर्ष लांघ गया था। कपालकुण्डला ने उस के चांदिल सिर को हाथ से खींच के, अपने अधर के निकट उस का कान लगा लिया; और दो चार बातों में अपने संगी की अवस्था समझा दी। अधिकारी बहुत देर तक हथेली पर सिर रख के चिन्ता करने लगा। अंत में बोला, "यह बड़ा विषम व्यापार है। महा पुरुष मन पर धरें तो सब कुछ कर सकते हैं। जो हो, माता के प्रसाद से तुम्हारा अमंगल न होगा। वह व्यक्ति कहां है?"

कपालकुण्डला ने "आओ" कह के नवकुमार को पुकार लिया। नवकुमार आड़ में खड़े थे, बुलाने पर घर में आये। अधिकारी ने उन से कहा, "आज यहीं लुक रहो, कल सबेरे मेदनीपुर की मार्ग तक पहुंचा आवेंगे।"

क्रमशः बातों ही में अधिकारी ने जान लिया कि अभी तक नवकुमार ने भोजन आदि नहीं किया है। इसलिये अधिकारी के उन के भोजन आदि के आयोजन में प्रवृत्त होने पर नवकुमार ने भोजन करने में नितान्त अनिच्छा प्रगट कर केवल विश्राम स्थान मात्र की प्रार्थना की। अधिकारी ने अपनी रंधनशाला में नवकुमार की शय्या प्रस्तुत की और नवकुमार के शयन करने पर कपाल

कुण्डला ने पुनः समुद्रकिनारे लौट जाने का उद्योग किया। अधिकारी ने उस की ओर स्नेहनयन से दृष्टिपात करके कहा,

"मत जाओ, क्षणभर ठहरो, एक भिक्षा है।"

कपालकुंडला। "क्या ?"

अधिकारी। तुम्हें जब से देखा है तब से हम माता समझते हैं। देवी का चरण स्पर्श करके शपथ कर सकते हैं कि, माता से अधिक तुम से स्नेह करते हैं। हमारी भिक्षा की अवहेला (अनादर) तो न करोगी ?

कपाल०। नहीं करूंगी।

अधि०। हमारी यही भिक्षा है कि अब तुम वहां फिर मत जाओ।

कपाल०। क्यों ?

अधिकारी। जाने से तुम्हारी रक्षा नहीं है।

कपा०। सो तो जानती हूं।

अधि०। तो फिर क्यों जिज्ञासा करती हो ?

कपा०। वहां न जाऊं तो फिर कहां जाऊंगी ?

अधि०। इसी पथिक के संग देशान्तर को चली जाओ।

कपालकुंडला चुप हो रही। अधिकारी ने कहा, "माता! क्या सोचती हो ?"

कपा०। जब तुम्हारे शिष्य आए थे, तब तुम ने कहा था कि युवती को इस तरह युवा पुरुष के संग जाना अनुचित है; फिर अब क्यों जाने को कहते हो ?

अधि०। तब तुम्हारे जीवन की शंका नहीं थी, विशेष गमन कि सदुपाय की सम्भावना न थी, अब वह सदुपाय हो सकेगा आओ, माता की अनुमति ले आवें।

यह कहके अधिकारी ने दीपक हाथ में लेके देवालय के द्वार पर जा द्वार खोला। कपालकुंडला भी उन के संग संग गई। मंदिर में मानवाकार कराल काली जी की मूर्ति स्थापित थी। दोनों ने भक्तिभाव से प्रणाम किया। अधिकारी ने आचमन करके पुष्पपात्र में से एक अच्छिन्न बेलपत्र लेके मंत्रपूत किया, और उसे प्रतिमा के चरण पर स्थापित करके उस की ओर देखने लगे। थोड़ी देर पीछे अधिकारी ने कपालकुंडला से कहा :—

"माता देखो! देवी ने अर्घ्यग्रहण किया है; बिल्वपत्र नहीं गिरा, जो इच्छा करके अर्घ्य दिया था, उस में अवश्य मंगल होगा। तुम इस पथिक के संग स्वच्छंदता से गमन करो: किन्तु हम विषयी लोगों की रीति चरित्र जानते हैं, तुम यदि गलग्रह हो के इस के संग जाओगी तो अपरिचित स्त्री को संग ले जा के ये लोगों में लज्जित होंगे। तुम से भी लोग घृणा करेंगे। तुम कहती हो, कि यह व्यक्ति ब्राह्मणसंतान है, गले में भी यज्ञोपवीत देखते हैं। ये यदि तुम्हें विवाह करके ले जायं तो सब मंगल है। नहीं तो हम भी तुम्हें इन के संग जाने के लिये नहीं कहते।"

"वि—वा—ह—" यह शब्द कपालकुण्डला ने अति धीरे धीरे उच्चारण किया। कहने लगी, "विवाह का नाम तो तुम लोगों के मुहँ से सुना है, किन्तु विवाह किसे कहते हैं सो सविशेष नहीं जानती, उस में क्या करना होगा?"

अधिकारी ने कुछ मुस्कुरा कर कहा "विवाह स्त्रियों के धर्म का एक मात्र सोपान है; इसी लिये स्त्री को सहधर्मिणी कहते हैं; जगन्माता भी शिव की विवाहिता हैं।"

अधिकारी ने मन में समझा कि हम ने सब कुछ समझा दिया। कपालकुण्डला ने मन में सोचा कि मैं ने सब समझ लिया। बोली :—

"वही हो। किन्तु उन्हें छोड़ कर जाने को मेरा मन नहीं करता, क्योंकि उन्हों ने मेरा इतने दिन तक प्रतिपालन किया है।"

अधि०। किस लिये प्रतिपालन किया है, सो तुम नहीं जानती।

यह कह के अधिकारी ने तांत्रिकसाधन से स्त्रियों को क्या संबंध है सो अस्पष्ट रीति से कपालकुण्डला को समझाने की चेष्टा की। पर कपालकुण्डला यह कुछ न समझी, किन्तु उसे बड़ा भय हुआ। बोली "तो विवाह ही हो जाय।"

यह कह के दोनों मन्दिर से वहिर्गत हुए। एक कोठरी में कपाल-कुण्डला को बैठा के अधिकारी नवकुमार की शय्या के समीप जा के उन के सिरहाने बैठे। जिज्ञासा करने लगे, "महाशय! क्या सो गये?" नवकुमार के निद्रित होने की अवस्था न थी, अपनी दशा सोच रहे थे—बोले, "जी नहीं"।

अधिकारी ने कहा "महाशय! हम परिचय लेने के लिये आये हैं। आप ब्राह्मण हैं?"

नव०। "जी हां"।

अधि०। "किस श्रेणी के?"

नव०। राढ़ीय। "श्रेणी के"।

अधि० । हम लोग भी राढ़ीय ब्राह्मण हैं—उत्तम ब्राह्मण ३ जानियेगा । वंश के कुलाचार्य हैं, पर अब तो भाई के समाश्रय हैं । आप का नाम क्या है ?

नव० । नवकुमार शर्मा ।

अधि० । निवास ?

नव० । सप्तग्राम में ।

अधि० । आप कौन गांई हैं ?

नव० । वंद्यघाटी ।

अधि० । के विवाह किये हैं ?

नव० । एक विवाह मात्र ।

नवकुमार ने सब बातें खोल के नहीं कहीं । यथार्थ में उन का एक विवाह भी न था । उन्हों ने रामगोविन्द घोषाल की कन्या पद्मावती से विवाह किया था । पर विवाह पीछे पद्मावती कुछ दिन तक नैहर में रही । बीच २ में ससुरार भी आया जाया करती थी । जब उस का वयःक्रम त्रयोदश वर्ष का था, तब उस के पिता सपरिवार जगदीशदर्शन को गये थे । उस समय में पठान लोग जिन्हें अकबर शाह ने बङ्गदेश से निकाल दिया था, तन्समीपस्थ उड़ीसा में रहते थे । उन लोगों को दमन करने के लिये अकबर शाह विधिपूर्वक यत्न करते रहे । जब रामगोविंद घोषाल उड़ीसा से लौटा, तब मुगल और पठानों में युद्ध आरंभ हो गया था । आने के समय वे मार्ग में पठान सेना के हाथ में पड़ गये । उस समय पठान लोग भद्राभद्र विचारशून्य थे; वे लोग निरपराधी पथिक के ऊपर धन के लिये बलप्रकाश की चेष्टा करते

लगी। रामगोविंद कुछ उग्र स्वभाव के थे; पठान लोगों को कटु-वचन कहने लगे। उस का यह फल हुआ कि वे सपरिवार अवरुद्ध ( कैद ) हुए; अंत में उन्हों ने जातीयधर्म त्याग कर के सपरिवार मुसलमान बन के छुटकारा पाया।

रामगोविंद घोषाल सपरिवार प्राण ले के घर लौट आए, किन्तु मुसलमान होने से आत्मीयजनसमाज से एक बारही परित्यक्त हुए। उस समय नवकुमार के पिता वर्तमान थे, इसलिये उन्हें जातिभ्रष्ट समधी के सहित जातिभ्रष्टा पुत्रवधू को भी परित्याग करना पड़ा। नवकुमार को फिर अपनी स्त्री से साक्षात् न हुआ। स्वजनों से परित्यक्त और समाज से च्युत हो के रामगोविन्द घोषाल अधिक दिन स्वदेश में वास नहीं कर सके। इस कारण से, और राजा की प्रसन्नता से उच्चपदाधिकारी होने की आकांक्षा से सपरिवार राजधानी राजमहल में जाकर रहने लगे।

दूसरा धर्मग्रहण कर के उन्हों ने सपरिवार मुसलमानी नाम धारण किया था। राजमहल जाने के अनंतर श्वसुर वा पत्नी की क्या दशा हुई यह जानने का नवकुमार को कोई उपाय न था। और अब तक कुछ जान भी न सके। नवकुमार ने वैराग्य-वश फिर विवाह नहीं किया। इस लिये मैं कहता हूं कि नव-कुमार को एक विवाह भी न था।

अधिकारी यह सब वृत्तान्त नहीं जानते थे। उन्हों ने विवेचना की कि "कुलीन संतान के दो विवाह में आपत्ति क्या है?" प्रकट कहा "आप से एक बात पूछने के लिये आये हैं। यह कन्या जिस ने आप की [illegible] की है इस ने परहित के लिये ही अपना प्राण

नष्ट किया है। जिस महापुरुष के आश्रय में इस का निवास है, वह अत्यन्त भयंकर स्वभाव के हैं। उन के निकट लौट जाने से आप की जो दशा होती, इस की भी वही दशा होगी। आप इस के लिये कोई उपाय सोच सकते हैं, कि नहीं ?" नवकुमार उठ बैठे, कहने लगे "हम भी यही आशंका करते थे। आप सब कुछ जानते हैं—इस का उपाय कीजिये। हमारे प्राणदान करने से भी जो प्रत्युपकार हो सके तो—हम इस में प्रस्तुत हैं। हम ऐसा संकल्प करते हैं कि उस नरघातक के समीप जा के आत्मसमर्पण करें। ऐसा होने से इस की रक्षा होगी ?" अधिकारी ने हास्य कर के कहा "तुम बातुल हो, इस से क्या फल होगा ? तुम्हारा भी प्राण संहार होगा। और इस के प्रति भी महापुरुष का क्रोध शान्त न होगा। इस का एक ही उपाय है।"

नव०। वह कौन सा उपाय है ?

अधि०। आप के संग इस का पलायन। किन्तु यह अति दुर्घट है। हमारे यहां रहने से दो एक दिन के भीतर ही पकड़ जायगी। इस देवालय में महापुरुष का सदैव आना जाना होता है। इस लिये कपालकुंडला के अदृष्ट में अशुभ देखते हैं।

नवकुमार ने आग्रह के साथ पूछा "हमारे संग पलायन दुर्घट क्यों है ?"

अधि०। "यह किस की कन्या है—किस कुल में इस का जन्म है, यह तो आप कुछ भी नहीं जानते, किस की पत्नी है—किस चरित्र की है, सो कुछ भी नहीं जानते। आप क्या इसे संगिनी बनावेंगे ? संगिनी बना कर ले जाने पर भी क्या आप इसे निज गृह

में स्थान देंगे ? और यदि स्थान न दें, तो यह अनाथिनी कहां जायगी ?"

नवकुमार ने क्षण भर चिन्ता कर के कहा "अपनी प्राणरक्षा करनेवाली के लिये हमें कोई काम असाध्य नहीं है। यह हमारी घर वालियों को सो हो के रहेगी।"

अधि०। अच्छा। किन्तु जब आप के आत्मीय स्वजन पूछेंगे कि, यह किस की स्त्री है ? तब क्या उत्तर देंगे ?

नवकुमार ने फिर चिंता कर के कहा "आप ही इन का परिचय हमें दीजिये। हम वही परिचय सब को देंगे।"

अधि०। ठीक है। किन्तु इस पत्तभर के मार्ग में युवक युवती अकेले कैसे जायगा ? लोग देख सुन के क्या कहेंगे ? आत्मीयस्वजनों के निकट क्या कहियेगा ? और इस ने भी इस कन्या को "मा" कहा है। तो हम ही कैसे इसे अज्ञात चरित्र युवा के संग अकेली दूरदेश भेज दें ?

घटकराज अगुआई में कुछ नहीं है।

नवकुमार ने कहा, "आप संग चलिये।"

अधि०। हम संग जायं ? भवानी की पूजा कौन करेगा ?

नवकुमार ने क्षुब्ध हो के कहा, "तो क्या कोई उपाय नहीं कर सकते ?"

अधि०। केवल एक उपाय हो सकता है—वह आप के उदार गुण की अपेक्षा करता है।

नव०। सो क्या ? हम किस में नाहीं करते हैं ? कौन उपाय है कहिये ?

अधि०। सुनिये यह ब्राह्मण की कन्या है। हमें इस का शेष वृत्तान्त अवगत है। बाल्यकाल में दुर्दान्त क्रस्तान डाकुओं से चोराई जा कर यान भंग होने पर उन लोगों ने इसे समुद्र के तट पर छोड़ दिया था। यह सारा वृत्तान्त पाछे आप को ज्ञात होगा। कापालिक ने इसे पा के अपनी योगसिद्धि के मानस से इस का प्रतिपालन किया। थोड़े ही दिनों में वे अपना प्रयोजन सिद्ध करते पर यह अभी तक अनूढ़ा है; इस का चरित्र परम पवित्र है। आप इसे विवाह कर के घर ले जायं। कोई कुछ न कहेगा। हम शास्त्र रीति से विवाह कर देंगे।

नवकुमार शय्या से उठ खड़े हुए। बड़ी तेजी से इधर उधर टहलने लगे। कोई उत्तर न दिया। अधिकारी ने थोड़ी देर पीछे कहा, "आप इस समय शयन कीजिये। कल तड़के हम आप को जगावेंगे। इच्छा हो, अकेले जाइयेगा। आप को मेदिनी पुर के मार्ग पर पहुंचा आवेंगे।"

यह कह के अधिकारी विदा हुए। जाने के समय मन ही में कहा "राढ़देश की अगुआई क्या भूल गये हैं?"

---

# नवम परिच्छेद।

## देवनिकेतन।

"कापव! अलंकृदितेन; स्थिराभव, इतः पन्थानमालोकय।"

प्रकुन्तला।

प्रातःकाल अधिकारी नवकुमार के निकट आए। देखा कि अभीतक नवकुमार ने शयन नहीं किया है। जिज्ञासा किया, "अब क्या कर्त्तव्य है?"

नवकुमार ने कहा, "आज से कपालकुण्डला हमारी धर्मपत्नी हुई। इस के लिये घर त्याग करना पड़े तो वह भी करेंगे। किंतु कन्यादान कौन करेगा?

घटक चूड़ामणि का मुख हर्ष से खिल उठा। मन ही मन सोचा, "इतने दिनों पर जगदंबा की कृपा से जान पड़ता है मेरी कपालिनी की गति हुई।" प्रगट कहा, "हम संप्रदान करेंगे।" अधिकारी ने अपने शयनगृह में पुनः प्रवेश किया। एक झोली में अतिप्राचीन कई तालपत्र थे। उन में उस के लिथि लक्षण आदि लिखा था। उन सभों को भली भांति देख भाल कर के कहा, "आज यद्यपि विवाहयोग्य दिन नहीं है—तथापि विवाह में कुछ विघ्न नहीं है। गोधूली लग्न में कन्यादान करेंगे। तुम आज उपवास मात्र करलो और कुलाचार घर जा के करलेना। एक दिन के लिये तुम लोगों को छिपा सकते हैं। आज यदि वे आवेंगे, तो तुम लोगों का संधान न पावेंगे, ऐसा स्थान है। पीछे विवाह होने पर कल प्रातःकाल सपत्नीक घर जाना।"

नवकुमार इस में संमत हुए। इस अवस्था में जहां तक सम्भव है, वहां तक शास्त्र के अनुसार कार्य हुआ। गोधूली लग्न में नवकुमार के संग कापालिक पालिता सन्यासिनी का विवाह हुआ।

कापालिक को कुछ खबर नहीं है। दूसरे दिन तीनों यात्रा का उद्योग करने लगे। अधिकारी मेदिनीपुर के मार्ग तक उन लोगों को पहुँचा आवेंगे।

यात्रा के समय कपालकुण्डला काली को प्रणाम करने के लिये गई। भक्तिभाव से प्रणाम कर के पुष्पपात्र में से एक अच्छिन्न बिल्वपत्र ले के प्रतिमा के चरण के ऊपर स्थापित कर के उस की ओर देखने लगी। पत्र गिर गया।

कपालकुण्डला बड़ी ही भक्त थी। यह देख कर डर गई—और अधिकारी को संवाद दिया। अधिकारी भी उदास हुए। बोले, "अब निरुपाय हैं। इस समय पति मात्र तुम्हारे धर्म हैं. पति के श्मशान में जाने से तुम्हें भी संग संग जाना पड़ेगा। अत एव चुपचाप चली चलो।"

सब कोई चुपचाप चले। बहुत दिन चढ़ने पर मेदिनीपुर के पथ पर पहुंचे। तब अधिकारी बिदा हुए। कपालकुण्डला रोने लगी। पृथ्वी में जो मनुष्य उस का एक मात्र सुहृद् था, वह बिदा होता है। अधिकारी भी रोने लगे। नेत्र का जल पोछ के कपाल-कुण्डला के कान में कहा, "मा! तुम जानती हो कि परमेश्वरी के प्रसाद से तुम्हारी सन्तान को (मुझे) धन का अभाव नहीं है। हिजली के छोटे बड़े सभी इन की पूजा करते हैं। तुम्हारे कपड़े में जो बांध दिया है, उसे अपने स्वामी को दे के अपने लिये एक पालकी करने को कहना:—सन्तान समझ के स्मरण रखना।"

अधिकारी यह कह के रोते २ चले गये। कपालकुण्डला भी रोती २ चली।

इति प्रथमखण्ड।

# द्वितीय खण्ड।

## प्रथम परिच्छेद।

### राजपथ।

"——There—now lean on me:
place your foot here——"

सो पै भार धारि निज तन को मंद मंद पग धारो॥

*Manfred.*

नवकुमार ने मेदिनीपुर जाके अधिकारी के दिये हुए धन से कपालकुण्डला के लिये एक दासी एक रक्षक और पालकी कहार नियुक्त कर के उसे पालकी पर चढ़ा के भेजा तथा रुपये की कमी से आप पैदल चले। नवकुमार पूर्व दिन के परिश्रम से थके थे, इस से दोपहर के भोजन के अनन्तर कहार लोग इन्हें पीछे छोड़ गये। क्रम क्रम से सन्ध्या हुई। शीतकाल के निबिड़ मेघ से आकाश भरा हुआ था। सन्ध्या भी बीत चली। पृथ्वी अंधकारपूर्ण हो गई। झुक २ वृष्टि भी पड़ने लगी। नवकुमार कपालकुण्डला के साथ मिल जाने के लिये व्यस्त हुए। सोचते थे कि प्रथम पांथनिवास (सराय) ही में उस से भेंट होगी, किन्तु पथिकशाला (टिकान) भी अब तक नहीं दिखाई देती थी। प्रायः चार छः घड़ी रात भी हो गई। नवकुमार शीघ्र २ पांव बढ़ाते हुए चले। अचानक किसी कठिन वस्तु से उन का पांव ठेका। पांव के ठेस से वह पदार्थ खड़ २ मड़ २ शब्द कर के चूर हो गया नवकुमार खड़े हो गये,

फिर पांव बढ़ाया; फिर इसी प्रकार हुआ। पैर में ठेकनेवाली वस्तु को हाथ में उठा लिया। देखा कि यह वस्तु टूटे हुए तमूले की भांति है।

आकाश के मेघाच्छन्न होने पर भी सर्वदा ऐसा अन्धकार नहीं होता कि खुले स्थान में स्थूल वस्तु का भी खण्ड न देख पड़े। सामने एक वृहत पदार्थ पड़ा था। नवकुमार ने अनुभव करके देखा कि यह टूटी हुई पालकी है; इस से उन के हृदय में कपाल-कुण्डला के ऊपर विपद की आशंका हुई। पालकी की ओर जाते समय फिर उन का चरण एक दूसरे पदार्थ में लगा। यह स्पर्श कोमल मनुष्य शरीर के स्पर्श की भांति जान पड़ा। बैठ कर हाथ से छू के देखा कि मनुष्यशरीर का स्पर्श अत्यन्त शीतल है; उस के सङ्ग द्रव पदार्थ का स्पर्श अनुभूत हुआ। नाड़ी पर हाथ धर के देखा कि गति नहीं है, प्राणवियोग हुआ है। विशेप मन लगा के देखा कि मानो निश्वास प्रश्वास का शब्द सुनाई देता है। निश्वास है तो नाड़ी क्यों नहीं है? यह क्या रोगी है? नासिका के निकट हाथ धर के देखा कि निश्वास नहीं चलता तब शब्द कैसा? कदाचित् कोई जीवित व्यक्ति भी यहां है। यह सोच के पूछा "यहां कोई जीवित व्यक्ति है?"

मृदुस्वर से उत्तर मिला, "हूं"

नवकुमार ने कहा, "तुम कौन हो?"

उत्तर। "तुम कौन हो?" नवकुमार को यह स्वर स्त्री के कंठ का सा जान पड़ा। व्यग्र हो के पूछा "कपालकुण्डला तो नहीं?"

स्त्री ने कहा, "कपालकुण्डला कौन है, मैं तो नहीं जानती— मैं बटोहिन हूं, डाकुओं के हाथ से निष्कुण्डला (बिनाकुण्डल) हो गई हूं।"

व्यंग सुन के नवकुमार कुछ प्रसन्न हुए। जिज्ञासा की, "क्या हुआ है?"

स्त्री ने कहा, "लुटेरों ने मेरी पालकी तोड़ डाली है, मेरे एक कहार को मार डाला है; और सब भाग गये हैं। डाकू मेरे अंग के सब गहनों को ले के मुझे पालकी में बांध के पटक गये हैं।"

नवकुमार ने अंधकार में ध्यान कर के देखा कि, यथार्थ ही एक स्त्री पालकी में कपड़े से कसकर बंधी हुई पड़ी है। नवकुमार ने शीघ्रता से उस बंधन को खोल के कहा, "तुम क्या उठ सकोगी?" स्त्री ने कहा, "मुझे भी एक लाठी लगी थी; इस लिये पैर में पीड़ा हो रही है, पर जान पड़ता है कि थोड़ी सहायता पाने से उठ सकूंगी।"

नवकुमार ने हाथ बढ़ा दिया। रमणी उस की सहायता से उठ खड़ी हुई। नवकुमार ने जिज्ञासा की, "क्या चल सकोगी?"

स्त्री ने उत्तर न देके पूछा, "आप के पीछे २ कोई पथिक आता है, देखा है?"

नवकुमार ने कहा, "नहीं।"

स्त्री ने फिर प्रश्न किया, "चट्टी कितनी दूर है?"

नवकुमार ने कहा, "कितनी दूर है यह नहीं बता सकते,— किन्तु जान पड़ता है कि निकट ही होगी।"

स्त्री ने कहा "अंधेरे में अकेली मैदान में बैठी २ क्या करूंगी? चट्टी तक आप के संग जाना ही उचित है। जान पड़ता है किसी के सहारे से चल सकूंगी।"

नवकुमार ने कहा, "विपदकाल में संकोच करना मूढ़ों का काम है, हमारे कंधे पर भार देके चलो।"

स्त्री ने मूढ़ का कार्य्य नहीं किया। नवकुमार के कंधे पर भार देकर चली।

चट्टी यथार्थ ही निकट थी। उन दिनों चट्टी के समीप भी बटवारी करने में ठग लोग संकोच नहीं करते थे। थोड़े विलम्ब में नवकुमार संगिनी को लेके वहां उपस्थित हुए।

नवकुमार ने देखा कि इसी चट्टी पर कपालकुण्डला भी ठहरी है। उस के दास दासी ने उस के लिये एक घर ठीक कर लिया है। नवकुमार ने अपनी संगिनी के पास ही में एक घर ठीक कर के उसे उस में टिका दिया। उन की आज्ञा से गृहस्वामी को स्त्री दीपक बाललाई। वह दीपक का उजाला उन की संगिनी पर पड़ा। तब नवकुमार ने देखा कि यह असामान्य सुंदरी है। रूपराशि की तरंग में उस की यौवनशोभा, श्रावण की नदी की भांति उमड़ी पड़ती थी।

## द्वितीय परिच्छेद।

पांथनिवास।

"कैषा योषित् प्रकृति चपला"।

मेघदूत।

यदि यह रमणी निर्दोष सुन्दरी होती तो कहते, "पुरुष पाठक! यह आप लोगों की गृहिणी की भांति सुन्दरी है। और सुन्दरी पाठिकाओ! यह आप की दर्पणस्थ छाया की भांति रूपवती है।" ऐसा होने से रूप का वर्णन समाप्त हो जाता। पर दुर्भाग्यवश यह सर्वांग सुन्दरी नहीं है, अतएव हमें विरत होना पड़ता है

यह निर्दोष चंद्रो नहीं है, ऐसा कहने का कारण यही है कि प्रथम तो इस का शरीर मध्यम आकृति की अपेक्षा कुछ लंबी है। दूसरे ओठ कुछ चिपटे हैं; तीसरे यह यथार्थ गौराङ्गी नहीं है।

शरीर कुछ लम्बा है, किन्तु हाथ पांव हृदय आदि सभी अङ्ग सुगोल, और सुडौल हैं। वर्षाकाल में वृक्ष की लता जैसे अपने पल्लवपुञ्ज के बाहुल्य में डोलती रहती है, उसी प्रकार इस का शरीर अपनी पूर्णता से हल २ करता था: निदान कुछ लम्बी देह भी पूर्णता के हेतु अधिक शोभा का कारण हुई। जिन लोगों को यथार्थ में गोरांगी कहते हैं, उन में किसी का वर्ण पूर्णचन्द्रकौमुदी की भांति और किसी २ का किञ्चित् आरक्त वदना ऊषा की भांति होता है। इस का वर्ण इन दोनों के अतिरिक्त था, अतएव इसे ठीक गौरांगी नहीं कह सकते, किन्तु मुग्धकारिणी शक्ति में इस का वर्ण भी न्यून नहीं है। यह श्यामवर्णा है। "श्यामा मा" वा "श्यामसुन्दर" जिस श्यामवर्ण के उदाहरण हैं, वैसा श्यामवर्ण नहीं है। तप्तकांचन का जो श्यामवर्ण होता है, वही श्यामवर्ण है। पूर्णचन्द्र की किरण-रेखा, या मानहरुणी वादल के मुकुट वाली ऊषा, यदि गौरांगिनियों का वर्णप्रतिमा होय, तो वसंतप्रसूत नवआम्रदलराजि की शोभा इस श्यामा के वर्ण की अनुरूपा कही जा सकती है। पाठक महा-शयों में अनेक ही गौरांगिनी के वर्ण की प्रतिष्ठा करते हैं, किन्तु यदि कोई ऐसी श्यामा के मंत्र से मुग्ध हो तो उन्हें कोई वर्णज्ञान-शून्य न कह सकेगा। इस बात से जिन्हें चिढ़ हो वे एक वार नवीन आम्रपल्लव विराजी, भ्रमरश्रेणी की भांति वह उज्ज्वल श्याम ललाट विलम्बी अलकावली स्मरण करें; वह सप्तमी चंद्राकृति ललाट तलस्थ अलकस्पर्शी भ्रूयुगल स्मरण करें; वह पक्के आम से उज्ज्वल कपोल

स्मरण करें; तन्मध्यवर्ती घोर आरक्त सूक्ष्म ओष्ठाधर स्मरण करें; तभी उस अपरिचिता रमणी की सुंदरीप्रधाना अनुभव कर सकेंगे। दोनों नयन अति विशाल नहीं हैं, किन्तु सुबंकिम पक्षव रेखाविशिष्ट और अतिशय उज्ज्वल है। उस का कटाक्ष स्थिर और मर्मभेदी था। तुम्हारे ऊपर दृष्टि पड़ने से तुम तत्क्षण अनुभव करते कि यह को हमारा मन पर्यंत देखती है। देखते २ उस मर्मभेदी दृष्टि का भावान्तर होता है; चक्षु कोमल स्नेहरस में डूब जाते हैं। फिर कभी उस से केवल सुखावेश जनित क्लान्ति प्रकाश मात्र है; मानो वे नयनमन्मथ की स्वप्नशय्या हैं! कभी तो लालसा से फंसे और मदन रस से तलमलाते हैं, औ कभी चंचल क्रूर कटाक्ष मानो मेघ में विद्युद्दाम की भांति शोभते हैं। मुखकांति में दो अनिर्वचनीय शोभा है; प्रथम सर्वत्र गामिनी बुद्धि का प्रभाव; द्वितीय आत्मगरिमा। इस कारण जब वह मरालग्रीवा बंकिम कर के खड़ी होती थी, तब सहज ही ज्ञात होता था कि यह रमणीकुल की रानी है।

सुन्दरी का वयस सत्ताईस बरस का था, मानो भाद्रमास का पूर्ण नदी। भाद्रमास की नदी के जल की भांति, इस की रूपराशि ढलढल करती थी—उछली पड़ती थी। वर्ण की अपेक्षा, नयन की अपेक्षा सब की अपेक्षा उस के सौंदर्य की चञ्चलता मुग्ध करती थी। पूर्ण यौवन के भार से सम्पूर्ण शरीर कुछ चंचल था। वायु के बिना शरदकाल में नदी जैसी ईषच्चञ्चल रहती है, यह भी वैसी ही चंचल है। वह चांचल्य बारंबार नूतन २ शोभा के विकाश का कारण है। नवकुमार निर्निमेष लोचनों से वह नवनूतन शोभा देखते थे।

सुन्दरी ने नवकुमार के निमिषशून्य नयन को देख के कहा, "आप क्या देखते हैं, मेरा रूप?"

नवकुमार भद्र पुरुष थे अप्रतिभ हो के मुख झुका लिया। निरुत्तर देख के अपरिचिता फिर हंस के कहने लगी,

"आप ने क्या कभी स्त्रियों को नहीं देखा है? आप मुझे अतीव सुन्दरी समझते हैं?"

यह बात सहज में कहने से तिरस्कार सी प्रतीत होती, किन्तु रमणी ने जिस हंसी के संग कहा था, उस में व्यंग के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। नवकुमार ने देखा कि यह बड़ी मुखरा है; फिर बात का क्यों न उत्तर देते? बोले,

"हम ने स्त्रियों को देखा है; किन्तु ऐसी सुन्दरी नहीं।" रमणी ने गर्वपूर्वक जिज्ञासा की कि "क्या एक भी नहीं?" नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला का रूप जाग्रत था; उन्हों ने भी गर्वसहित उत्तर दिया, "एक भी नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकते।"

उत्तरकारिणी ने कहा, "—सो ठीक है, वह क्या आप की गृहिणी हैं?"

नव०। क्यों? गृहिणी को क्यों अपने मन में भावना करती हो?

स्त्री०। बंगाली लोग अपनी स्त्री को सब से सुन्दरी समझते हैं।

नव०। हम बंगाली हैं, पर आप भी तो बंगालिन की तरह बातें करती हैं, तो आप किस देश की हैं? युवती ने अपने परिधान की ओर दृष्टि करके कहा, "अभागिनी बंगालिन नहीं है। पश्चिम देश की मुसलमानी है।" नवकुमार ने पर्य्यवेक्षण करके देखा कि, परिच्छद पश्चिम देशीय मुसलमानी स्त्री की भांति है।

किन्तु बंगभाषा ठीक बंगालिन की भाँति बोलती है। क्षणानन्तर तरुणी कहने लगी—

"महाशय, आप ने तो वचनचातुरी से मेरा परिचय ले लिया, अब अपना परिचय देके चरितार्थ कीजिये। जिस गृह में वह अद्वितीया रूपवती है, वह घर कहां है?"

नवकुमार ने कहा "हमारा निवास सप्तग्राम है।"

विदेशिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया, सहसा मुख अवनत कर के दीपक उकसाने लगी।

क्षणभर पीछे बिना मुख उठाये बोली,"दासी का नाम मोती है। महाशय का क्या नाम है, सुनने पाऊंगी?"

नवकुमार ने कहा, "नवकुमार शर्मा।"

प्रदीप बुझ गया।

# तृतीय परिच्छेद ।

## मुन्दर्शीदर्शन ।

"———— धरहु देवि तुम मोहन मूरति,
आयसु देहु, मजाऊं बर बमुलाई अभरन मल आनि।"
मेघनादवध ।

नवकुमार ने गृहस्वामिनी से दूसरा दीपक लाने को कहा। दूसरे दीपक लाने के पूर्व उन्हों ने एक दीर्घ निश्वास सुना। दीपक आने के क्षण भर पीछे भृत्य वेशधारी एक मुसलमान आ के उपस्थित हुआ। विदेशिनी ने उसे देख के कहा "यह क्या, तुम लोगों को इतना श्रम क्यों हुआ! और सब कहां हैं?"

भृत्य ने कहा "सब कहार मतवाले हो गये थे, उन को इकट्ठा कर के लाने के सबब हम लोग पालकी से पीछे रह गये। पीछे पालकी टूटी हुई देखी और आप को न देख के हम लोग एकदम घबरा गये। कोई वहीं हैं, कोई २ आप की तलाश के लिये इधर उधर गये हैं, मैं इधर खोज में आया हूं"। मोती ने कहा, "उन लोगों को ले आओ।"

नौकर सलाम कर के चला गया, विदेशिनी कुछ काल तक कर पर कपोल लगाये बैठी रहीं।

नवकुमार ने बिदा मांगी। तब मोती ने स्वप्नोत्थित की भांति उठ के जिज्ञासा की "आप कहां ठहरेंगे?"

नव०। इस के आगे के घर में।

मोती०। आप के उस घर के पास एक पालकी देखी है, क्या आप के संग भी कोई है?

मेरी स्त्री है ”

मोती बीबी ने फिर व्यंग करने का अवकाश पाया। कहने लगीं, “वह्री क्या अद्वितीया रूपवती हैं ?”

नव०। देखने से जान लेंगी।

मोती०। क्या दर्शन मिलेगा ?

नव०। ( सोच कर ) हानि क्या है ?

मोती०। तो ज़रा अनुग्रह कीजिये। अद्वितीया रूपवती को देखने के लिये बड़ी इच्छा हो रही है। आगरे जा कर कहा चाहती हूं, किन्तु अभी नहीं—अब आप जायं. क्षण भर पीछे मैं आप को सम्वाद दूंगी।

नवकुमार चले गये। थोड़ी देर पीछे अनेक आदमी, दास दासियां, वाहक सन्दूक आदि लेके उपस्थित हुए। एक शिविका भी आई; उस पर एक दासी थी। फिर नवकुमार के निकट संवाद आया कि “आप को बीबी ने याद किया है।”

नवकुमार ने मोती बीबी के निकट फिर आगमन किया देखा, इस बार और रूप है। मोती पूर्व परिधान त्याग कर के सुवर्ण मुक्ता आदि से शोभित शिल्पकार्य-युक्त वस्त्राभरण धारण किये है; अलंकाररहित अंग में अलंकारखचित किया है। जहां जो धारण किया जाता है,—चोटी में, मस्तक में, नयन के पास में, कान में, कण्ठ में, हृदय में, बाहु युगल में, सर्वत्र सुवर्ण के मध्य में हीरे आदि रत्न प्रकाशमान हो रहे थे। नवकुमार के नेत्र चंचल हुए अनंतनक्षत्र-भूषित गगन की भांति—मधुरायत शरीर के सङ्ग अलंकारों का सुसंग बोध हुआ, और उस में और भी सौन्दर्यप्रभा अधि-

हुई। मोती बीबी ने नवकुमार से कहा, "महाशय, चलिये। आप को पत्नी से परिचय कर आऊं।" नवकुमार ने कहा, "इसलिये अलङ्कार धारण करने का प्रयोजन नहीं था। हमारी स्त्री के पास कोई गहना नहीं है।"

मोती बीबी। गहनों को दिखलाने के लिये पहिरा है। स्त्रियो के पास गहना हो तो वह बिना दिखाए नहीं रहती। अब चलिये।

नवकुमार मोतीबीबी को सङ्ग ले के चले। जो दासी पालकी पर चढ़ के आई थी वह भी सङ्ग चली। इस का नाम पेशमन था।

कपालकुण्डला दूकानवाले घर की सिड़ी हुई भूमि पर अकेली बैठी थी। एक दीपक मात्र टिमटिमाता था। खुली घनी केशराशि अवकाश को अंधकारमय कर रही थी। मोतीबीबी ने प्रथम जब उसे देखा तब होठ और आंखों में कुछ हंसी आगई। अच्छे प्रकार देखने के लिये प्रदीप उठा के कपालकुण्डला के मुख के निकट लाई। तो वह हास्य का भाव दूर हो गया: मुख गंभीर हुआ;—निर्निमेषलोचन से देखने लगी। किसी ने कोई बात न कही;—मोती चकित और कपालकुण्डला भी कुछ विस्मिता हुई।

क्षणभर पीछे मोती अपने अंगों से अलंकारों को उतारने लगी। और एक २ कर के कपालकुण्डला को पहिराने लगी। कपालकुण्डला कुछ न बोली। नवकुमार ने कहा, "यह क्या करती हो?" मोती ने कोई उत्तर न दिया। अलङ्कार का पहिराना समाप्त होने पर, मोती ने नवकुमार से कहा,

# चतुर्थ परिच्छेद ।

## शिविकारोहण ।

"——————वेगि खोल सब दीनो ।
"कंकन, वलय, हार, मनमाला, कुण्डल, नूपुर, कटिपट, झीनो ।"

मेघनादवध ।

भूषण ( गहना ) की क्या दशा हुई, कहता हूं; सुनो। मोती बीबी ने गहना रखने के लिये एक चांदी से मढ़ा हुआ हाथीदांत का डब्बा भी भेज दिया। डाकुओं ने थोड़ी ही सामग्री ली थी।— जो निकट था, उस के सिवा कुछ नहीं पाया था।

नवकुमार ने दो एक गहने कपालकुण्डला के अंग पर छोड़ के औरों को डब्बे में रख दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल मोती बीबी ने बर्दवान की ओर, और नवकुमार ने सपत्नीक सप्तग्राम की ओर यात्रा की। नवकुमार ने कपालकुंडला को पालकी पर चढ़ा के अलंकार का डब्बा भी रख दिया। कहार लोग सहज ही में नवकुमार को पीछे छोड़ कर चले गये। कपालकुंडला पालकी का द्वार खोल के चारों ओर देखती हुई जाती थी। एक भिक्षुक उसे देख के भिक्षा मांगते २ पालकी के संग २ चला।

कपालकुंडला ने कहा, "मेरे पास तो कुछ नहीं है, तुम्हें क्या दूं?" भिक्षुक ने, कपालकुंडला के अंग में जो दो एक अलंकार थे, उन की ओर अंगुली दिखा के कहा, "सो क्या मा! तुम्हारे अंग पर हीरा मोती हैं—और तुम्हारे पास कुछ नहीं है?"

कपालकुण्डला ने जिज्ञासा की, "गहना पाने से तुम सन्तुष्ट होगे ?"

भिक्षुक कुछ विस्मित हुआ। उस की आशा अपरिमित था। क्षण भर पीछे बोला "क्यों नहीं होऊंगा ?"

कपालकुंडला ने निष्कपट हृदय से डब्बा समेत सब अलंकार भिक्षुक के हाथ में दे दिये थे। अंग का भी सब भूषण खोल कर दे दिया।

भिक्षुक क्षण भर विह्वल हो रहा। दास दासी कोई कुछ न जान सके। भिक्षुक का विह्वलभाव क्षणिकमात्र था। उसी समय इधर देख कर गहने ले के ऊर्द्ध श्वास से पलायन किया। कपालकुंडला सोचने लगी, "भिक्षुक दौड़ा क्यों ?"

---

# पंचम परिच्छेद।

स्वदेश।

"शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्।
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्॥"
'प्रगट कहन हू जोग बात सखियन के आगे।
तो मुख परसन लोभ कहतु हो कानन लागे॥
पर्‍यो दूरि सो आय दृष्टि जहं पहुंचि न पावति।
श्रवन मनन गति काम जहां ननकहू नहिं आवति॥'

मेघदूत।

नवकुमार कपालकुंडला को ले के स्वदेश में पहुंचे। वह पितृहीन थे, उन की विधवा माता ही गृह में थीं, और दो भगिनी। ज्येष्ठा विधवा थी; उस से पाठक महाशय परिचित न होंगे। दूसरी श्यामासुन्दरी सधवा और विधवा दोनों थी, क्योंकि कुलीन की पत्नी थी। वह दो एक बार हम लोगों को दर्शन देगी।

इधर नवकुमार के अज्ञात कुलशीला तपस्विनी को विवाह कर के घर ले आने से उन के आत्मीय स्वजनों ने कहां तक तुष्टि प्रकाशित की यह हम नहीं कह सकते। यथार्थ में इस विषय में उन्हें कोई क्लेश नहीं उठाना पड़ा। सब ही उन के लौट आने के विषय में निराश हो गये थे। साथ के यात्रियों ने लौट आ कर कह दिया था कि नवकुमार को व्याघ्र खा गया। पाठक महाशय मन में समझेंगे कि इन सत्यवादियों ने अपनी प्रतीति के अनुसार ही किया था किन्तु यह स्वीकार कर लेने से हम लोगों

को कल्पनाशक्ति की अवमानना करनी पड़ेगी। लौटे हुए यात्रियों में से अनेकों ने निश्चय कर के कहा था कि नवकुमार को व्याघ्र के मुख में पड़ते हम लोगों ने प्रत्यक्ष ही देखा है।--कभी २ व्याघ्र के परिमाण के विषय में भी तर्क वितर्क हुआ; किसी ने कहा "व्याघ्र आठ हाथ का होगा"—किसी ने कहा "नहीं, प्रायः चौदह हाथ का होगा।" पूर्व परिचित वृद्ध यात्री ने कहा,"जो हो, हम बहुत ही बचे, व्याघ्र ने प्रथम हमीं को लक्ष किया था, हम भाग गये; नवकुमार उतना साहसी पुरुष नहीं था; भाग न सका"।

जब यह सब घटना नवकुमार की माता आदि के कर्णगोचर हुई, तब घर में ऐसी क्रन्दनध्वनि (रोदना) उठी कि, कई दिन उस की शांति नहीं हुई. एकमात्र पुत्र के मृत्युसंवाद से नवकुमार की माता एकबारही मृतप्राय हो गई। इस समय जब नवकुमार पत्नी को ले के घर आये, तब उन से कौन पूछता कि तुम्हारी वधू कौन जाति या किस की कन्या है? सभी आह्लाद में अंधे हो गये। नवकुमार की माता ने बड़े समारोह से वधू को पालकी से उतार घर में बैठा लिया।

जब नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला हमारे गृह में आदर गृहीता हुई, तब उन का आनन्दसागर उमड़ उठा। अनादर के भय से उन्हों ने उस को पा कर के भी कुछ भी आह्लाद या स्नेह प्रकाशित नहीं किया था, अथच उन का हृदयाकाश कपालकुण्डला की मूर्त्ति ही से व्याप्त हो रहा था। इसी आशंका से वह कपाल कुण्डला के पाणिग्रहण के प्रस्ताव में अकस्मात् सम्मत नहीं हुए थे, इसी आशंका से पाणिग्रहण कर के भी गृहागमन पर्यंत एक बार भी कपा[illegible] के संग प्रेमसम्भाषण नहीं किया था। उमड़ते

हुए अनुरागसागर में तरङ्ग भी उठने न दिया था। किन्तु अब वह आशंका दूर हुई: जलराशि की गति के संमुख से वेग रोकने वाला चट्टान के हटाने से जैसे दुर्दमनीय स्रोत का वेग होता है वैसेही वेग से नवकुमार का स्नेह-सिन्धु उमड़ उठा।

यह प्रेमाविर्भाव सर्वदा बातों में व्यक्त नहीं होता, किन्तु नवकुमार कपालकुण्डला को देखने पर जिस प्रकार सजललोचनों से उस की ओर टकटकी बांध कर देखा करते; उसी से प्रकाश होता, जब झूठ मूठ भी काम का बहाना कर के कपालकुण्डला के पास आते, उसी से प्रकाश होता, जैसे बिना प्रसंग कपालकुण्डला के पास आते, उस में प्रकाश होता; जब बिना प्रसंग कपालकुण्डला के प्रसंग उत्थापन करने की चेष्टा करते तब उस से प्रकाश होता; जब दिन रात कपालकुण्डला के सुख की स्वच्छंदता का अन्वेषण करते, तब प्रकाश होता था; सर्वदा अन्यमनस्कता-सूचक पादविक्षेप में भी प्रकाश होता था। उन की प्रकृति पर्य्यन्त परिवर्त्तित होने लगी। जहां चापल्य था, वहां गंभीरता जनमी; जहां अप्रसाद था, वहां प्रसन्नता उपजी। नवकुमार का मुख सर्वदाही प्रसन्न रहता था, हृदय स्नेह का आधार बन जाने से और सभी पर भी स्नेह का आधिक्य हो गया; जिन से विरक्ति थी उनके प्रति विराग का ह्रास हुआ: मनुष्य मात्र प्रेम के पात्र हुए; पृथ्वी सत्कर्म मात्र के लिये सिरजी जान पड़ने लगी; सब संसार सुंदर ज्ञात होने लगा। प्रणय ऐसा ही है? प्रेम कर्कश को मधुर करता है, असत् को सत् करता है, अपवित्र को पुण्यवान् करता है, और अंधकार को आलोकमय करता है!

अब कपालकुण्डला का कैसा भाव है? चलो, पाठक! उस को देखने चलें।

# षष्ठ परिच्छेद।

## अवरोध।

"किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥

कुमारसंभव।

सभी जानते हैं कि, पूर्व समय में सप्तग्राम महासमृद्धिशाली नगर था। एक समय यवद्वीप से रोम पर्यन्त सभी देश के वणिक लोग वाणिज्य के लिये इसी महानगर में आते थे। किन्तु बंगीय दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी में सप्तग्राम की प्राचीन समृद्धि का लाघव होने लगा था। इस का प्रधान कारण यह था कि इस नगर के प्रान्तभाग को धोती हुई जो नदी बहती थी, इस समय उस का शरीर संकीर्ण हो चला था; सुतरां बड़े २ जहाज नगर तक नहीं आ सकते थे। इस कारण वाणिज्य बाहुल्य धीरे २ लुप्त होने लगा। वाणिज्यगौरव वाले नगरों के वाणिज्य नाश होने से सभी गौरव चला जाता है। सप्तग्राम का भी सभी गौरव चला गया। बंगीय ग्यारहवीं शताब्दी में हुगली नई सजावट से इस की प्रतिद्वन्द्वी हो उठी। वहां पोर्टुगीज जाति वाले वाणिज्य आरम्भ करके सप्तग्राम की धनलक्ष्मी को खींचने लगे। किन्तु तो भी सप्तग्राम एक वार ही श्रीरहित नहीं हुआ। वहां अभी तक फौजदार आदि प्रधान राजपुरुषों का निवास था किन्तु नगर के

अधिकांश में श्रीभ्रष्ट और उजाड़ हो के मरई का आकार धारण कर लिया था।

सप्तग्राम के एक उजाड़ महल्ले में नवकुमार का वास था। अब सप्तग्राम की उजड़ी दशा में वहां प्रायः मनुष्यों का समागम नहीं था; सब राजपथ लतागुल्म आदि से परिपूरित हो गये थे। नवकुमार के गृह के पश्चाद्भागों में एक घना वन था। घर के सम्मुख प्रायः आध कोस दूर एक छोटी सी बरसाती नदी बहती थी; वह नदी एक छोटा मैदान घोगांठती हुई गृह के पश्चात् भागस्थ वन में जा घुसी थी। घर ईंटों से बना था; देशकाल विचार से वह नितांत सामान्य गृह नहीं कहा जा सकता था। दोमंजिला था, पर बहुत ऊंचा नहीं था; आज कल बहुतेरे एकमंजिले घर भी वैसे ऊंचे दिखाई देते हैं।

उसी गृह की अटारी पर दो नवीन अवस्थावाली स्त्रियां खड़ी हो कर चारों ओर देख रही थीं। संध्या उपस्थित थी। चारों ओर जो दिखाई देता था, वह लोचनरंजन था। निकट, एक ओर तो निबिड़ वन है; उस में अनेक पक्षी कलरव करते हैं। दूसरी ओर क्षुद्रनाला चांदी के सूत्र की भांति दीखता है। दूर महानगरी की असंख्य सौधमालायें थीं, जो नव वसंत के पवन-स्पर्श के रसिये नगरनिवासियों से परिपूरित हो के शोभा देती थीं। दूसरी ओर कुछ दूर पर नौकाओं से भरी भागीरथी के विशाल वक्ष में संध्या का अंधेरा क्षण २ में गाढ़तर होता जाता था।

जो दोनों नवीना प्रासाद के ऊपर खड़ी थीं, उन में एक चांदनी सी गोरी थी; वह बिखरे केशभार के भीतर आधी छिपी हुई थी।

दूसरी कन्याओं थी वह सुमुखी, और षोडशी थी उस की छोटी देह, छोटा मुख और उस के ऊपरी आधे भाग को चारों ओर से छोटे २ कुंचित केशदाम घेर रहे थे। मानो नीलोत्पलदलसमूह ने उत्पल के मध्यभाग को घेर रक्खा था। नयन युगल विस्फारित कोमल श्वेतवर्ण मीन के सदृश थे: उस की छोटी २ अंगुलियां सङ्गिनी के केशतरंग में गोता मार रही थीं। पाठक महाशयों ने समझा होगा कि चन्द्ररश्मिवर्ण-शोभिनी कपालकुण्डला थी, दूसरी को बताये देता हूं, वह कन्यागी उस की ननद श्यामासुन्दरी थी।

श्यामासुन्दरी भौजाई को कभी 'बहू' कभी आदर करके 'बहिन' कभी 'मृणा' कह के पुकारा करती थी। कपालकुण्डला नाम को विकट जान के घरवालों ने उस का नाम मृण्मयी रक्खा था। इसी लिये 'मृणा' सम्बोधन था। हम लोग भी अब से कभी २ इसे मृण्मयी कहैंगे।

श्यामासुन्दरी एक बचपन की पोथी कविता पढ़ने लगी, यथा

कहते हैं—निशि आए पदमावती, राखत बदन छिपाय।
खिलैं कली कूटैं अली, प्राननाथ को पाय॥

फिर—छाड़ि पात बन की लता, चलैं बिरिछ छिमि धाय।
ज्यों नदियन को जल उमगि, सागर को मैं जाय॥

छिछि—छाड़ि लाज फूलैं कुमुद, पाय चन्द परकास।
लाज, बहू नहिं रखि सकैं, पुहुप सेज के पास॥

आह!—यह बिधि की का खेल है, कौन हृदय मैं पौर।
परबस सब ह्वै जात हैं, तोड़ि लाज प्राचीर॥

क्यों री, तू क्या तपस्विनी ही बनी रहेगी ?

मृण्मयी ने उत्तर दिया, " क्यों मैं क्या तपस्या करती हूं ?"

श्यामासुन्दरी ने दोनों हाथों से मृण्मयी की केशतरंगमाला को उठा के कहा, " अब भी इस केशराशि को न बांधोगी ?"

मृण्मयी ने केवल थोड़ा हंस के श्यामासुन्दरी के हाथ से केशगुच्छ खींच लिया।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा, " अच्छा, मेरा साध पुराओ। एक बेर हम लोगों को गृहस्थ की बहू की भांति सज्जित हो। कितने दिन योगिनी रहोगी ?"

मृ०। जब इन ब्राह्मण सन्तान के संग भेंट नहीं हुई थी, तब तो मैं योगिनी ही थी।

श्या०। पर अब न रहने पाओगी।

मृ०। क्यों न रहने पाऊंगी ?

श्या०। क्यों ? देखोगी ? मैं तेरा योगखण्डन करूंगी। पारस पत्थर किसे कहते हैं जानती हो ?"

मृण्मयी ने कहा, "नहीं।"

श्या०। पारस पत्थर के स्पर्श होने से लोहा भी सोना हो जाता है।

मृ०। इस से क्या ?

श्या०। स्त्रियों के भी एक पारस पत्थर है।

मृ०। वह क्या ?

श्या०। पुरुष, पुरुष की हवा लगने से योगिनी भी भोगनी हो जाती है। तू ने उसी पत्थर को छूआ है, देखना—

सीधे केश सवारि भले पहिराऊं सुन्दर बासा (वस्त्र)
गूँधि मांग महँ फूल लगाऊं सेंदुर साथे श्यामा ॥
चंदहार पहराइ गले में करनफूल दोउ कानैं।
कुंकुम चोआ चंदन लाऊं पान दान भरि पानैं ॥
रंजित ह्वै है मुखरंगन सों, रूप जोति जग जागै।
देखौं सुन्दर कुंवर गोद में मन लागै जिन आगै ॥"

मृण्मयी ने कहा, "भला, समझी। मान ला, पारस पत्थर छू लिया, और मैं सोना हो गई। केश भी बांध लिया, और कपड़े भी पहन लिये, चोटी में फूल भी लगा लिये; गले में चन्द्रहार पहिना; कानों में कर्णफूल लटका लिये; चंदन, कुंकुम, चोआ, पान और सोने की पुतली पर्यंत सब हो गया। पर इस के होने ही से क्या सुख है?"

श्या०। कहो तो, फूल फूलने से क्या सुख है?

मृ०। लोगों के देखने में सुख है, फूल को क्या?

श्यामा सुन्दरी की मुखकांति गंभीर हुई; भोर की बयार के झकोर से कम्पित नीलकमल से बड़े २ नयन कुछ चंचल होने लगे; बोली, "फूल को क्या? सो तो नहीं कह सकती। कभी फूल की नाईं खिली नहीं हूं। किन्तु यदि तुम्हारी तरह कली होती, तो खिलने से सुख होता।"

श्यामासुन्दरी कुलीन पत्नी थीं।

श्यामासुन्दरी ने उसे नीरव देख के कहा,

"अच्छा, वही यदि हुआ,—तो कहो तुम्हें कौन सुख है?"

मृण्मयी ने कुछ देर सोच कर के कहा, "नहीं कह सकती, समझती हूं कि समुद्रतीर उसी वन में घूमने से मुझे सुख होता है।"

श्यामासुन्दरी कुछ विस्मित हुई। उन लोगों के आदर से जो मृण्मयी सुखी नहीं हुई इस से कुछ क्षुब्ध हुई, और कुछ रुष्ट हुई। कहा, "अब फिर जाने का उपाय ?"

मृ०। उपाय नहीं है।

श्या०। तब क्या करोगी ?

मृ०। अधिकारी कहा करते थे, "यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।"

श्यामासुन्दरी ने मुख पर कपड़ा लगा के हंस के कहा, "जो आज्ञा भट्टाचार्य महाशय ! क्या हुआ ?"

मृण्मयी ने निश्वास त्याग कर के कहा, "जो विधाता करावेंगे, वही करूंगी ? जो भाग्य में है, वही होगा।"

श्या०। क्यों, कपाल में और क्या है ? प्रारब्ध में सुख है। तुम क्यों दीर्घ निश्वास त्याग करती हो ?

मृण्मयी ने कहा, "सुनो, जिस दिन स्वामी के संग यात्रा की थी, उस समय में भवानी के चरण पर बेलपत्र चढ़ाने गई। मैं माता के चरणकमल पर बिना बिल्वपत्र चढ़ाये कोई काम नहीं करती थी। यदि काम में शुभ होना होता तो मा बिल्वपत्र अङ्गीकार करती थीं; और यदि अमंगल होने की सम्भावना होता तो, बेलपत्र गिर जाता था। अनजाने पुरुष के संग अज्ञात देश में आने में शङ्का होने लगी; भला बुरा जानने के लिये माता के पास गई। माता ने बेलपत्र ग्रहण नहीं किया—इस से भाग्य में क्या है नहीं जानती।"

मृण्मयी यह कह के चुप हो रही। श्यामासुन्दरी कांप उठी।

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ ॥

# तृतीय खण्ड ।

—o—

भूतपूर्व ।

" कष्टोयं खलु भृत्यभाव: "

रत्नावली ।

जब नवकुमार ने कपालकुण्डला को ले के चट्टी में यात्रा की तभी मोती बीबी ने दूसरे पथ से वर्द्धमान की ओर प्रस्थान किया था। जब तक मोती बीबी राह ले करती हैं तब तक हम लोग उन के कुछ पूर्व वृत्तान्त को कह देते हैं। उन का चरित्र महा दोषों से कलुषित; पर महत् गुणों से भी शोभित था। ऐसे चरित्र के सविस्तर वर्णन से पाठक महाशय असंतुष्ट न होंगे।

जब इस के पिता ने महम्मदीय धर्म को अवलंबन किया था, उस समय इस का हिन्दूनाम परिवर्त्तित कर के लुत्फउन्निसा नाम रक्खा गया। इस का किसी समय मोती बीबी नाम न था। परन्तु कभी २ छद्मवेश से देश विदेश भ्रमण करने के समय यह नाम धारण करती थी। इस के पिता ढाका में आ के राजकाज में नियुक्त हुए थे। किन्तु वहां पर अनेक स्वदेशी लोगों का समागम था। अपने समाज में च्युत हो के रहना किसी को अच्छा नहीं लगता। इस से वह कुछ दिन में सूबेदार के निकट प्रतिष्ठा पा के, उन के सुद्धत् अनेक अमीरों के नाम पत्र लिखा के

सपरिवार आगरे चले आए। अकबरशाह के निकट किसी का भी गुण अविदित नहीं रहता था, अतः शीघ्र ही उन्हों ने इन का गुण ग्रहण किया। लुत्फउन्निसा के पिता शीघ्र ही उच्चपदस्थ हो कर आगरा के प्रधान अमीरों में गिने गये। इधर लुत्फउन्निसा क्रमशः वयःप्राप्त होने लगी। आगरा में आ के वह फारसी, संस्कृत, नृत्य, गीत, रसवाद आदि में सुशिक्षित हुई। राजधानी की असंख्यरूपवती और गुणवतियों में यह अग्रगण्य होने लगी। दुर्भाग्यवश विद्यासम्बन्ध में उसे जैसी शिक्षा हुई थी धर्मसम्बन्ध में कुछ भी नहीं हुई। लुत्फउन्निसा का वयस पूर्ण होने से प्रकाश होने लगा कि उस के मन की वृत्ति दुर्दमवेगवती है, इन्द्रियदमन की किंचिन्मात्र क्षमता नहीं थी, इच्छा भी नहीं थी। सत् असत् में समान प्रवृत्ति थी। यह काम सत् है, यह असत् है, ऐसा विचार के वह किसी काम में प्रवृत्त नहीं होती थी; जो अच्छा लगता, वही करती थी। जब सत् कर्म से अंतःकरण सुखी होता, तब सत्कर्म करती; जब असत् कर्म से अंतःकरण सुखी होता तब असत्कर्म करती थी; यौवनकाल की मनोवृत्ति के दुर्दमनीय होने से जो सब दोष उत्पन्न होते हैं वे सब लुत्फउन्निसा में सहजही आ गये। उस के पूर्व स्वामी वर्त्तमान थे—इस से कोई अमीर उस से विवाह करने में संमत नहीं हुआ। वह भी विवाह के लिये बहुत अनुरागिनी नहीं हुई। मन में सोचा कि कुसुम २ में विहार करनेवाली भ्रमरी का पक्षच्छेद क्यों कराऊं ? पहिले कानाकानी थी- शेष में कालिमामय कलंक फैल गया। उस के पिता ने क्रुद्ध होकर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया

लुत्फउन्निसा गोपन में जिन लोगों पर कृपा करती थीं, उन में युवराज सलीम भी थे। एक अमीर के कुल में कलंक लगा के अपने अपक्षपाती पिता के कोपानल में पतित होना न पड़े इस आशंका से अभी तक सलीम लुत्फउन्निसा को अपने महल में रख नहीं सके। पर अब सुयोग पाया। राजपूतपति मान सिंह की भगिनी, युवराज की प्रधाना महिषी थी। युवराज ने लुतफउन्निसा को उन की प्रधान सहचरी कर दिया। लुत्फउन्निसा प्रकाश में बेगम की सखी, औ परोक्ष में युवराज की अनुग्रह-भागिनी हुई।

लुत्फउन्निसा की भांति बुद्धिमती महिला अल्पदिन में ही राजकुमार के हृदय पर अधिकार जमा लेगी, यह सहजही में विदित हो सकता है। सलीम के चित्त पर उस का प्रभुत्व इस प्रकार अकण्टक जम गया कि लुत्फउन्निसा उपयुक्त समय में उन की पटरानी होगी, यह उस की स्थिरप्रतिज्ञा हुई। केवल लुत्फउन्निसाही की स्थिरप्रतिज्ञा हुई ऐसा नहीं, सभी राजपुरवासी यह संभव समझने लगे। इसी आशा के स्वप्न में लुत्फउन्निसा जीवन को बिता रही थी, इतने ही में निद्रा भंग हुआ। अकबरशाह के कोषाध्यक्ष ( एतिमादुद्दौला ) ख्वाजा आव्वास की कन्या मिहरउन्निसा यवनकुल में प्रधान सुन्दरी थी। एक दिन कोषाध्यक्ष ने राजकुमार सलीम और अन्यान्य प्रधान पुरुषों को निमंत्रित कर के घर में बुलाया था। उसी दिन मिहरउन्निसा के संग सलीम का साक्षात हुआ। और उसी दिन सलीम मिहिरउन्निसा के निकट अपना चित्त रख आये इस के आगे जो हुआ

भी इतिहास के सभी पाठक जानते हैं। शेरअफ्गनखां नामक एक परम विक्रमशाली अमीर के संग कोषाध्यक्ष की कन्या का सम्बन्ध पहिलेही हो चुका था। सलीम अनुरागान्ध हो के उस सम्बन्ध को तोड़ने के लिये पिता के निकट प्रार्थी हुए। किन्तु इस के विरोधी पिता के निकट केवल उन्हें अपमान भोगना पड़ा। लाचार सलीम को उस समय चुप रहना पड़ा; उस समय चुप रहे सही, किन्तु उन्हें आशा नहीं छोड़ा। शेर अफगन खां के संग मेहरउन्निसा का विवाह हुआ। किन्तु सलीम की सब चित्त वृत्ति लुत्फउन्निसा के नखदर्पण में थी; उस ने निश्चय जान लिया था कि शेर अफगन खां का सहस्रप्राण रहने पर भी निस्तार नहीं है। अकबरशाह की मृत्यु होते ही उस का भी प्राणान्त होगा— मिहरउन्निसा सलीम की महिषी होगी, इस विचार से लुत्फउन्निसा ने सिंहासन की आशा त्याग दी।

मुहम्मदीय सम्राट-कुलगौरव अकबरशाह की परमायु शेष हो गई। जिस प्रचंड सूर्य की प्रभा से तुर्किस्तान से लेकर ब्रह्मपुत्र तक प्रदीप्त हो रहा था, वह सूर्य अस्त हुआ। इस समय लुत्फउन्निसा ने अपनी प्रधानता रखने के लिये एक दुःसाहसिक संकल्प किया।

राजपूतपति राजा मानसिंह की भगिनी सलीम की प्रधाना महिषी थी, उस का पुत्र खुसरो था। एक दिन महिषी के संग अकबरशाह की शरीरपीड़ा के सम्बन्ध में लुतफउन्निसा की बातचीत होती थी। राजपूत कन्या अब शाहज़ादा की बेगम होगी, यह कथा प्रसंग उठा कर लुतफउन्निसा उस का अभिनंदन करती थी,

प्रत्युत्तर में खुसरो की जननी ने कहा, "बादशाह की बेगम होने से ज़िन्दगी का लुत्फ हासिल होता है, लेकिन जो बादशाह की मा है, उस का दर्जा सब से आला है। उत्तर सुनते ही एक अपूर्व चिंतित विचार लुत्फउन्निसा के हृदय में उदय हुआ। उस ने उत्तर दिया, " वही क्यों नहीं होती ? वह भी तो आप के हाथ ही में है।" बेगम ने कहा. "क्योंकर ?" चतुरा ने उत्तर दिया, "शाहजादे खुसरो को तख़्त पर बिठला दीजिए।"

बेगम ने कोई उत्तर न दिया। उस दिन यह प्रसंग पुनः उत्थापित नहीं हुआ, पर कोई यह बात भूली नहीं। स्वामी के बदले पुत्र सिंहासन पर बैठे, यह बेगम को अनभिमत नहीं था ; मिहर उन्निसा पर सलीम का अनुराग जैसा लुत्फउन्निसा को असह्य था, बेगम को भी वैसा ही था। मानसिंह की भगिनी नई मुसल्मानी आज्ञा में रहेगी, यह क्यों अच्छा लगेगा ? लुत्फउन्निसा का भी इस संकल्प में उद्योगिनी होने का गाढ़ तात्पर्य था। दूसरे दिन फिर यही प्रसंग उठा। दोनों का मत स्थिर हुआ।

सलीम को त्याग कर खुसरो को अकबर के सिंहासन पर स्थापन करने की असंभावनीयता ज्ञात होने का कोई कारण नहीं है। यह बात लुत्फउन्निसा ने बेगम को अच्छी तरह हृदयंगम करा दी। उस ने कहा, "मुगलों की सलतनत राजपूतों के बाहु-बल से कायम है ; और उस कौम के सरताज राजा मानसिंह खुसरो के मामू हैं और मुसल्मानों के सरदार खाँनि आज़म वज़ीरे आज़म हैं ; वह भी खुसरो के ससुर हैं। इन दो शख़्सों की कोशिश से क्या नहीं हो सकता। सब इन के हुक्म

मानेंगे। फिर किस के बल से सलीम तख़्त पर बैठेंगे। राजा मान-सिंह को इस काम में मुसलमानों को तैयार करना आप का फ़र्ज़ है और खानेआज़म वग़ैरह मुसलमानों को तैयार करने का बार (भार) मैं लेती हूं। आप की दुवा से नाकामयाब न हूंगी, लेकिन खौफ़ इतना है, कि पीछे कहीं तख़्त पर बैठ के खुसरो बंदी को शहर-बदर न कर दें।"

बेगम ने सहचरी का अभिप्राय समझ कर हंस के कहा, "तुम आगरे के जिस अमीर की बीबी होना चाहो, वही तुम्हें क़बूल करेगा। तुम्हारे शौहर पांच हज़ार के मंसबदार होंगे"।

लुतफ़उन्निसा सन्तुष्ट हुई। यही उस का उद्देश्य था। यदि राजपुरी में सामान्य पुरस्त्री हो के रहना पड़ा, तो प्रति पुष्पविहारिणी मधुकरी का पक्षच्छेदन करने से क्या सुख हुआ? यदि स्वाधीनता त्याग करना पड़ा, तो बाल्यसखी मेहरउन्निसा के दासीत्व में क्या सुख है? उन की अपेक्षा किसी प्रधान राजपुरुष की महिषी होना गौरव का विषय है।

केवल इसी लोभ से लुतफ़उन्निसा इस काम में प्रवृत्त भी नहीं हुई थी। सलीम उस की उपेक्षा कर के मेहरउन्निसा के लिये व्याकुल हैं, इस का प्रति-शोध भी उस का उद्देश्य था।

खानेआज़म वग़ैरह आगरा और दिल्ली के उमरा लोग लुतफ़उन्निसा के अतिशय बाध्य थे। खानेआज़म जामाता के इष्टसाधन में उद्यत होंगे, इस में विचित्रता ही क्या थी। वह और अन्यान्य उमरा भी सहमत हुए। खानेआज़म ने लुतफ़उन्निसा से कहा, फ़र्ज़ करो, अगर किसी वायस से हम लोग कामयाब न हुए तो हमारी

तुम्हारी क्या हालत होगी ? इस से जान बचाने के लिये एक रास्ता रख लेना अच्छा है।"

लुत्फ़उन्निसा ने कहा, "आप की क्या राय है?" ख़ाँ आज़म ने कहा, "उड़ीसा के सिवा दूसरी राय महफ़ूज़ नहीं है। सिर्फ वहां ही मुग़लशासन विशेष प्रबल नहीं है। वहां की सेना हम लोगों के हाथ रहना ज़रूरी है। तुम्हारे भाई साहब उड़ीसा के मन्सबदार हैं; हम कल मशहूर कर देंगे कि वह लड़ाई में ज़ख़्मी हो गए हैं और तुम कल ही उन को देखने के बहाने से उड़ीसा को रवाना हो जाना और वहां जो कुछ करना हो कर के जल्द वापिस आना, बस।"

लुत्फ़उन्निसा इस परामर्श से संमत हुई। वह उड़ीसा से जब लौटी हुई आती थी, उसी समय पाठक महाशयों के संग उस का साक्षात् हो चुका है।

---

# द्वितीय परिच्छेद ।

## पथान्तर ।

"जा माटी में जन गिरें, उठैं ताहि पुनि धारि ।
एकहि बार निरास ह्वै, कौन रहै मन मारि ॥
पर्यो पौन के चक्र में, तऊ न छाड़ौ चाल ।
आज विफल जो ह्वै गयो, सफल ह्वायगो काल्ह ॥"

नवीन तपस्विनी ।

जिस दिन नवकुमार को विदा कर के मोती बीबी या लुत्फउन्निसा ने बर्दवान की ओर यात्रा की थी, उस दिन वह बर्द्धमान तक न जा सकी । दूसरी चट्टी में रही । वहां संध्या समय पेषमन के सङ्ग एकत्र बैठी बातचीत करती थी, इतने में मोती ने एकाएक पेषमन से पूछा,

"पेषमन ! मेरे शौहर को कैसा देखा ?"

पेषमन ने कुछ विस्मित हो के कहा, "और कैसा देखूंगी ?" मोती ने कहा, "खूबसूरत हैं कि नहीं ?" नवकुमार के प्रति पेषमन का विशेष क्रोध हुआ था । जो अलंकार मोती ने कपालकुण्डला को दे दिये थे, उन पर पेषमन को विशेष लोभ था; मन में भरोसा था कि एक दिन मांग लूंगी । सो आशा निर्मूल हो गई । इसलिये कपालकुण्डला और उस के स्वामी दोनों पर उस को दारुण क्रोध हुआ था, अतएव स्वामिनी के प्रश्न का उत्तर दिया:—

"गरीब बह्मन की खूबसूरती या बदसूरती से क्या ?"

सहचरी के मन का भाव समझ के मोती ने हास्य कर के कहा,

' वही अगर उमरा में शामिल हो जाय, तो खूबसूरत मालूम होगि या नहीं ?"

पे०। फिर क्या कहना है ?

मोती०। क्या, तुम नहीं जानती कि बेगम ने कुबूल कर लिया है कि खुसरो के बादशाह होने से तेरा शौहर उमराव होगा ?

पे०। यह तो जानती हूँ, लेकिन तुम्हारे पहिले शौहर क्योंकर उमराव होंगे ?

मोती। तो मेरा और कौन शौहर है ?

पे०। जिन से निकाह हो।

मोती ने मुसकिरा के कहा, "मुझ सी पाकदामन के दो शौहर बड़े ग़ज़ब की बात है—वह कौन जाता है ?"

जिसे देख के मोती ने कहा, "वह कौन जाता है" पेशमन ने उसे चीन्हा; वह आगरा-निवासी ख़ान आज़म का नौकर था। दोनों व्यस्त हुईं। पेशमन ने उसे पुकारा। उस व्यक्ति ने आकर लुत्फ़उन्निसा को अभिवादन कर के एक पत्र दिया। कहा,

" खत लिये हुए उड़ीसा जाता था। यह खत जरूरी है।"

पत्र पढ़ के मोती बीबी का आशा भरोसा सब अस्त हो गया। उस पत्र का मर्म यही था—

"हमलोगों की कोशिश बरबाद गई। मौत के वक्त भी अकबर ने अपनी अक़्ल के जोर से हमलोगों को शिकस्त दी। उन का इन्तकाल हो गया। उन की मर्ज़ी से शाहज़ादे सलीम अब जहांगीर शाह हुए हैं। तुम खुसरो के लिये परेशान मत हो। इस काम में

कोई तुम्हारा दुश्मन न हो जाय, इस की फिक्र के लिये तू जल्द आगरे चली आओ।"

अकबर शाह ने जिस प्रकार से इस षड्यन्त्र को निष्फल किया था, वह इतिहासों में वर्णित है; यहां उस के विवरण की कोई आवश्यकता नहीं है।

पुरस्कार पूर्वक दूत को बिदा कर के मोती ने पेशमन को पत्र सुनाया। पेशमन ने कहा,

"अब क्या तदबीर है ?"

मोती। कोई तदबीर नहीं।

पे०। (क्षण भर चिन्ता कर के, अच्छा, हर्ज ही क्या है? जैसा था, वैसा ही रहेगा। मुगल बादशाह के यहां की बांदियां भी महारानियों से कम नहीं है।

मोती। (कुछ हंस के) यह अब नहीं हो सकता। अब यहां न रहने पाऊंगी। मेहरउन्निसा के साथ जल्दी ही जहांगीर का निकाह होगा। और मेहरउन्निसा को मैं लड़कपन से जानती हूं। एकदम वह बादशाह की बेगम हो जायगी; जहांगीर सिर्फ नाम के बादशाह रहेंगे। मैं ने जो उन की तख्तनशीनी में हर्ज डालने की कोशिश की थी, यह भी उन से छिपा न रहेगा। तब मेरी क्या हालत होगी ?"

पेशमन आंसू भर के बोला, "तब क्या होगा ?"

मोती ने कहा. "एक उम्मीद है। मेहरउन्निसा का दिल जहांगीर की तरफ कैसा है? उस को जैसी समझती हूं, उस से अगर वह जहांगीर को मुहब्बत न करे तो जहांगीर सैकड़ों शेर

अफगन को कत्ल करने पर भी मेहरउन्निसा को न पावेंगे। और अगर मेहरउन्निसा जहांगीर को सचमुच चाहती हो तो और तदबीर नहीं।"

पे०। मेहरउन्निसा के दिल का हाल किस तरह जानोगी?

मोती ने हंस के कहा, "लुत्फउन्निसा क्या नहीं कर सकती? मेहरउन्निसा मेरी गोइयां (सखी) है। कल बर्दवान जा के उस के पास दो दिन रहूंगी।"

पे०। अगर मेहरउन्निसा बादशाह को पसंद न करती हो तो क्या करोगी?

मोती०। वालिद कहा करते हैं कि "तत्रे कर्म विधीयते" दोनों कुछ देर चुप हो गईं। किंचित् हंसी से मोती का अधर कंपित होने लगा। पेश्मन ने पूछा, "क्या हंसती हो?"

मोती ने कहा, "एक नई बात दिल में आई है।"

पे०। कौन नई बात है?

मोती ने वह पेश्मन से नहीं कहा। हम भी उसे पाठक महाशयों को न बतावेंगे, पीछे प्रकाश हो जायगी।

# तृतीय परिच्छेद ।

## प्रतियोगिनीगृह ।

"श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति ।"

उद्धवदूत ।

इस समय शेर अफगन खां बंगदेश के सूबेदार की अधीनता में बर्द्धमान के कर्माध्यक्ष हो के वास करते थे ।

मोती बीबी बर्द्धमान में आ के शेर अफगन के घर में पहुंची। शेर अफगन ने आदरपूर्वक उसे सपरिवार अपने यहां निवास दिया । जब शेर अफगन अपनी स्त्री मेहरउन्निसा सहित आगरे में रहते थे तभी से मोती बीबी उन लोगों से विशेष परिचित थी। मेहरउन्निसा के संग उस का विशेष प्रणय था। पीछे दोनों ही दिल्ली के साम्राज्य के लोभ के लिये प्रतियोगिनी हुई थीं। अब एकत्र होने से मेहरउन्निसा मन में सोचती थी, खुदा ने हिंद की सल्तनत न मालूम किस की किस्मत में लिखी है ? खुदा ही जाने या सलीम जाने, और कोई जानता है तो सिर्फ़ लुत्फ़उन्निसा; देखूं, लुत्फ़उन्निसा कुछ बयान करती है या नहीं ?" मोती बीबी की चेष्टा भी मेहरउन्निसा के अभिप्राय जानने की थी ।

मेहरउन्निसा ने उस समय भारतवर्ष में प्रधान रूपवती और गुणवती के नाम से प्रसिद्धि लाभ कर रक्खी थी। वस्तुतः वैसी रमणी विरली ही भूमंडल में प्रगटी होगी। सौंदर्य के विषय में इतिहासप्रसिद्ध स्त्रियों में उस की प्रधानता सभी ऐतिहासिक स्वीकार करते हैं किसी प्रकार की विद्या में भी उस समय के

पुरुषों में से बड़े २ व्यक्ति उस की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं थे। नृत्य गीत में मेहरउन्निसा अद्वितीया थी ; कवितारचना में और चित्र लिखने में वह सभों का मन मोहित करती थी। उस की सरस बातें, उस के सौंदर्य की अपेक्षा भी अधिक मोहने वाली थीं। मोती भी इन सब गुणों से हीना नहीं थी। आज ये दोनों चमत्कारिणी एक दूसरी के मन की बात जानने के लिये उत्सुक हुई हैं।

मेहरउन्निसा खास कमरे में बैठी तस्वीर बनाती थी, मोती उस के पीठ की ओर बैठी चित्र लिखना देखती और पान खाती थी। मेहरउन्निसा ने पूछा, "तसवीर कैसी बनी है?" मोती बीबी ने उत्तर दिया, "तुम्हारे क़लम से जैसी होनी चाहिये, वैसी ही बनी है। और दूसरा कोई तुम्हारी तरह इस काम में होशयार नहीं है, यही अफ़सोस है।"

मेह०। अगर यही सच हो तो अफ़सोस क्या है?

मो०। दूसरे को तुम्हारी तरह महारत होती तो तुम्हारे मुंह का नक्शा खींच सकता।

मे०। कब्र की मिट्टी में चिहरे का नक्शा रहेगा।

मेहरउन्निसा ने यह बात कुछ गंभीरता के संग कही।

मो०। बहिन! आज सुस्त सी क्यों हो?

मेह०। सुस्ती की बात ही है। तुम मुझे कल सुबह होते ही छोड़ जाओगी, यह दुख किस तरह भूलूंगी? और दो दिन क्यों न रहती?

मो०। सुख की ख़ाहिश किस को नहीं है। बहिन! मेरा बस होता तो कभी न जाती? पर क्या करूं, मैं दूसरे के बस हूं, कैसे रहूं।

मेह० । मेरे साथ अब तुम्हें तो मुहब्बत नहीं रही, नहीं, तो किसी न किसी बहाने से रह जातीं । आई हो तो रहती क्यों नहीं ?

मो० । मैं तो सभी बातें बतला चुकी हूँ । मेरे भाई फ़ौजेमुगलिया में मनसबदार हैं—वह पठानों के साथ लड़ाई में ज़खमी हो गए थे, उन्हीं की खबर पा कर बेगम साहिब की इजाज़त से आई थी । उड़ीसा में बहुत दिन लग गए, अब और ज़ियादा देर करना मुनासिब नहीं है । तुम से बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई थी, इसी लिये दो दिन रह गई ।

मेह० । बेगम के पास किस दिन पहुँचने का करार कर आई हो ?

मोती ने समझा कि मेहरउन्निसा व्यंग करती है । साफ़ और मर्मभेदी व्यंग में मेहरउन्निसा जैसी निपुणा थी, मोती वैसी न थी, किन्तु दब जाने वाली भी न थी । उस ने उत्तर दिया, "दिन मुकर्रर कर के क्या तीन महीने की राह आना जाना मुमकिन है ? हां, बहुत दिन लगा दिये हैं ; अब ठहरना दुरुस्त नहीं । नाराज़गी का डर है ।"

मेहरउन्निसा ने अपनी भुवन मोहिनी हंसी से हंस के कहा "किस की नाराज़गी से डरती हो ? हज़रत सलीम की या उन की बीबी साहिबा की ?"

मोती ने ज़रा भिटपिटा के कहा, "मुझे बेशर्म को क्यों शर्मिंदा करती हो ? दोनों ही का डर है ।"

मे० । लेकिन मैं पूछती हूं—तुम खुद क्यों नहीं बेगम बनती ? सुना था सलीम साहब तुम से निकाह कर के खास बेगम बनावेंगे । वह कब तक ?

मो०। मैं तो पराए कब्जे में हूंगी। जो कुछ खुद मुख्तारी है उसे भी क्यों खोऊंगी? बेगम की जलीम बांदी या सखी होने से तो उड़ीसा तक आने भी पाई, सलीम की बेगम होने पर क्योंकर आने पाती?

मे०। जो जहांपनाह की बेगम होगी, उसे उड़ीसा आने का मतलब?

मो०। सलीम की बेगम बनने का इरादा तक मैंने नहीं किया, क्योंकि इस हिन्दुस्तान में सिर्फ मेहरुन्निसा ही उस की बाहनें जान के लायक है?

मेहरुन्निसा ने मुख झुका लिया। जरा भर निरुत्तर रह के कहा, "बहिन! मैं ऐसा नहीं समझती कि तुम ने मुझे तकलीफ देने के लिये यह कहा हो, या मेरी ख्वाहिश जानने के लिये कहा हो, पर तुम से यही मांगती हूं, कि जिस की (शेर अफ़गन की) हूं उसी की हूं और तरह की बात मत कहो।"

लज्जाहीना मोती इस तिरस्कार से निरुत्तर न हुई। इसे और भी सुअवसर पाया। कहा, "तुम जो पाकदामन हो. यह मैं खूब जानती हूं। इसी लिये इस बात को तुम्हारे सामने उठाने की हिम्मत की है कि सलीम अब तक तुम्हें भूले नहीं, यही बात जाहिर करना मुझे मंजूर है। होशियार रहना"।

मे०। अब समझी। पर किस का खौफ है?

मोती ने किंचित् इधर उधर कर के कहा, "बेवा हो जाने का।" यह बात कह के मोती मिहरुन्निसा के मुख की ओर तीव्र दृष्टि

कर के रह गई। किन्तु भय वा आह्लाद का कोई चिन्ह न देख पाई। मेहरउन्निसा ने दर्पपूर्वक कहा,

" बेवा हो जाने का खौफ़! शेर अफ़गन कमजोर नहीं हैं। खासकर अकबर के उमराओं में उन के शाहजादे भी किसी को बिला कुसूर कतल कर के बच नहीं सकते।"

मे०। यह सच है, पर आज कल आगरे की खबर यह है कि अकबरशाह गुज़र गये। सलीम बादशाह हुए हैं। फिर उन्हें कौन रोकेगा?

मेहरउन्निसा ने और कुछ नहीं सुना। उस का सर्वाङ्ग थर थर कांपने लगा। फिर मुख नीचा कर लिया, लोचन युगल से अश्रुधारा बहने लगी। मोती ने जिज्ञासा की, "रोती क्यों हो?"

मेहरउन्निसा ने निश्वास त्याग कर के कहा, " सलीम तख्त पर हैं, और मैं कहां हूं?"

मोती की मनकामना सिद्ध हुई। उस ने कहा, "तुम आज भी उन्हें भूली नहीं हो?"

मेहरउन्निसा ने गद्गद् स्वर में कहा, "किस को भूलूंगी? जिन्दगी को चाहे भूल जाऊं, पर उन को न भूल सकूंगी। लेकिन सुनो, बहिन! मन का किवाड़ खुल गया, तुम ने यह बात सुनी, तुम्हें मेरी सौगन्द है, यह बात दूसरे के कान में न पड़े।"

मोती ने कहा, " अच्छा, यही होगा। पर जब सलीम सुनेंगे कि मैं बर्दवान आई थी, तब वह जरूर पूछेंगे कि मेहरउन्निसा ने मेरी क्या बात कही? तब क्या जवाब दूंगी?"

मेहरउन्निसा ने कुछ देर सोच के कहा, " यह कहना कि मेहरउन्निसा दिल से उन का ध्यान करेगी, काम पड़े तो उन के लिये जान तक दे देगी। पर कभी अपने खानदान की इज्जत न

खोएगी। न बन्दी अपने शौहर के जीते जी कभी हुज़ूर को मुँह दिखाएगी। और अगर हुज़ूर की मरज़ी से उन्हें कुछ हो गया तो ख़ाविन्द के क़ातिल को बन्दी मुँह न देखेगी।”

यह कह के मेहरउन्निसा वहाँ से उठ गई। मोती बीबी चमत्-कृत हो रहीं; किन्तु जीत इन्हीं की हुई। मेहरउन्निसा के मन का भाव इन्हों ने जाना; पर इन की मनसा मेहरउन्निसा कुछ भी न जानने पाई। जो कि अपनी बुद्धि के प्रभाव से दिल्लीश्वर की भी ईश्वरी हुई थी, वह भी मोती के निकट पराजित हुई। इस का कारण, मेहरउन्निसा प्रणयशालिनी; और मोती बीबी इस स्थल में केवल स्वार्थ-परायणा थी।

मनुष्य के हृदय की विचित्र गति मोती बीबी विलक्षण जानती थी। मेहरउन्निसा की बातों की समालोचना कर के जो उस ने सिद्धान्त किया था, समय पर वही यथार्थ हुआ। उस ने समझा कि मेहरउन्निसा जहाँगीर की अनुरागिनी है, अतः नारीदर्प से अभी चाहे कुछ कहे, पथ के मुक्त होने पर मन की गति को न रोक सकेगी। बादशाह की मनस्कामना अवश्य सिद्ध करेगी।

इस सिद्धान्त से मोती का आशाभरोसा सब निर्मूल हुआ। किन्तु इस से क्या मोती नितान्त दुःखिता हुई? नहीं, वरन थोड़ा सुखानु-भव भी किया। कैसे ऐसा असंभव सन्तोष उदय हुआ, उसे पहिले मोती नहीं समझ सकी। उस ने आगरे की ओर यात्रा की। मार्ग में कई दिन बीते, उन्हीं दिनों में अपने चित्त का भाव जान लिया।

---

# चतुर्थ परिच्छेद ।

## राजा निकेतन ।

" अब जाया के भाव सों, तुम मत जानो मोहि । "

मीराङ्गना काव्य ।

मोती आगरे में पहुंची । अब उसे मोती कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती । कई दिनों में उस की सब चित्तवृत्ति एकदम से परिवर्त्तित हो गई थी ।

जहांगीर के संग उस की भेंट हुई । जहांगीर ने उस का पूर्ववत् समादर करके सहोदर का सम्वाद और मार्ग की कुशल पूछी । लुत्फउन्निसा ने मेहरउन्निसा से जो कहा था वह सत्य हुआ । अन्यान्य प्रसंग के पीछे बर्दवान की बात सुन के जहांगीर ने जिज्ञासा की " कहती हो कि मेहरउन्निसा के पास दो दिन रही थीं ? उन्हों ने मेरी क्या बात कही ? " लुत्फउन्निसा ने अकपट हृदय से मेहरउन्निसा के अनुराग का परिचय दिया । बादशाह सुन के नीरव रहे; उन के विस्फारित लोचन से दो एक बूंद आंसू भी गिरे ।

लुत्फउन्निसा ने कहा, " जहांपनाह ! बंदी ने खुशखबरी दी है, पर इनाम नहीं पाया । "

बादशाह ने हंस के कहा, "बीबी ! तुम्हारी ख्वाहिश बड़ी है ।"

लु० । हुजूर ! मेरा क्या कुसूर है ?

बाद० । दिल्ली के बादशाह को अपना गुलाम बना डाला, अब भी इनाम चाहती हो ?

लुत्फउन्निसा ने हंस के कहा, "औरतों की बहुत से अरमान होते हैं । "

बाद० । अब और कौन सा अरमान पैदा हुआ है ?

लु० । इरशाद हो कि अर्ज़ कुबूल होगी ।

बाद० । बेशक ! अगर कार सल्तनत में हर्ज न हो तो ।

लु० । ( हंस के ) एक औरत के सबब जांपनाह के कार्य हर्ज नहीं हो सकता ।

बाद० । तो सब कुबूल है, फ़रमाइए !

लु० । जी चाहता है कि शादी करूं ।

जहांगीर उपहास्य करके कहने लगे, " यह नई ख़्वाहिश कहीं निसबत ठहरी है ? "

लु० । सब हुआ है । सिर्फ हुक्म चाहिये । बादशाह के बिना कोई निसबत नहीं ठीक होती ।

बाद० । हमारी राय की ज़रूरत क्या है ? किस को इस राक्षस ( सुखसागर ) में डुबाने का इरादा किया है ?

लु० । बंदी ने हुज़ूर की खिदमत की है, इस लिये आपकी नौकर से मिलने की इजाज़त चाहती है ।

बाद० । मगर पुराने गुलाम को क्या हासिल करोगी ?

लु० । दिल्लीश्वरी मेहरउन्निसा का सौंप जाऊंगी ।

बाद० । दिल्लीश्वरी मेहरउन्निसा कौन ?

लु० । जो होगी ।

जहांगीर ने मन में सोचा कि मेहरउन्निसा बेगम होगी, लुत्फ़उन्निसा ने ठीक जान लिया है । इसी सबब ऐवान ( राजमंदिर ) से दूर होना चाहती है । इस प्रकार समझ के मौन हो रहे

लुत्फउन्निसा ने कहा,

"इस निकाह में क्या हुजूर की मरजी नहीं है?"

बाद०। हमारी मरजी के खिलाफ भी नहीं है। मगर शौहर के साथ फिर से निकाह की जुरूरत क्या है?

लु०। कमबख्ती से पहिले ब्याह में उन्हों ने कुबूल नहीं किया था, अब जहांपनाह की बाँदी को न छोड़ सकेंगे।

बादशाह रहस्य से हास्यकरके फिर गंभीर हो गये। कहा, "जाने मन! तुम्हारे लिए सब कुछ हाजिर है, अगर तुम्हारी ऐसी ही मरजी है तो वही करो। पर हमें क्यों छोड़ जाओगी? एक आसमान में क्या चांद सूरज दोनों नहीं रहते? एक पौधे में क्या दो फल नहीं फूलते?"

लुत्फउन्निसा ने विस्फारित नयनों से बादशाह की ओर दृष्टि करके कहा, "छोटे २ फूल फूला करते हैं, पर एक नाल में दो कमल नहीं फूलते। आप के तख्त के तले क्यों कांटा हो के रहूं?"

लुत्फउन्निसा अपने गृह में प्रस्थान कर गई। उस को ऐसी मनोवान्छा क्यों हुई; यह उस ने जहांगीर के निकट नहीं व्यक्त किया। अनुभव से जैसा समझा जाता है। जहांगीर तदनुरूप समझ के रह गये। किन्तु गूढ़ तत्व कुछ भी न जान सके।

लुत्फउन्निसा का हृदय पाषाण था। सलीम की रमणी हृदयजनित राजकान्ति ने भी कभी उस का मन मोहित न किया था। किन्तु इस बार पाषाण में कीट ने प्रवेश किया।

---

# पंचम परिच्छेद ।

## आत्ममन्दिर ।

* जनम अवधि हम रूप निहार्यो, नैन तृपित नहि भये न देख ।
मधुर बोल श्रवनहिं सुनि तौ हू, स्रुति पथ परस कियो न विसेख ॥
बहु मधु यामिनि रभसि गवाँई, बूझ्यो नाहि कैसो रसकेलि ।
लाख लाख युग हिये हिये राखि, तबौ न सीतल हिय की बेलि ॥
केते रसिक कियो रस अनुगम, अनुभव काहु माहिं न नेक ।
विद्यापति भाखैं लाखन में, प्रान जुड़ावन मिल्यौ न एक ॥
विद्यापति ।

लुत्फउन्निसा ने गृह में आके प्रफुल्लवदनपूर्वक पेषमन को बुलाकर वस्त्राभरण परित्याग किये। सुवर्ण मुक्ता आदि से खचित वसन को परित्याग करके पेषमन से कहा, 'यह पोशाक तुम लो।"

सुन के पेषमन कुछ विस्मयापन्न हुई। पोशाक अभी बहुत धन लगा कर बनी थी। उस ने कहा, 'पोशाक मुझे क्यों? आज का क्या समाचार है?'

---

* मूलभजन विद्यापति का यह प्रकार है :—

" जनम अवधि हम रूप नेहारनु नयन ना तिरपित भेल ।
सोइ मधुर बोल श्रवणहि शूनलु श्रुति पथे परश ना गेल ॥
कत मधुयामिनी रभसे गोंयायनु बुझिनु कैसन ना केल ।
लाख लाख युग हिये हिये राखनु तबु हिया जुड़ान ना गेल ॥
जत जत रसिक जन रसे अनुगमन अनुभव काहु ना देख ।
विद्यापति कहे प्राण जुड़ाइते लाखे ना मिलल एक ॥"
( अनुवादक )

लुत्फउन्निसा ने कहा, 'खुशखबरी है।'

पे०। यह तो समझ सकती हूं। क्या मेहरउन्निसा का खौफ मिट गया?

लु०। हां, अब उस के बाबत कोई फिक्र नहीं है।

पेश्मन ने अत्यंत आह्लाद प्रकाश करके कहा, 'तो अब मैं बेगम की उल्लास हुई।'

लु०। अगर ऐसी ख्वाहिश है तो मैं मेहरउन्निसा से कह दूंगी।

पे०। यह क्या? आप तो कहती थीं कि मेहरउन्निसा के बेगम होने की कोई उम्मेद नहीं है।

लु०। मैं ने यह बात नहीं कही। मैं ने तो कहा है कि उस बाब में मुझे कुछ पर्वा नहीं है।

पे०। पर्वा क्यों नहीं है? आप आगरे की मालिका न हुईं तो सभी ख्वाहिशें बर्बाद जायंगी।

लु०। आगरे से तो कुछ तअल्लुक ही न रखूंगी।

पे०। यह क्या? मैं तो समझ ही नहीं सकती, आज की खुश-खबरी समझा कर कहिये।

लु०। वह यही है कि मैं हमेशा के लिये आगरे से चलती हूं।

पे०। कहां जायंगी?

लु०। बंगाले में जाकर रहूंगी। अगर हो सका तो किसी शरीफ की बीबी होऊंगी।

पे०। यह तो नई बात है, सुनने से रोंगटे खड़े होते हैं।

लु०। मैं हंसी नहीं करती। सचमुच आगरा छोड़ चली। बादशाह से बिदा हो आई हूं।

पे०। यह इरादा क्यों?

सु० । बहुत दिन तक आगरे में रही, पर फायदा क्या हुआ ? ख्वाहिशें लड़कपन से बड़ी ही भारी थीं । उन्हीं के वायस बंगाले से यहां तक आई थी । इस जवाहिर के मोल लेने के लिये किसकी दौलत नहीं खोई ? कौन सा गुनाह नहीं किया ? और जिस अरमान के लिये यह सब किया, उन में कौन सा हासिल न हुआ । इज्ज़त, दौलत, सभी हासिल हुई, कभी दिल आसूदा नहीं हुआ । ख्वाहिश बढ़ती ही गई । कोशिश करने से और भी दौलत हासिल कर सकती हूं, पर किस लिये ? इन सभों में अगर सुख होता, तो इतने दिनों में एक दिन के लिये भी न सुखी होती ? यही आराम की ख्वाहिश पहाड़ी नदी की तरह—पहिले साफ और हलकी सी धार हो के मैदान में बहती है, और फिर आप ही छिप जाती है, कोई नहीं देखता, आप ही आप शोर करती है, पर कोई नहीं सुनता । फिर धीरे जितनी बहती है, जितनी ही बढ़ती जाती है, उतनी ही गदली होती है । फिर कभी हवा उठती है, लहरें उठती हैं, मगर, घड़ियाल वगैरह दिखाई देते हैं, और भी बढ़ती है, तो जियादा गदली हो जाती है, पानी खारा होता है । रेता पड़ जाता है । बहाव कम हो जाता है । फिर जब वही नदी समुन्दर में मिल जाती है, तब कौन देखता है ?

पे० । मैं तो इस में कुछ भी नहीं समझ सकी । इन बातों से तुम्हें क्यों नहीं सुख होता ?

सु० । क्यों नहीं होता—यह इतने दिनों में समझा है । तीन बरस बादशाह के महल में रह के जो सुख नहीं हुआ, उड़ीसा के रास्ते में एक रात में वही सुख हासिल हो गया । इसी से मैं ने समझा ।

पे० । क्या समझा ?

लु० । मैं इतने दिनों तक हिन्दुओं की सूरत की तरह थी। बाहर सोने चांदी से आरास्ता; और भीतर पत्थर। आराम की ख्वाहिश से आग में घूमती थी, पर उसे छुवा नहीं था। अब की बार देखता हूं, अगर पत्थर में ढूंढ़ने से कोई जवाहिर मिल जाय।

पे० । यह तो मैं कुछ नहीं समझ सकी।

लु० । मैं ने इस आगरे में किसी को कभी चाहा था ?

पे० । किसी को भी नहीं।

लु० । तो पत्थर नहीं तो क्या हूं ?

पे० । तो अब अगर इरादा है, तो क्यों नहीं चाहती ?

लु० । चाहती हूं। इसी लिये तो आगरा छोड़ के जाती हूं।

पे० । इस की क्या काम है ? आगरे में क्या आदमी नहीं है जो सुबाहों के देश में जाओगी ? जो तुम्हें चाहते हैं, उन्हीं को क्यों नहीं चाहतीं ? रूप में कहो, धन में कहो, जिस में कहो, दिल्ली के बादशाह से बड़ा दुनिया में कौन है ?

लु० । आसमान में चांद सूरज के रहते हुए पानी नीचे को तरफ क्यों बहता है ?

पे० । आप ही बतलाइए, मैं तो नहीं कह सकती।

लु० । किसमत का लिखा !

लुत्फउन्निसा ने सब बातें खोल के नहीं कहीं। पाषाण में अग्नि ने प्रवेश किया था। इस में पाषाण द्रवीभूत होता ( गलता ) था।

## षष्ठ परिच्छेद ।

परपतल ।

काया तन अरु प्रान सबै सौंपी कर तोर ।
राज भोग चलि भोग करी ताला घर मोर ॥

वीराङ्गना काव्य ।

खेत में बीज बोने से आप ही अंकुर होता है। जब अंकुर होता है, तब कोई नहीं जानता। कोई नहीं देख सकता। किन्तु एक बार बीज रोपित होने पर फिर वहां रोपण करने वाला रहै, चाहे न रहै, क्रमशः अंकुर से वृक्ष का मस्तक उन्नत होता है। आज वृक्ष अंगुलिपरिमेय मात्र है, कोई देख कर भी नहीं देखता। क्रम से तिल २ वृद्धि हुई। क्रम से तक आधे हाथ, एक हाथ, दो हाथ के परिमाण का हुआ; तथापि उस से किसी की स्वार्थसिद्धि की संभावना नहीं, इसे कोई देखता भी नहीं है, देख कर भी नहीं देखता। दिन जाता है, मास जाता है, वर्ष जाता है, तब क्रम से उस के ऊपर दृष्टि पड़ती है, अब अधिक अमनोयोग की बात नहीं है। क्रम से वृक्ष बड़ा होता है, और अपनी छाया से दूसरे वृक्षों को नष्ट करता है,—चाहिये क्या, क्षेत्र दूसरे पौधों से शून्य हो जाता है।

लुत्फुन्निसा का प्रेम भी इसी प्रकार बढ़ा था। पहिले एक दिन अकस्मात् प्रणय भाजन के संग साक्षात् हुआ, तब प्रणय संचार को विशेष रूप से नहीं जाना था। किन्तु अंकुर हो गया। इस के अनंतर फिर भेंट नहीं हुई, परन्तु असाक्षात् में बारम्बार वही मुखमंडल स्मरण होने लगा, स्मृतिपट पर उस मुखमण्डल को

चिन्तित करना कुछ २ सुखकारक जान पड़ने लगा। बीज में अंकुर जनमा। मूर्त्ति की ओर अनुराग हुआ। चित्त का धर्म यही है कि जो मानसिक कर्म जितना अधिक किया जाय उस में उतना ही अधिक प्रवृत्ति होती है; और क्रम से वह कर्म स्वभावसिद्ध हो जाता है। लुत्फ़उन्निसा उसी मूर्त्ति का दिन रात ध्यान करने लगी। अतिशय दर्शनाभिलाषा हुई; संग संग उस की सहज स्पृहा का प्रवाह भी दुर्निवार्य हो गया। दिल्ली के सिंहासन की लालसा भी उस के आगे तुच्छ जान पड़ी। सिंहासन मन्मथशरसंभूत अग्निराशि से वेष्टित जान पड़ने लगा। राज्य, राजधानी, औ राजसिंहासन, सभी का विसर्जन कर के प्रियतम के दर्शन के लिये दौड़ी। वह प्रियजन नवकुमार हैं।

इसी लिये लुत्फ़उन्निसा मेहरउन्निसा की आशानाशिनी बातें सुन के भी दुखी नहीं हुई थी। इसी लिये आगरे आ कर भी सम्पत्ति की रक्षा का कोई उपाय नहीं किया; इसी लिये आजन्म के लिये बादशाह से बिदा हुई।

लुत्फ़उन्निसा सप्तग्राम में आई। राजपथ के निकट ही नदी-तट पर एक अट्टालिका में अपना वासस्थान किया। राजमार्ग के पथिकों ने देखा कि अकस्मात् यह अट्टालिका स्वर्ण आदि से खचित वस्त्राभरण भूषित दास दासियों से परिपूर्ण हो गई है। हर खण्ड में कमरों की सजावट अति मनोहर है। गन्धद्रव्य अतर) गंधवारि ( गुलाब केवड़ा आदि ) कुसुममाला सर्वत्र मह २ महक रही है। स्वर्ण, रौप्य, गजदंत आदि से खचित नाना द्रव्य गृह-शोभा के लिये सब स्थानों में प्रकाश कर रहे हैं ऐसे सुसज्जित एक

कमरे में लुत्फउन्निसा अधोमुख बैठी है; दूसरे आसन पर नवकुमार बैठे हैं। सप्तग्राम में नवकुमार के संग लुत्फउन्निसा का और भी दो एक बार साक्षात हुआ था; उस से लुत्फउन्निसा का मनोरथ कहां तक सिद्ध हुआ, वह आज की बातों से प्रकाश होगा।

नवकुमार थोड़ी देर नीरव रह के कहने लगे, "तो हम अब जाते हैं। फिर हमें मत बुलवाना।"

लुत्फउन्निसा ने कहा, अभी मत जाओ, ज़रा ठहरो। मेरा वक्तव्य समाप्त नहीं हुआ है।

नवकुमार ने और भी क्षण भर प्रतीक्षा की। किन्तु लुत्फउन्निसा कुछ बोली नहीं। एक क्षण पीछे नवकुमार ने पूछा "और क्या कहोगी?" लुत्फउन्निसा ने कोई उत्तर न दिया, चुपचाप रोने लगी।

यह देख के नवकुमार उठ खड़े हुये। लुत्फउन्निसा ने उन के वस्त्र का अग्रभाग थाम लिया। नवकुमार ने कुछ रुष्ट होके कहा, "क्या, कहो न!"

लुत्फउन्निसा ने कहा, "तुम क्या चाहते हो? पृथ्वी में क्या कुछ तुम्हें प्रार्थनीय नहीं है? धन, संपत, मान, प्रणय, रंग, रहस्य, पृथ्वी में जिसे २ सुख कहते हैं, वह सभी दूंगी; और उस का प्रतिदान कुछ भी नहीं चाहती; केवल तुम्हारी दासी होना चाहती हूं। तुम्हारी पत्नी होऊंगी, यह गौरव भी नहीं चाहती, केवल दासी।"

नवकुमार ने कहा, "हम दरिद्र ब्राह्मण हैं, इस जन्म में दरिद्र ब्राह्मण ही रहेंगे। तुम्हारा दिया धन संपत् ले के यवनी के जार नहीं बन सकते।"

यवनी के जार ! नवकुमार अभी तक नहीं जान सके थे, कि यही रमणी हमारी पत्नी है। लुत्फउन्निसा अधोवदन हो रही। नवकुमार ने उस के हाथ से वस्त्र का पल्ला छुड़ा लिया। लुत्फउन्निसा ने पुनः उन का वस्त्राग्रभाग पकड़ के कहा, "अच्छा, जाने दो, विधाता की यदि यही इच्छा है तो सकल चित्तवृत्तियों को अतल जल में डुबाऊंगी। मैं और कुछ नहीं चाहती, एक बार तुम इसी मार्ग से हो जाया करो ; दासी जान के कभी कभी दर्शन दिया करो। केवल नेत्रों को परितृप्त करूंगी।"

नव०। तुम यवनी हो—पर स्त्री हो—तुम्हारे संग इस प्रकार आलाप करने में भी दोष है। इस से फिर हमारी भेंट न होगी।

क्षणभर नीरव लुत्फउन्निसा के हृदय में आंधी बहती थी। वह पाषाणमूर्ति की भांति हो रही। नवकुमार के वस्त्र का अग्रभाग त्याग किया, और कहा, 'जाओ'।

नवकुमार जाने लगे। दो चार पग गये होंगे कि लुत्फउन्निसा हवा से उखड़ी लता की भांति उन के चरणतल में गिर पड़ी। बाहुलता द्वारा चरण युगल बांध के कातर स्वर से बोली,

'निर्दयी ! मैं तुम्हारे लिये आगरे का सिंहासन त्याग कर आई हूं, तुम मुझे न त्याग करो।'

नवकुमार ने कहा, 'तुम पुनः आगरे लौट जाओ। हमारी आशा छोड़ो।'

"इस जन्म में नहीं" कह के लुत्फउन्निसा ने तीर की तरह खड़ी हो कर गर्व पूर्वक कहा, 'इस जन्म में तुम्हारी आशा न छोड़ूंगी।' मस्तक उन्नत कर, ईषत् बंकिमग्रीवा कर के, भी

नवकुमार के मुख की ओर विशाल निर्निमेष लोचन कर के, राज राजमोहिनी खड़ा हुई। जो दृढ़ गर्व हृदयाग्नि में जल गया था, फिर उस की ज्योति चमकी ; जो दुर्जय मानसिक शक्ति भारतवर्ष की राज्यशासन-कल्पना में नहीं डरी, वही शक्ति फिर प्रणय-दुर्बल देह में संचालित हुई। ललाट की सब नसें स्फीत हो कर रमणीय रेखा बन गईं। ज्योतिर्मय नेत्र रविकर से चमचमाते सिंधु के जल सा झलझलाने लगे। नासिकारंध्र कांपने लगा। स्रोत विहारिणी राजहंसी जैसे गति विरोधकारी के प्रति ग्रीवाभंगी कर के खड़ी होती है, दलितफणा फणिनी (नागिनी) जैसे फण उठा कर खड़ी होती है, इसी भांति उन्मादिनी यवनी भी मस्तक उठा कर खड़ी हुई। कहने लगी, "इस जन्म में नहीं। तुम मेरे ही होगे।"

उस कुपिता नागिनी की ओर देखते २ नवकुमार भीत हुए। लुत्फउन्निसा की अनिर्वचनीय देहमहिमा उन्हों ने जैसी कुछ उस समय देखी, वैसी और कभी नहीं देखी थी। किन्तु वह शोभा वज्र सूचक विद्युत की भांति मनमोहिनी थी, देख के भय हुआ। नव-कुमार चलने लगे, तब सहसा और एक तेजमयी मूर्त्ति उन्हें स्मरण हुई। एक दिन नवकुमार क्रुद्ध हो के अपनी पहिली पत्नी पद्मावती को अपने शयनागार से बहिष्कृत करने के लिये उद्यत हुए थे। द्वादशवर्षीया बालिका उस समय दर्प सहित घूम कर उन के सामने खड़ी हुई थी; इसी प्रकार उस के भी नेत्र प्रदीप्त हो गये थे, इसी प्रकार ललाट में रेखा का विकाश हुआ था; इसी प्रकार नासिकारंध्र कांपा था; इसी प्रकार मस्तक हिला था, बहुत दिनों तक वह मूर्त्ति स्मरण नहीं हुई थी, अब स्मरण हुई। तत्क्षण वह

सादृश्य का अनुभव हुआ। संशयाधीन हो कर नवकुमार ने संकुचित स्वर से धीरे २ कहा, "तुम कौन हो?"

यवनी की नयनतारा और भी विस्फारित हुई। उस ने कहा, "मैं पद्मावती हूं।"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर के लुत्फउन्निसा स्थानान्तर में चली गई। नवकुमार भी अनमना और कुछ संशयान्वित हो के अपने घर चले गये।

# सप्तम परिच्छेद ।

## उपनगरप्रान्त ।

"———— I am settled, and bend up
Each corporal agent to this terrible feat."

अंग अंग सों त्यार हौं, या अनरथ के हेत ।

*Macbeth.*

दूसरे खण्ड में जा के लुत्फउन्निसा ने द्वार बन्द कर लिया । दो दिन तक उस कमरे से बाहर नहीं हुई । इन्हीं दो दिनों में उस ने अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को स्थिर किया । स्थिर कर के दृढ़ प्रतिज्ञ हुई, सूर्य अस्त हो गये थे । उस समय लुत्फउन्निसा पेशमन की सहायता से शृंगार करती थी । आश्चर्य वेषभूषण ! रमणीवेश का किञ्चिन्मात्र चिन्ह न था । जो वेश बनाया उसे दर्पण में देख के पेशमन से कहा, "क्यों पेशमन ! अब मैं पहिचानी जा सकती हूं ?

पेशमन ने कहा, "किस की मजाल है ?"

लु० । तो मैं जाती हूं । मेरे संग कोई दास दासी न जावें ।

पेशमन ने कुछ संकुचित चित्त से कहा, "खता मुआफ हो, तो एक बात पूछूं ?"

लुत्फउन्निसा ने कहा, "क्या ?"

पेशमन ने कहा, "आप का इरादा क्या है ?"

लुत्फउन्निसा ने कहा, "कपालकुण्डला को उस के शौहर से जुदा कर देना, तभी वह मेरे होंगे ।"

पे० । बीबी ! अच्छी तरह सोच लीजिये, जंगल, रात का वक्त, और आप अकेली हैं ।

लुत्फ़उन्निसा इस बात का कोई उत्तर न दे के घर से बहिर्गत हुई। सप्तग्राम के जिस जनहीन वनमय उपनगर प्रान्त में नवकुमार का गृह था उसी ओर चली। वहां पहुँचने पर रात्रि हो गई, पाठक महाशयों को स्मरण होगा कि उस गृह के निकट ही एक वन है। उसी के प्रान्तभाग में पहुँच के उस ने एक वृक्ष के नीचे उपवेशन किया। कुछ काल तक बैठ के जिस दुःसाहसिक कार्य्य में प्रवृत्त हुई थी, उस विषय की चिंता करने लगी। घटना क्रम से उस का अननुभूतपूर्व्व सहाय उपस्थित हुआ।

लुत्फउन्निसा जहां बैठी थी, वहां से एक अनवरत समानोच्चारित मनुष्यकंठ का शब्द सुनाई दिया। उठ के खड़ी हो कर चारों ओर निरीक्षण कर के देखा कि वन में एक जगह उजाला दिखाई देता है। लुत्फउन्निसा साहस में पुरुषों से अधिक थी; जहां अग्नि जलती थी, वहीं चली गई। पहिले वृक्षों के अन्तराल से देखने लगी कि बात क्या है? देखा कि जो अग्नि प्रज्वलित हो रही है, वह होमाग्नि है, जो शब्द उस ने सुना था, वह मंत्रपाठ का शब्द था। मन्त्र में एक शब्द को समझी, वह एक नाम था। नाम सुनते ही लुत्फउन्निसा होमकारी के निकट जा के बैठ गई।

इस समय वह वहीं बैठी रहै; पाठक महाशयों ने बहुत दिनों से कपालकुण्डला का कोई संवाद नहीं पाया है, इस लिये अब उस के समाचार की आवश्यकता है।

॥ तृतीय खण्ड समाप्त हुआ ॥

# चतुर्थ खण्ड।

## प्रथम परिच्छेद।

### शयनागार।

"राधा की बन्धन तुम काटो, यह विनती है मेरी।"

व्रजाङ्गनाकाव्य।

लुत्फ उन्निसा को आगरे जाने, और वहां से आने में प्रायः वर्ष दिन बीता। कपाल कुण्डला एक वर्ष से अधिकादिनों से नवकुमार की गृहिणी है। जिस दिन प्रदोपकाल में लुत्फउन्निसा जंगल में थी उसी दिन कपालकुण्डला अनन्यमन से अपने शयनगृह में बैठी थी। पाठक महाशय ने समुद्रतट पर आलुलायितकेशी भूषणहीना कपालकुण्डला को देखा था. यह कपालकुंडला अब वैसी नहीं है। श्यामासुन्दरी की भविष्यवाणी सच्ची हुई; स्पर्शमणि ( पारसपत्थर ) के स्पर्श से योगिनी गृहिणी हुई, अब उन्हीं असंख्य कृष्णोज्ज्वलभुजंगों का व्यक्त तुल्य रूप हो गया है, घुटी तक लटकती केशराशि अब पीछे की ओर स्थूल-वेणी संबद्ध हुई है। वेणीरचना में भी शिल्प की परिपाटी लक्षित होती है, केशविन्यास में अनेक सूक्ष्म २ कार्य श्यामासुन्दरी के विन्यासकौशल का परिचय देते हैं। कुसुममाला भी नहीं छूटी थीं, चारो ओर से किरीट मंडल की भांति वेणी को घेर रही थीं। केश के जो २ भाग वेणी में न्यस्त नहीं हुए थे, वे योंही सिर पर बराबर ऊंचे नीचे बिखर रहे थे, ऐसा न समझिये, वे आकुंचनमय

छोटी २ कृष्ण तरंग रेखा की भांति सुशोभित हो रहे थे। इस समय मुखमंडल केशभार से अर्द्धलुक्कायित न था; ज्योतिर्मय हो के शोभा देता था, उस के ऊपर कहीं २ बन्धन सरककर छोटे २ अलकगुच्छ स्वेद से जटित हो रहे थे। वर्ण वैसा ही अर्द्ध पूर्णचंद्र किरण की दीप्ति की भांति था। अब उन्हीं कानों में कर्णफूल झूम रहे थे; कण्ठ में हिरण्मय कंठे पड़े थे, रंग रूप के आगे वह सब फीके न थे, किन्तु अर्द्धचंद्रकौमुदीवसना धारिणी के अंग में रात्रि में फूलने वाले कुसुम की भांति शोभा देते थे। उस ने शुक्लाम्बर को परिधान किया था; वह अर्द्धचंद्रदीप्त आकाश-मण्डल में निविड़ शुभ्रमेघ की भांति शोभा देता था।

वर्ण वैसा ही चंद्रार्द्ध-कौमुदीमय था, किन्तु पूर्व की अपेक्षा अब कुछ मलिन था, मानो आकाश प्रान्त में कहीं से काला मेघ दिखाई दिया हो। कपालकुंडला अकेली नहीं बैठी थी; ननदी श्यामा सुंदरी भी समीप बैठी थी। उन दोनों की परस्पर बातें होती थीं। उस का कुछ अंश पाठक महाशय को सुनाता हूं।

कपालकुंडला ने कहा, "नंदोई औ कै दिन यहां रहेंगे?"

श्यामा ने कहा, "कल तीसरे पहर चले जायेंगे। अहा! आज रात को यदि औषधि तोड़ रखती, तो उन्हें वश करके मनुष्यजन्म सार्थक करती। कल रात को बाहर गई थी, इस लिये तो झाड़ लात खाई। अब आज कैसे बाहर होऊंगी?"

क०। क्या दिन में तोड़ने से नहीं हो सकता?

श्या०। दिन में तोड़ने से फलेगी कैसे? ठीक दो पहर रात को सिर के बाल खोल के तोड़ना पड़ता है। तो, भई! मन की साध मन ही में रही।

क० । अच्छा मैं तो आज दिन में उस वृक्ष को चीन्ह आई हूं, और जिस वन में वह होती है, वह भी देख लिया है। अब आज तुम्हें न जाना पड़ेगा, मैं अकेली तोड़ लाऊंगी।

श्या० । एक दिन जो हुआ सो हुआ रात को तुम अब बाहर मत जाना।

क० । इस के लिये तुम क्यों चिंता करती हो? तुम ने सुना तो है, कि रात को घूमने का मुझे बालकपन से अभ्यास है। मन में बिचार देखो, यदि मुझे यह अभ्यास न होता तो, तुम्हारे संग मेरा कभी मिलाप न होता।

श्या० । यह बात भय के लिये नहीं कहती। किन्तु अकेली रात्रि के समय बन बन घूमना क्या गृहस्थों की बहू बेटी को उचित है। दोनों जनों ने संग जा के तो इतना तिरस्कार पाया, तुम्हारे अकेली जाने पर क्या होगा?

क० । हानि क्या है? तुम ने भी क्या मन में समझ लिया है कि मैं रात को घर से बाहर होने से दुश्चरित्रा हो जाऊंगी?

श्या० । मैं तो यह बात मन में भी नहीं लाती, किन्तु बुरे लोग बुरा कहेंगे।

क० । कहैं, इस से मैं बुरी न हो जाऊंगी।

श्या० । यह तो न होगा—किन्तु तुम्हें कोई कुछ मंद कहेगा तब हम लोगों को अंत:करण में शूल होगा।

क० । ऐसे अन्याय क्लेश को मत होने दो।

श्या० । यह भी मैं कर सकूंगी। किन्तु भाई को क्यों करोगी?

कपालकुण्डला ने श्यामासुंदरी की ओर अपना स्निग्धोज्ज्वल कटाक्ष निक्षेप किया। और कहा, "इस में यदि दुःख होंगे, तो मैं क्या करूं? यदि जानती कि विवाह स्त्रियों का दासीत्व है, तो कदापि विवाह न करती।"

इस के पीछे फिर श्यामासुंदरी ने अपनी तरफ से न कहीं। अपने कार्य में चली गई।

कपालकुंडला आवश्यकीय गृहकार्य में लगी। सब का काम कर के औषधि के अनुसंधान में गृह से बहिर्गत हुई। उस समय पहर भर रात्रि बीती थी। निशा ज्योत्स्नामय थी। नवकुमार बाहर के कमरे में बैठे थे, कपालकुण्डला घर से बाहर हुई, यह उन्हों ने गवाक्ष (खिड़की) से देख लिया। उन्हों ने भी गृह त्यागकर बाहर के हिरण्मयी का हाथ पकड़ा। कपालकुण्डला ने कहा, "क्या है?"

नवकुमार ने कहा, "कहां जाती हो?"

स्वर में तिरस्कार का चिन्ह नहीं था।

कपालकुण्डला ने कहा, "श्यामासुंदरी अपने स्वामी को वश करने के लिये औषधि चाहती है, मैं उसी की खोज में जाती हूं।"

नवकुमार ने पूर्ववत् कोमल स्वर से कहा, "अच्छा कल तो, एक बेर गई थी? आज फिर क्यों?"

क०। कल मिली नहीं। आज फिर खोजूंगी। नवकुमार ने अति सद्भाव से कहा, "अच्छा, दिन में खोजने से भी तो काम चल सकता है"? नवकुमार का स्वर स्नेहपूर्ण था। कपालकुंडला ने कहा, "दिन में औषधि फलती नहीं।"

नव० । औषधि खोजने का तुम्हें काम ही क्या है ? वृक्ष का नाम बता दो. हम औषधि तोड़ के ला देंगे ।

क० । मैं वृक्ष को देखने से चीन्ह सकती हूं । पर नाम नहीं जानती । और तुम्हारे तोड़ने से वह फलीभूत न होगी । स्त्रियों को केश खोल के तोड़ना पड़ता है । तुम दूसरे के उपकार में विघ्न मत करो ।

कपालकुण्डला यह बात अप्रसन्न भाव से बोली । नवकुमार ने फिर आपत्ति नहीं की । कहा, "चलो, हम तुम्हारे संग चलेंगे ।"

कपालकुण्डला ने गर्वित वचन से कहा, "आओ, मैं अविश्वा-सिनी हूं कि नहीं, अपनी आंखों से देख आओ ।"

नवकुमार फिर कुछ न कह सके । निश्वास के संग कपालकु-ण्डला का हाथ छोड़ के घर में फिर आये । कपालकुण्डला एका-किनी वन में प्रविष्ट हुई ।

---

# द्वितीय परिच्छेद।

### कानन तल।

"——Tender is the night,
And happy the Queen, moon is on her throne,
Clustered around by all her starry Fays;
But here there is no Light."

निसिनायक नखतनि सहित, लसति सुधाकर रैन।
तदपि अन्धारो नैकहू, इहाँ कहूँ निरखि परै न॥

*Keats.*

सप्तग्राम का यह भाग बनमय है, इस का पश्चिम भी कुछ अरण्य रूपा है। ग्राम से कुछ दूर पर निबिड़ बन है। एकाकिनी कपालकुण्डला इस संकीर्ण बनपथ में औषधि के अनुसंधान में चली। यामिनी मधुर, और एकान्त शब्द विहीन थी। माधवी यामिनी के आकाश में स्निग्धरश्मिमय चन्द्रमा चुपचाप श्वेत मेघखण्डों के भीतर से बाहर निकले आते हैं, सभी वन्य वृक्षलता उसी प्रकार नीरव शीतल चन्द्र कर में विश्राम करती हैं, चुपचाप सकल वृक्षपत्र उस किरण को प्रतिघात करते हैं, नीरव लता गुल्मों में श्वेत कुसुमदल विकसित हो रहे हैं, पशु पक्षी सभी नीरव हैं। कभी २ किसी भग्न-विश्राम पक्षी के पक्षस्पन्दन का शब्द होता था

और कभी२ कहीं२ शुष्क पत्तों के गिरने का शब्द होता था कहीं

था। कहीं अति दूर पर श्वानों का रव हो रहा था। ऐसा नहीं था कि एक बार ही वायु नहीं बहती थी; मधुमास की देह शीतल करनेवाली मृदु मंद और नितांत निःशब्द वायु भी बहती थी, जिस से केवल वृक्षों के सर्वाग्र शाखा के पत्र हिलते थे, और भूमि तक झुकी हुई श्यामलता डोलती थी। केवल नीलांबर-संचारी छोटे २ श्वेत मेघों के टुकड़े धीरे २ चलते थे। केवल उस प्रकार की वायु के संसर्ग ही से अनुभव किये हुए पूर्व सुख की अस्पष्ट स्मृति हृदय में थोड़ी २ जाग्रत होती थी।

कपालकुंडला को उसी प्रकार की पूर्व स्मृति जाग्रत होती थी; बालू के टीले के शिखर पर सागरवारि-संस्पृष्ट मलयानिल उस के लम्बे अलक-मण्डल में क्रीड़ा करती थी, वह स्मरण हुआ। वह निर्मल नील अनन्त गगन रूपी समुद्र स्मरण हुआ। कपालकुण्डला पूर्वस्मृति की समालोचना से अनमनी होके चलने लगी।

अनमनी जाते जाते कहां किस उद्देश्य से जाती थी, वह नहीं सोचा। जिस मार्ग से जाती थी, वह क्रम से अगम्य हो गया; वन निबिड़तर हुआ; सिर के ऊपर वृक्ष शाखा के विन्यास से प्रायः चन्द्रालोक एक बार ही रुक गया; क्रमशः पथ भी अंधकारमय होने लगा। पथ की अलक्ष्यता से प्रथम तो कपालकुण्डला चिन्ता की मग्नता से उत्थित हुई। फिर इधर उधर दृष्टिपात करके देखा कि, वन में अग्नि जलती है। लुत्फउन्निसा ने भी पहिले इसी प्रकाश को देखा था। कपालकुण्डला पूर्वाभ्यास के कारण इन सब समयों में भयहीन थी; परन्तु कौतूहल-मयी हुई। धीरे२ उसी दीप-ज्योति के सामने गई। देखा कि जहां प्रालोक हो रहा है, वहां कोई

नहीं है। किन्तु उस से थोड़ी दूर पर वन की निविड़ता से दूर पर अदृश्य एक भग्नगृह है। गृह ईंट से बना हुआ है, किन्तु बहुत छोटा, अति सामान्य; उस में केवल एक घर था। उसी घर में से मनुष्य के बातचीत करने का शब्द आता था। कपालकुण्डला धीरे धीरे चल कर घर के समीप गई। निकटवर्ती होने से जान पड़ा कि दो मनुष्य सावधानतापूर्वक बातें कर रहे हैं। पहिले कुछ भी न समझ सकी; फिर क्रम से चेष्टा कर के कान पात के सुनने से निम्नलिखित बातें सुनाई पड़ीं।

एक व्यक्ति कहता है, "हमारा अनिष्ट भी अन्य है। इस में तुम्हारी सम्मति न हो तो हम तुम्हारी सहायता न करेंगे; तुम भी हमारी सहायता न करना।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा, "मैं भी मंगल का इच्छुक नहीं हूँ" किन्तु आजन्म के लिये उस का निर्वासन हो, इस में मैं सम्मत हूँ, किन्तु हत्या का कोई उद्योग इस से न होगा; वरन् उस के प्रतिकूल आचरण करूँगा"।

पहिले ने कहा, "तुम निरे अबोध, अज्ञान हो! तुम्हें कुछ ज्ञानदान करते हैं। मन लगा के श्रवण करो। अति गूढ़ प्रभाव कहेंगे। एक बेर चारों ओर देख आओ, मनुष्य का सा निश्वास सुनाई देता है।"

वस्तुतः कपालकुण्डला उक्त रीति से बातचीत सुनने के लिये गृह प्राचीर के अति समीप आ कर खड़ी हो रही थी।

उस के आश्चर्यातिशय और आशंका के कारण शीघ्र २ दीर्घ निश्वास भी चलता था

संगी की बात मे घर में से एक व्यक्ति बाहर आया, और आते ही कपालकुण्डला को देख लिया। कपालकुण्डला ने भी परिष्कार चन्द्रप्रकाश में आगंतुक व्यक्ति का अवयव स्पष्ट देखा। देख के भीत हो, कि प्रसन्न हो, सो कुछ निर्णय न कर सकी। देखा, आगंतुक ब्राह्मण सा है, सामान्य धोती पहिने है, गात्र उत्तरीय ( उपरना ) से अच्छी तरह आच्छादित है। ब्राह्मणकुमार अति सुकुमारवयस्क है। मुखमण्डल में अवस्था का कुछ भी चिन्ह लक्षित नहीं होता। मुख अति सुन्दर है, सुन्दरी रमणी की भांति सुन्दर है; किन्तु रमणी दुर्लभ तेज युक्त विशिष्ट होता है। उस के सब केश समूह पुरुषों की भांति क्षौर कर्म से गये न थे, स्त्रियों की भांति अच्छिन्न अवस्था में उत्तरीय को प्रच्छन्न करके पीठ पर, कांधों पर, बाहु पर, कदाचित् वक्षस्थल पर भी पाकर शोभित थे। दोनों नेत्र विद्युत तेज से परिपूर्ण थे। एक अभुक्त हस्त पाश हाथ में थी। अतः इस रूपराशि में एक भीषण भाव व्यक्त होता था। हेमकान्त वर्ण के ऊपर मानो किसी कराल कामना की छाया पड़ी थी। अतस्तल पर्यंत अन्वेषणक्षम कटाक्ष को देख के कपालकुण्डला को भय का संचार हुआ।

दोनों दोनों की ओर क्षणभर देखते रहे। पहिले कपालकुण्डला ने नयन पल्लव निक्षिप्त किया। आगंतुक ने उस से पूछा, "तुम कौन हो?"

यदि एक वर्ष पूर्व हिजली के बालुकावन में कपालकुण्डला से यह प्रश्न होता तो वह ठीक २ उत्तर देती। किन्तु अब वह गृहस्थरमणी के स्वभाव से कुछ २ संयत हो गई थी इस से सहसा

उत्तर न दे सकीं। ब्राह्मणवेशी ने निरुत्तर देख के गंभीरता के साथ कहा, "कपालकुण्डला! तुम रात को इस निविड़ वन में क्या करने आई हो?"

अज्ञात रजनीचर पुरुष के मुख से अपना नाम सुन के कपाल-कुंडला अवाक् होगई। कुछ भीत भी हुई। इस लिये सहसा कोई उत्तर उस के मुख से न निकला। ब्राह्मणवेशी ने पुनर्वार प्रश्न किया, "तुम ने हमलोगों की बात चीत सुनी है?"

सहसा कपालकुंडला ने फिर वचनशक्ति को पाया। उत्तर न देके कहा, "मैं भी वही पूछती हूं, इस वन में तुम दोनों जने इस आधीरात को क्या कुपरामर्श करते थे?"

ब्राह्मण वेशी थोड़ीदेर तक निरुत्तर और चिन्तामग्न रहा। मानो किसी नूतन इष्टसिद्धि का उपाय उस के चित्त में उपस्थित हुआ। उस ने कपालकुंडला का हाथ पकड़ लिया, और भग्नगृह से कुछ दूर चला। कपालकुंडला ने बड़े क्रोध से हाथ छुड़ा लिया। तब ब्राह्मणवेशी ने अति मृदु स्वर से कान में कहा, "चिन्ता क्या है मैं पुरुष नहीं हूं।"

कपालकुंडला और भी चमत्कृत हुई। इस बात से उसे कुछ२ विश्वास हुआ, संपूर्ण विश्वास नहीं। वह ब्राह्मण वेशधारिणी के संग २ गई। भग्नगृह से अदृश्यस्थान में जा के ब्राह्मण वेशिनी ने कपालकुंडला के कानों में कहा, "हमलोग जो कुपरामर्श करती थीं, सो सुनोगी? वह तुम्हारे ही संबंध में है।"

कपालकुंडला का आग्रह और भी बढ़ गया। कहा, "सुनूंगी"

छद्मवेशिनी ने कहा, "तो जब तक मैं लौट के न आऊं, तब तक इसी स्थान में बैठो।"

यह कह कर ब्राह्मणवेशिनी भग्नगृह में चली गई। कपाल-कुंडला थोड़ी देर वहीं बैठी रही। किन्तु जो देखा और सुना था, उस से उसे कुछ २ भय हुआ। अब अंधेरे वन में बैठे रहने से उद्वेग बढ़ने लगा। विशेषतः वह ब्रह्मवेशी उसे किस लिये यहां बैठा गया है, यह कौन कह सकता है? हो न हो अपने मंद अभिप्राय को सिद्ध करने के लिये ही बैठा रक्खा है। इधर ब्राह्मण वेशिनी के लौटने में बहुत विलंब होने लगा। कपालकुण्डला फिर अधिक नहीं बैठ सकी। उठ कर बड़े वेग से घर की ओर चली।

उस समय आकाशमण्डल घनघटा से अन्धकारमय होता जाता था; वन में जो उजेला था, वह भी गायब होने लगा। कपालकुण्डला फिर क्षण भर विलंब न कर सकी। शीघ्रता पूर्वक कानन के अभ्यन्तर से बाहर होने लगी। आने के समय मानो पीछे की ओर अपर व्यक्ति के चलने की ध्वनि सुनाई दी। किन्तु मुख फेरने से अन्धकार में कुछ भी नहीं दिखाई दिया। कपालकुण्डला ने मन में सोचा, "ब्राह्मणवेशिनी मेरे पीछे आती है" वन को परित्याग कर के पूर्ववर्णित क्षुद्र वनभाग में आकर पहुंच गई। वहां उतना अंधेरा न था; दृष्टिपथ में मनुष्य रहने से दिखाई देता। किन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया। इसलिये वेग से चली। किन्तु पुनः स्पष्ट मनुष्य के चलने का शब्द सुनाई दिया। आकाश नीली मेघघटा से भीषणाकार हो गया, कपालकुण्डला और भी जल्दी चलने लगी। गृह निकट ही था, पर जब तक पहुंचे २ प्रचंड पवन के साथ वृष्टि का भीषण शब्द होने लगा। कपालकुण्डला दौड़ी। पीछे २ जो

आता था, वह भी मानो दौड़ा, ऐसा शब्द जान पड़ा। घर देख पड़ने के पहिले ही, आंधी और पानी कपालकुण्डला के माथे पर पहुंच गया। बार बार मेघ के गर्जन और वज्रपात के गंभीर शब्द होने लगे। शीघ्र २ दामिनी चमकने लगी। मूसलाधार वृष्टि पड़ने लगी। कपालकुण्डला किसी प्रकार अपनी रक्षा कर के घर आई। आंगन के पार हो के कमरे में गई। द्वार उन के लिये खुला था। उसे बंद करने के लिये आंगन की ओर फिरी। जान पड़ा मानो आंगन में एक पुरुष खड़ा है। उसी समय एक बार बिजली चमकी। उसी के प्रकाश से उसे चीन्ह लिया। यह सागरतीर का प्रवासी वही कापालिक है।

---

# तृतीय परिच्छेद ।

स्वप्न ।

"I had a dream, which was not all dream."

" हौं देख्यौ इक सपन रह्यौ यह सौतुक सांचौ "

*Byron.*

कपालकुण्डला ने धीरे २ द्वार बंद किया। धीरे २ सोने के घर में आई। धीरे २ पलंग के ऊपर सो गई। मनुष्य का हृदय अनंत समुद्र है—जब उस के ऊपर बहती हवा टक्कर मारने लगती हैं तब कौन उस की तरंगमाला को गिन सकता है? कपालकुण्डला के हृदय समुद्र में जो तरंगमाला उठ रही थीं, उसे कौन गिने?

उस रात को नवकुमार हृदय-वेदना से अंतःपुर में नहीं आए। शयनागार में अकेली कपालकुण्डला ने शयन किया, किन्तु निद्रा नहीं आई। आंधी पानी से भीगे—जटा जूट से वेष्टित वही मुखमण्डल अन्धकार में भी चारों ओर देखने लगी। कपालकुण्डला सब पूर्व वृत्तान्तों को सोचने लगी। कापालिक के संग जैसा आचरण कर के वह चली आई थी, वह स्मरण होने लगा। कापालिक गहन वन में जो पैशाचिक कर्म करता था वह स्मरण होने लगा; उस की की हुई भैरवी पूजा, नवकुमार का बंधन, सब मन में आने लगा। कपालकुण्डला कांप उठी। आज रात की भी सब घटना मन में आने लगी। श्यामा की औषधिकामना, नवकुमार का निषेध, उन के प्रति कपालकुण्डला का तिरस्कार, इस के अनंतर अरण्य की ज्योत्स्नामयीशोभा, वो काननतल में अन्धकार, उसी अरण्य में जिस

सहचर को पाया था, उस का भीमकान्त गुणमय रूप, यही सब मन में उदय होने लगा।

पूर्व दिशा में ऊषा के मुकुट की ज्योति प्रगट हुई; तब कपाल-कुण्डला को थोड़ी झपकी आई, उसी अप्रगाढ़ निद्रा में स्वप्न देखने लगी। मानो उसी पहले के देखे हुए सागर में नौका पर चढ़ के जाती थी, तरणी सुशोभित थी; उस पर वसंती रंग की पताका उड़ती थी; नाविक लोग फूलों की माला गले में धारण किये नाव खेते थे, राधा श्याम के अनंत प्रणय का गान गाते थे, पश्चिमाकाश से सूर्य स्वर्ण धारा की वृष्टि करते थे, स्वर्ण धारा पा के समुद्र हंसता था, आकाश मंडल में मेघ उसी स्वर्ण वृष्टि में दौड़ दौड़ के स्नान करते थे। अकस्मात् रात्रि हुई, सूर्य कहीं चले गये, सब स्वर्ण मेघ भी कहीं चले गये, गाढ़ी कालीघटा ने आकर आकाश घेर लिया। अब समुद्र की दिशा का निरूपण नहीं होता, नाविकों ने नाव फेरी, किस दिशा में खेवें, इस का स्थिरता नहीं है, उन्हों ने गीत बंद किया, गले की सब माला तोड़ के फेंक दी, वसंती रंग की पताका आप ही खिसक के जल में गिर पड़ी, वायु बहने लगी; ताड़ बराबर तरंग उठने लगी; तरंग में से एक विकटाकार जटाजूटधारी पुरुष आ कर कपालकुण्डला की नौका को बाएं हाथ से उठा कर समुद्र में बहा देने को उद्यत हुआ, इतने में उसी भीमकाय स्त्रीमय ब्राह्मणवेशधारिणी ने आ कर नाव को पकड़ लिया और पूछा "तुम्हें बचावैं कि डुबा दें?" अकस्मात् कपाल-कुण्डला के मुख से निकला "डुबा दो"। ब्राह्मणवेशी ने नौका छोड़ दी। तब नौका भी शब्द-मयी हो गई; कहने लगी, "मैं अब यह

सार नहीं सह सकती, पाताल में प्रवेश करती हूं" यह कह के उसे जल में फेंक के डूब गई।

पसीने से लथपथ हो के कपालकुण्डला ने भौंचक सी उठ कर आंखें खोल देखा कि प्रभात हो गया है—कोठरी की खिडकियां खुली हैं। उन में से बसंत का पवन आ रहा है, धीरे डोलते वृक्षों की शाखाओं पर पक्षिगण कूज रहे हैं। उसी खिड़की के ऊपर कई मनोहर लता सुगंधित फूलों के संग हिल रही थीं। कपालकुण्डला नारीस्वभाववश उन्हें सुरझाने लगी, उन्हें शृंखला से बांधते२ उन में से एक पत्र निकल आया। कपालकुण्डला अधिकारी की छात्री थी, पढ़ना जानती थी, नीचे लिखे अनुसार पढ़ने लगी,

"आज सन्ध्या पीछे कल रातवाले ब्राह्मणकुमार के संग साक्षात् करना। तुम ने जो निज संबंधी और नितांत आवश्यकीय बातें सुननी चाही थीं, वह सुनना।

एक ब्राह्मणवेशी"

रखता है, ऐसा संदेह भी अमूलक नहीं जान पड़ा। यह ब्राह्मणवेशी उसी का सहचर जान पड़ता है।—अतएव उस के संग साक्षात् करने से उस आशंका के विपर्यास्त अमंगल में पतित हो सकती है। उस ने स्वप्न में देखा था कि कपालकुंडला ही के सम्बन्ध में परामर्श होता था। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि, इसी में उस के निवारण की सूचना होगी। ब्राह्मणकुमार एक व्यक्ति के संग निराले में परामर्श करता था, वह व्यक्ति यही कापालिक जान पड़ता है। उस बातचीत में किसी की मृत्यु का संकल्प प्रकाश होता था; अंततः इंगित किया। सो किस का? ब्राह्मणवेशी ने तो स्पष्ट कहा था, कि कपालकुण्डला ही के संबंध का कुपरामर्श होता था। तो उसी की मृत्यु या उसी के किसी अनिष्ट की कल्पना होती होगी। हुई सही! इस के पीछे स्वप्न,—उस स्वप्न का तात्पर्य क्या है? स्वप्न में ब्राह्मणवेशी ने नौकारोहण के समय आकर उस की रक्षा करनी चाही थी, काम में भी वही देखा जाता है। ब्राह्मणवेशी ने सब बातें कहनी चाही थीं, उस ने स्वप्न में कहा था, "सुनो तो" तो काम में क्या वो तदनुसार करेगा? नहीं नहीं—भक्तवत्सला भवानी ने [illegible] उसी स्वप्न में उसी की रक्षा के लिये उपदेश दिया है, ब्राह्मणवेशी आकर उस का उद्धार करना चाहता था, उस की सहायता को त्याग अकूपार निमग्न होगी। अतएव कपालकुण्डला ने उस के संग साक्षात् करना स्थिर किया। विज्ञ लोग इसी प्रकार सिद्धान्त करते कि नहीं, इस में संदेह है। किन्तु विज्ञव्यक्तियों के सिद्धान्त के संग हम लोगों का लगाव नहीं है। कपालकुण्डला बहुत विज्ञ न थी इस लिये विज्ञों की भांति सिद्धान्त नहीं किया

मन ने कुतूहल परवश रमणी की भांति सिद्धान्त किया—भीमकान्त रूपराशि के दर्शन में लोलुप युवती की भांति सिद्धान्त किया, निशा में वनभ्रमणविलासिनी संन्यासी की पालिता की भांति सिद्धान्त किया, भवानी की भक्तिभाव से मोहिता की भांति सिद्धान्त किया; धधकती ज्वाला में गिरनेवाले पतंग की भांति सिद्धान्त किया।

सन्ध्या पीछे गृहकर्म को थोड़ा २ समापन करके कपालकुण्डला ने पहिले की भांति वन की ओर यात्रा की। जाने के समय शयनागार का दीपक जलाती गई थी। वह ज्योंही कोठे से बाहर हुई, त्योंही घर का दीपक बुझ गया।

जाने के समय कपालकुण्डला एक बात भूल गई। ब्राह्मणवेशी ने किस स्थान पर भेंट करने को लिखा है? इस लिये फिर चिट्ठी के पढ़ने की आवश्यकता हुई। घर लौट कर के जिस स्थान पर सवेरे पत्र रक्खा था, वहां खोजा पर न पाया। स्मरण हुआ कि केश बांधने के समय इस चिट्ठी को संग रखने के लिये चोटी में बांध लिया है। अतएव जूड़े में अनुसन्धान किया। अंगुली में पत्रस्पर्श न होने से केशों को खोल डाला, तथापि वह चिट्ठी नहीं मिली। तब घर के और २ स्थानों में खोजा, पर कहीं भी न पा के अंत में पहली भेंट के स्थान ही में भेंट होना सम्भव जान के फिर यात्रा की। अवकाश न रहने के कारण उस विशाल केशजाल को फिर से बांध न सकी, अतएव आज कपालकुण्डला कुमारावस्था की भांति केशसंबन्धनविहीनी होक ( खुले केश ) चली।

# पंचम परिच्छेद ।

## अट्टहारा ।

"Stand you a while apart.
Confine yourself but in a patient list."
दूर रहो किन एक धीर धरि निजगति रोको ।

*Othello.*

जब संध्या से पहिले गृहकर्म में लगी थी, उस समय पत्र चोटी में से खिसक के भूमि में गिर गया था। कपालकुण्डला यह नहीं जान सकी। नवकुमार ने उसे देख लिया। कबरी में से पत्र गिरा, यह देख के नवकुमार विस्मित हुए। जब कपालकुण्डला दूसरे काम के लिये चली गई, तब उसे उठा के बाहर ले जाकर पढ़ा। उस पत्र को पढ़ने से एक ही सिद्धान्त का संभव है। "जो बातें कल सुना चाहती थीं, आज सुनेंगी?" सो क्या? प्रणय की बात? ऐं! ब्राह्मणवेशी मृण्मयी का उपपति है? जो व्यक्ति गतरात्रि का वृत्तान्त नहीं जानता, उस के दूसरे सिद्धान्त का सम्भव नहीं है।

पतिव्रता जब स्वामी का सहगमन करती है, उस समय, अथवा अन्य हेतु से, जब कोई जीवितावस्था में चितारोहण कर के उस में अग्नि लगाती है, तब पहिले धूमराशि आकर चिता को घेर लेती है। दृष्टिलोप करती है; अंधेरा करती है; फिर जब काष्ठराशि का जलना आरम्भ होता है तो नीचे से सर्प की जिह्वा की भांति दो चार शिखा आकर अंग के प्रत्येक स्थान में दंशन करती है, फिर अल्पमयी अग्निज्वाला चारो ओर से सिमट के अंग प्रत्यंग में

ंडला का सब पाप प्रत्यक्ष देखेंगी, इस के पीछे जीवनविसर्जन करेंगी। उस से कुछ न कहेंगी। अपना ही प्राण संहार करेंगी। न करेंगी तो क्या करेंगी?—इस जीवन के दुर्वह भार को वहन करने की शक्ति न रहेगी।

यह स्थिर कर के कपालकुण्डला के बाहर जाने की प्रतीक्षा में खिड़की के द्वार की ओर देखने लगे। जब कपालकुण्डला घर से बाहर निकल के कुछ दूर गई तब नवकुमार भी बाहर हुए। इतने ही में कपालकुण्डला जल के लिये लौटी, यह देख के नवकुमार भी रुक गये। अन्त में वह फिर बाहर निकल के कुछ दूर गई, तब फिर उस का अनुगमन किया चाहते थे, इतने ही में देखा कि द्वार पर एक दीर्घकाय पुरुष खड़ा है।

वह कौन व्यक्ति है, क्यों खड़ा है, इसे जानने की नवकुमार को कुछ भी इच्छा न थी। उस की ओर देख कर भी न देखा। केवल कपालकुण्डला की ओर दृष्टि रखने के लिये व्यस्त हो रहे थे। अतएव रास्ता छोड़ाने के लिये आगन्तुक के हृदय पर हाथ धर के उसे हटाना चाहा, पर हटा न सके। नवकुमार ने कहा, " तुम कौन हो? दूर हो—रास्ता छोड़ दो। "

आगन्तुक ने कहा, " हम कौन हैं, सो तुम क्या नहीं चीन्हते?"

शब्द समुद्रनाद की भांति कानों में गया। नवकुमार ने देखा कि वही पूर्वपरिचित जटाजूटधारी कापालिक है!

नवकुमार चौंक उठे, किन्तु भयभीत नहीं हुए। सहसा उन का मुखप्रफुल्ल हो गया, कहा,

"कपालकुण्डला क्या तुम्हारे सङ्ग साक्षात् करने जाती है?"

कापालिक ने कहा, " नहीं। "

क्षणमात्र आशा के प्रदीप के सदृश निर्वापित हो जाने से नवकुमार का मुख पहिले की भांति भयमय अंधकारविशिष्ट हो गया।

कहा, "तो तुम पथ छोड़ो।"

कापालिक ने कहा, "छोड़ते हैं, पर तुम्हारे संग हमें कुछ बात करनी है, पहिले सुन लो।"

नवकुमार ने कहा, "तुम से हमें प्रयोजन? तुम फिर क्या हमारे प्राणनाश करने के लिये आये हो? प्राण ग्रहण करो, अ इस बार कोई व्याघात न करेगा। तुम अब तक वृथा श्रम करते है। मैं ने देवता की तुष्टि के लिये शरीर क्यों न दिया? अब इस का फल भोग किया, जिस ने हमारी रक्षा की थी, उसी ने न किया। कापालिक! इस बार हमारा अविश्वास न करो। हम अभी आ कर तुम्हें आत्मसमर्पण करेंगे।"

कापालिक ने कहा, "हम तुम्हारे प्राणनाशार्थ नहीं आए, भवानी की ऐसी इच्छा नहीं है, हम जो करने आए हैं वह तुम्हारा अनुमोदित होगा, घर के भीतर चलो, हम जो कहते हैं, सुनो।"

नवकुमार ने कहा, "अभी नहीं, दूसरे समय सुनेंगे। तुम इस काल प्रतीक्षा करो; हमें आवश्यक कार्य है, उस का साधन करने जाते हैं।

कापालिक ने कहा, "वत्स! हम सब जानते हैं; तुम उसी पापिष्ठा का अनुसरण करोगे; वह जहां जायगी, सो हम जानते हैं। हम तुम्हें उस स्थान पर अपने संग ले चलेंगे। जो देखना चाहते हो दिखावेंगे—अभी हमारी बात सुनो। भय मत करो।"

नवकुमार ने कहा, "अब हमें तुम्हारा कोई भय नहीं है आओ।"

यह कह के नवकुमार ने कापालिक को घर के भीतर बैठा आसन दिया। और स्वयं भी करके कहा, "कहो।"

# षष्ठ परिच्छेद ।

## पुनरालाप ।

" तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्य्यम् "

कुमारसम्भव ।

कापालिक ने आसन ग्रहण करके दोनों बाहु नवकुमार को दिखाईं। नवकुमार ने देखा कि दोनों टूट गई हैं।

पाठक महाशयों को स्मरण होगा कि जिस रात्रि को कपाल-कुण्डला के संग नवकुमार ने पलायन किया था, उसी रात्रि को उन दोनों का अन्वेषण करने में कापालिक बालू के टीले पर से गिर पड़ा था। गिरने के समय दोनों हाथों से भूमि पकड़ के शरीर की रक्षा करने की चेष्टा की थी; इस से शरीर की तो रक्षा हुई, किन्तु हाथ टूट गये। कापालिक ने इन सब वृत्तान्तों का विवरण नवकुमार के आगे करके कहा, " बाहुद्वारा सब नित्य-कृत्य के निर्वाह में विशेष विघ्न नहीं होता, किन्तु इस में अब कुछ बल नहीं है। यहां तक कि इस के द्वारा काष्ठाहरण में भी कष्ट होता है। "

पीछे कहने लगा, गिरते ही हम ने जान लिया था कि हमारे दोनों हाथ भग्न हो गये, अन्यान्य अंग अभग्न हैं, सो नहीं, हम गिरने के समय मूर्छित हो गये थे। पहिले गाढ़ अज्ञान अवस्था में थे। फिर क्षण भर में सज्ञान और क्षण भर में अज्ञान हुए। कै दिन तक हम इस अवस्था में रहे सो नहीं कह सकते। ज्ञात होता है कि दो रात और एकदिन होगा। प्रातःकाल के समय हमें पूर्वरूप से चेत हुआ। उस के पूर्व एक स्वप्न देखा था मानो भगवती—"

कहते २ कापालिक का शरीर रोमांचित हो गया। "माता भगवती हमें प्रत्यक्ष हुई हैं, भृकुटी चढ़ाके हमारी ताड़ना करती हैं, कहती हैं, 'रे दुराचारी! तेरे ही चित्त की अशुद्धि के हेतु से मेरी पूजा में यह विघ्न हुआ। तूने आज तक इन्द्रिय लालसा के वश हो कर इस कुमारी के शोणित से मेरी पूजा नहीं की। अतः इस कुमारी से ही तेरे पूर्व कृत्य का फल नष्ट हुआ। मैं तुझ से अब कभी पूजा ग्रहण नहीं करूंगी।' तब मैं रोदन कर के जननी के चरणों में गिर पड़ा, वे प्रसन्न हो कर बोलीं, 'भद्र! इस के एक मास प्रायश्चित्त कर, विधान कर इसी कपालकुण्डला की मुझे बलि दे। जब तक यह न कर सके, तब तक मेरी पूजा मत करना।'

"कुछ दिनों में किसी प्रकार से मन से आत्मसंयम किया, उसे वर्णन करने का प्रयोजन नहीं है। इस के अनन्तर मैं देवी की आज्ञा पालन करने की चेष्टा का आरंभ किया। देखा कि इन बाहुओं में बालकों का सा भी बल नहीं है। और इस के बिना यह सफल होने वाला नहीं है। अतएव एक सहकारी की आवश्यकता है। किन्तु मनुष्य धर्म-कर्म में अल्पबुद्धि होते हैं—विशेषतः कलियुग की प्रबलता से राजा यवन हैं, यावनिक राज्यशासन के भय से कोई ऐसे कार्य में सहचर नहीं होता। बहुत खोज करने पर तुम से पापिनी का निवासस्थान जाना; किन्तु बाहुबल के अभाव से भवानी की आज्ञा पालन नहीं कर सकते। केवल मानससिद्धि के लिये तन्त्र के विधानानुसार क्रिया कलापमात्र कर सकते हैं। कल रात को निकटवाले वन में होम किया था, अपने नेत्रों से देखा कि कपालकुण्डला के एक ब्राह्मण-

कुमार का मिलाप हुआ। आज वह उस से भेंट करने जाती है। देखना चाहो तो हमारे संग आओ, हम दिखावेंगे।

"वत्स! कपालकुण्डला वधयोग्या है। हम भवानी के आज्ञानुसार उस का वध करेंगे, वह तुम्हारे निकट भी विश्वासघातिनी है — तुम्हारे वधयोग्या है; अतएव तुम हमें साहाय्य प्रदान करो। इस अविश्वासिनी को पकड़ के हमारे संग यज्ञस्थान में ले चलो। वहां अपने हाथ से इस को बलि दो। इस से ईश्वरी के निकट जो अपराध किया है, उस का मार्जन होगा; पवित्र कर्म से अक्षय पुण्य का संचय होगा, विश्वासघातिनी को दंड होगा, प्रतिशोध की समाप्ति होगी।"

कापालिक ने वाक्य समाप्त किया। नवकुमार ने कुछ उत्तर न दिया। इस से फिर उस ने कहा, "वत्स! अभी जो दिखाने कहा था, वह देखने चलो।"

नवकुमार पसीने में डूबे हुए कापालिक के संग चले।

# सप्तम परिच्छेद।

## सपत्नी संभाषण।

" Be at peace; it is your sister that addresses you. Requite Lucretia's love."

बचन मानि हठ मति करहु, हित को बदलो देहु।
या छिन जो बतरानि है, भगिनि अहै तुव एहु॥

*Lucretia.*

कपालकुण्डला ने गृह से बाहिर होकर कानन के भीतर प्रवेश किया। पहिले भग्नगृह में गई। वहां ब्राह्मण को देखा। यदि दिन होता तो देखती कि उस को मुखकांति अत्यन्त मलिन हो रही है। ब्राह्मणवेशी ने कपालकुण्डला से कहा कि, "यहां कापालिक आ सकता है, यहां कोई बात करना अविधेय है। दूसरी जगह चलो।" वन में एक अल्पविस्तृत स्थान था, उस के चारों ओर वृक्षश्रेणी, और बीच में परिष्कार था। वहां से एक पथ बाहर गया था। ब्राह्मणवेशी कपालकुण्डला को वहीं ले गया। दोनों के बैठने पर ब्राह्मण ने कहा,—

"पहिले अपना परिचय दूं। कहां तक मेरी बात विश्वास योग्य है। इसे आप ही विवेचना करलोगी। जब तुम स्वामी के संग हिजली प्रदेश से आती थी, तब मार्ग में रात्रि के समय एक यवनकन्या के संग तुम्हारा साक्षात् हुआ था। तुम्हें क्या स्मरण है?"

कपालकुण्डला ने कहा, "जिन्हों ने हमें गहने दिये थे?"

ब्राह्मणवेशी ने कहा, "मैं वही हूं।"

कपालकुण्डला अत्यन्त विस्मित हुई। लुत्फउन्निसा ने उस का विस्मय देख के कहा, "और भी विस्मय का विषय है। मैं तुम्हारी सौत हूं।"

कपालकुण्डला ने चमत्कृत हो कर कहा, "यह क्या?" तब लुत्फउन्निसा आनुपूर्विक अपना परिचय देने लगी। विवाह, जातिभ्रंश, स्वामी कर्त्तृकत्याग, ढाका, आगरा, जहांगीर, मेहरुन्निसा, आगरात्याग, सप्तग्राम में वास, नवकुमार के संग साक्षात्, नवकुमार का व्यवहार, गतदिवस प्रदोष के समय छद्मवेश से वन में आना, और होमकारी के संग साक्षात्, आदि सभी कहा। इस समय कपालकुण्डला ने पूछा,

"तुम किस अभिप्राय से छद्मवेश धारण कर के आई थीं?"

लुत्फउन्निसा ने कहा, "तुम्हारे सङ्ग स्वामी का चिरविच्छेद करने के अभिप्राय से।"

कपालकुण्डला चिन्ता करने लगी। बोली, "किस प्रकार सिद्ध करतीं?"

लुत्फउन्निसा। भरसक तुम्हारे सतीत्व में स्वामी को संशयान्वित करदेती। किन्तु उस बात से अब क्या काम है? उस पथ को त्याग किया। अब तुम यदि मेरे परामर्श के अनुसार काम करो, तो तुम से ही मेरा मनोरथ सिद्ध होगा—और तुम्हारा मंगल होगा।

कपा०। होमकारी के मुख से तुम ने किस का नाम सुना था?

लु०। तुम्हारा ही नाम। वह तुम्हारे मंगल वा अमंगल की कामना से होम करते हैं, इस को जानने के लिये मैं प्रणाम करके उन के निकट जा बैठी जब तक उन की क्रिया न समाप्त हुई, तब

तक वहां बैठी रहो। होम के अंत में मैंने तुम्हारे नाम से युक्त होम का अभिप्राय छल से पूछा। कुछ देर उन के संग बातचीत करके जानलिया कि तुम्हारा अमंगल साधनही होम का प्रयोजन है। मेरा भी वही प्रयोजन है—यह भी उन को बताया। तत्क्षण एक दूसरे को सहायता करने में बाध्य हुए। विशेष परामर्श के लिये वे मुझे भग्नगृह में ले गये। वहां अपना मानसिक भाव कहा। तुम्हारी मृत्यु ही उन्हें अभीष्ट है। इस से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने इस जन्म में केवल पाप ही किया है, पर पाप के पथ में मेरा यहां तक अधःपतन नहीं हुआ है कि, मैं बिना अपराध बालिका का मृत्युसाधन करूं। मैं इस में सम्मत न हुई। इसी समय तुम वहां उपस्थित हुई थीं। जान पड़ता है कुछ सुना होगा।

कपा०। मैंने इसी प्रकार किञ्चित् सुना था।

लु०। उस व्यक्ति ने मुझे अज्ञान जान के कुछ उपदेश देना चाहा था। अन्त में क्या हो, यह जान के तुम्हें उचित सम्वाद दूंगी। इस लिये तुम्हें वन के भीतर झाड़ में बैठाल गई थी।

कपा०। तदनन्तर फिर लौटीं क्यों नहीं?

लु०। उन्हों ने बहुत सी बातें कहीं। बहुत वृत्तान्त सुनते २ विलम्ब हुआ। तुम उस व्यक्ति को अच्छी तरह जानती हो? वह कौन है, अनुमान कर सकती हो?

कपा०। मेरा पूर्व प्रतिपालक कापालिक है।

लु०। हां वही है। कापालिक ने प्रथम तुम्हारा समुद्र के तीर [illegible], वहीं प्रतिपालन, नवकुमार का आगमन, उस के

था, वह भी कहा। वह सब वृत्तान्त तुम नहीं जानतीं। वह तुम्हारे जानने के लिये विस्तार पूर्वक कहती हूं।

यह कहके लुत्फउन्निसा ने कापालिक का शिखर से गिरना, हस्तभंग, स्वप्न सब कहा। स्वप्न को सुन के कपालकुण्डला कांप उठी—चित्त में बिजली दौड़ने लगी। लुत्फउन्निसा कहने लगी—

"भवानी की आज्ञा पालन करने की कापालिक की दृढ़प्रतिज्ञा है। वह बाहुबल में हीन है, इस लिये दूसरे की सहायता का अत्यन्त प्रयोजन है, मुझे ब्राह्मणतनय जान के सहायक बनाने की प्रत्याशा से सब वृत्तान्त कहा था, मैं अब तक इस दुष्कर्म में स्वीकृत नहीं हुई। इस दुर्वृत्तचित्त की बात नहीं कह सकती, किन्तु आशा करती हूं कि कभी स्वीकृत न होऊंगी। वरन यह इच्छा है कि इस संकल्प के प्रतिकूल आचरण करूंगी; इसी अभिप्राय से मैंने तुम्हारे संग साक्षात् किया था। किन्तु यह काम नितान्त अस्वार्थपर हो के मैं नहीं करती। तुम्हारा प्राणदान करती हूं, तुम भी मेरे लिये कुछ करो।"

कपालकुण्डला ने कहा, "क्या करूं?"

लु०। मुझे भी प्राणदान दो—स्वामी त्याग करो। कपालकुण्डला अनेक क्षण पर्यंत नहीं बोली। कुछ देर पीछे कहने लगी, "स्वामी को त्याग करके कहां जाऊंगी?"

लु०। विदेश में—बहुत दूर—तुम्हें घर दूंगी—धन दूंगी—दास दासी दूंगी—रानी की भांति रहोगी।

कपालकुण्डला फिर चिन्ता करने लगी। पृथ्वी के चारो ओर मानस लोचन से देखा, कहीं भी किसी को न [illegible]

दृष्टि कर के देखा, वहां तो नवकुमार को न देखा, तब क्यों लुत्फ-उन्निसा के सुख का पथरोध करती ? लुत्फउन्निसा से कहा,

" तुम ने मेरा उपकार किया है कि नहीं, सो अभी नहीं समझ सकती। अट्टालिका, धन संपत्ति, दास, दासी, आदि का भी प्रयोजन नहीं है पर तुम्हारे सुख का पथ क्यों रोकूंगी ? तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो— कल से इस विघ्नकारिणी का कोई संवाद न पाओगी। मैं बनचरी थी, फिर बनचरी होऊंगी। "

लुत्फउन्निसा चमत्कृता हो गई, उस ने ऐसे शीघ्र स्वीकार की प्रत्याशा न की थी। मोहित होके कहा, "भगिनी—तुम दीर्घ जीविनी हो, तुम ने मुझे जीवनदान किया है, किन्तु मैं तुम्हें अनाथ होके न जाने दूंगी। कल सवेरे तुम्हारे पास अपनी एक विश्वास योग्य चतुरदासी भेजूंगी। उस के संग जाना। वर्द्धमान की एक परम माननीया स्त्री मेरी सुहृत् है। वह तुम्हारी सब आवश्यकता पूरी कर देगी। "

लुत्फउन्निसा और कपालकुंडला इस प्रकार मन लगाये बातें करती थीं कि, सामने कोई विघ्न न देख सकीं। जो मार्ग उन दोनों के आश्रयस्थान से बाहर चला गया था, उसी पथ के किनारे खड़े होकर कापालिक औ नवकुमार उन दोनों की ओर कराल दृष्टि-पात कर रहे थे, उसे उन दोनों ने नहीं देखा।

नवकुमार और कापालिक ने इन दोनों के प्रति केवल दृष्टिपात किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश उतनी दूर से इन दोनों की बातों का कोई अंश उन के श्रुतिगोचर न हुआ। मनुष्य के नेत्र औ कान यदि एक से दूरगामी होते, तो तीव्र दुःख शान्त होता कि बढ़ता, कौन कहे ? संसार की रचना अपूर्व कौशलमय है।

नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला खुलेकेश है। जब वह इन को नहीं छुई थी, तब भी केश को बांधती नहीं थी। फिर देखा कि वही कुन्तलराशि ब्राह्मणकुमार की पीठ पर गिर के उन के कांधे तक लटके केशसमूह के संग मिल गई है। कपालकुण्डला की केशराशि इतनी लम्बी थी, और मंदस्वर से बातें करने के लिये दोनों ऐसे सटके बैठी थीं कि, लुत्फउन्निसा की पीठ तक कपाल-कुण्डला के केश फैल गये थे। यह उन लोगों ने न देखा। नवकुमार देख के धीरे २ पृथ्वी में बैठ गये।

यह देख के कापालिक ने अपनी कमर में लटकते हुए एक नारियल के पात्र को खोल के कहा, "वत्स! अबल होते जाते हो? यह महौषधि पान करो, यह भवानी का प्रसाद है। पान करके बली हो जाओगे।"

कापालिक ने नवकुमार के मुख में पात्र लगा दिया। उन्हों ने अनन्य मन से पान करके दारुण तृषा को निवारण किया। वह नहीं जानते थे कि यह सुस्वादु पेय कापालिक के हाथों की बनाई तेजस्विनी मदिरा है। पान करते ही सबल हो गये।

इधर लुत्फउन्निसा पहिले की भांति मृदुस्वर से कपालकुण्डला से कहने लगी,

"बहिन! तुम ने जो काम किया उस के प्रतिशोध करने की मेरी क्षमता नहीं है; तो भी यदि मैं चिरदिन तुम्हें स्मरण होती रहूं, तो मुझे सुख हो। जो अलंकार दिये थे, सो सुना कि, तुम ने किसी दरिद्र को दे दिये, इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। कल के लिये दूसरा प्रयोजन सोच के जूड़े में एक अंगूठी रख आई हूं, ईश्वर की कृपा से

उस पाप प्रयोजन के सिद्ध करने की आवश्यकता न हुई। अब यह अंगूठी तुम रक्खो। इस के पीछे अंगूठी देख के यवनी भगिनी को स्मरण करना। आज यदि स्वामी जिज्ञासा करें, अंगूठी कहां पाई ? तो कहना कि लुत्फउन्निसा ने दी है। यह कह के अपनी अंगुली से उतार के एक बहुमूल्य अंगूठी कपालकुण्डला के हाथ में दे दी। नवकुमार ने यह भी देख लिया; कापालिक उन्हें पकड़े था, पुनः उन्हें कंपित देख के फिर मदिरा का सेवन कराया। मदिरा नवकुमार के मस्तिष्क में प्रवेश कर के प्रकृति का संहार करने लगी, स्नेह के अंकुर तक को उन्मूलित करने लगी।

कपालकुण्डला लुत्फउन्निसा से विदा हो के घर की ओर चली। तब नवकुमार और कापालिक लुत्फउन्निसा के अदृश्यपथ से कपालकुंडला का अनुसरण करने लगे।

---

# अष्टम परिच्छेद।

## गृहाभिमुख।

" No spectre greets me—no vain shadow this "

वृथा संभ्रमय भूतनहिं यह सामुहें दिखात।"

*Wordsworth.*

कपालकुंडला धीरे २ घर की ओर चली। इस का यह कारण था कि वह अतीव गंभीर चिंता में मग्न हो रही थी। लुत्फउन्निसा की बातों से कपालकुंडला का चित्त एक दम परिवर्त्तित हो गया; वह आत्मविसर्जन के लिये प्रस्तुत हुई। आत्मविसर्जन किस लिये? लुत्फउन्निसा के लिये? सो नहीं।

कपालकुंडला अंतः करण के संबंध से तांत्रिक की कन्या थी; तांत्रिक जिस प्रकार काली की प्रसन्नता की आकांक्षा के लिये दूसरे के प्राण संहार करने में संकोचशून्य था, कपालकुण्डला भी उसी आकांक्षा के लिये अपना जीवन विसर्जन करने में समान थी। कपालकुण्डला कापालिक की भांति अनन्यचित्त हो कर शक्ति के प्रसाद की प्रार्थिनी हुई थी, सो नहीं है। तथापि अहर्निश शक्ति की भक्ति, श्रवण, दर्शन, और साधन से उस के मन में काली के का अनुराग अच्छी भांति हो गया था। भैरवी सृष्टिशासन कर्त्री और मुक्तिदात्री हैं, यह अच्छी तरह प्रतीत हो गया था। कालिका की पूजाभूमि नरशोणित से प्लावित होती, यह उस के पर दुःख दुःखित हृदय से न सहा जाता था, किन्तु और किसी काम में भक्तिप्रदर्शन की त्रुटि नहीं थी। अब वही जगत्शासनकर्त्री सुख दुःख विधायिनी, कैवल्यदायिनी, भैरवी स्वप्न में उस के जीवन

समर्पण का आदेश करती हैं; तो कैसे कपालकुण्डला उस आज्ञा का पालन न करे ?

हम तुम प्राण त्याग करना नहीं चाहते। क्रोध से कुछ कहैं, पर संसार सुखमय है। सुख ही की प्रत्याशा से इस गोलाकार संसार में घूम रहे हैं, दुःख की आशा से नहीं। कदाचित् अपने कर्म के दोष से वह आशा सफल न हुई, तो दुःख मान के बड़ा कोलाहल आरम्भ करते हैं। तो भी दुःख का नियम नहीं है, सिद्धान्त हुआ, कि दुःख नियम का व्यतिक्रम मात्र है। हमें तुम्हें सर्वत्र सुख है। उसी सुख से हमलोग संसारबद्ध हैं। छोड़ना नहीं चाहते। किन्तु इस संसारबंधन में प्रणय प्रधान रज्जू है। कपालकुण्डला को वह बंधन नहीं था, कोई भी बंधन न था। तब उस को कौन रोकै ?

जिस को बंधन नहीं है, उसी का अनिवार्य वेग है। गिरिशिखर से निर्झरिणी के गिरने से उस का वेग कौन रोक सकता है ? एक बार वायु के चलने से कौन उस की गति रोक सकता है ? कपाल-कुण्डला के चित्त चंचल होने पर कौन उसे निश्चल करता ? तरुण हस्ती के मतवाले होने से कौन उसे शान्त कर सकता है ?

कपालकुण्डला ने अपने चित्त से पूछा "क्यों इस शरीर को जगदंबा के चरणों में समर्पण न करूं ? पंचभूत को रख के क्या होगा ?" प्रश्न करती थी, अथच कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकती थी। संसार के और कोई बंधन न रहने पर भी पंचभूत का एक बंधन है।

कपालकुंडला मुख नीचा किये हुए जाने लगी। जब मनुष्य का हृदय किसी उत्कटभाव से आच्छन्न हो जाता है, और चिन्ता

की एकाग्रता से बाहरी वस्तु की ओर ध्यान नहीं रहता, तब अस्वाभाविक पदार्थ भी प्रत्यक्षीभूत की भांति जान पड़ते हैं। कपाल कुंडला की भी वैसी ही अवस्था हुई थी।

मानों ऊपर से उस के कानों में यह शब्द सुनाई दिया, "बेटी!—मैं पथ दिखाती हूं।" कपालकुंडला ने चकित की भांति ऊपर दृष्टि की। देखा कि आकाश में नये मेघ सी सुहावनी कृष्णमूर्ति स्थित है! कण्ठ में लटकती नरमुंडमाला से रक्त टपक रहा है; कटि-मंडल में मनुष्यों के करसमूह लटक रहे हैं।—वाम कर में नर-कपाल, अंग में रुधिरधारा, ललाट में विषमोज्ज्वल ज्वाला से प्रकाशित लोचन के प्रान्त में बालशशि सुशोभित है! मानों भैरवी दक्षिण हाथ को उठाये कपालकुंडला को पुकारती हैं।

कपालकुण्डला ने ऊपर मुख कर के देखा। वही काली मूर्त्ति आकाश मार्ग में उस के आगे २ चलीं। कभी कपालमालिनी का अवयव मेघों में छिप जाता था, कभी नयनपथ में स्पष्ट प्रकाशित होता था। कपालकुण्डला उन की ओर देखती चली।

नवकुमार वा कापालिक ने यह सब कुछ भी न देखा।

सुरा-गरल से प्रज्वलित हृदय नवकुमार ने कपालकुंडला के निडर पदचालन से चलकर सङ्गी से कहा, "कापालिक!"

कापालिक ने कहा, "क्या?"

"पानीयं देहि मे।"

कापालिक ने फिर सुरापान कराया।

नवकुमार ने कहा, "अब विलम्ब क्यों?"

कापालिक ने उत्तर दिया, "अब विलम्ब क्यों?"

नवकुमार ने भयंकर रूप से गरज कर कहा, "कपालकुंडला !"

कपालकुंडला सुन कर चमत्कृत हुई। आज कल कोई उसे कपालकुंडला के नाम से नहीं पुकारता था, वह मुख फेर के खड़ी हुई। नवकुमार और कापालिक उसके संमुख गये। कपालकुंडला उन दोनों को पहिले न चीन्ह सकी। बोली,

"तुम लोग कौन हो ? यमदूत ?"

फिर तत्क्षण चीन्ह के कहा, "नहीं नहीं, पिता ! तुम क्या मुझे बलि देने आए हो ?"

नवकुमार ने दृढ़ मुष्टि से कपालकुंडला का हाथ पकड़ लिया। कापालिक ने करुणार्द्र और मधुमय स्वर से कहा,

"बेटी ! हम लोगों के सङ्ग चल।" यह कह के कापालिक श्मशान के अभिमुख पथ दिखाता हुआ चला।

कपालकुंडला ने आकाश की ओर दृष्टि निक्षेप किया; जहां गगनविहारिणी भयंकरी मूर्त्ति देखी थी, उसी ओर देखा, कि रणरंगिणी खिल २ हंसती हैं। एक बड़ा सा त्रिशूल हाथ में ले कर कापालिक-प्रदर्शित पथ की ओर संकेत करती हैं। कपालकुंडला ने अदृष्टविमूढ़ा की भांति बिना वाक्य व्यय किये कापालिक का अनुसरण किया। नवकुमार पूर्ववत् दृढ़ मुष्टि से उस का कर धारण किये हुए चले।

---

# नवम परिच्छेद ।

## प्रेतभूमि ।

"वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननुतैलनिषेकविन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥"

रघुवंश ।

चन्द्रमा अस्त हुए। विश्वमंडल अन्धकार से परिपूर्ण हो गया। कापालिक ने जहां अपने पूजा स्थान को संस्थापन किया था, वहां कपालकुंडला को ले गया। गंगा तीर पर एक वृहत् सैकतभूमि है। उसी के सामने और भी एक बहुत बड़ा बालुकामय स्थान है। उसी में श्मशानभूमि है। दोनों भूमि के बीचो बीच ज्वार के समय कम जल रहता है, पर भाटा के समय जल नहीं रहता। इस समय जल नहीं था। श्मशानभूमि का जौन किनारा गंगा की ओर था, वह अत्युच्च था, जल में पैठो तो एकदम ऊंचे से अगाध जल में गिरना पड़े। फिर उस में वारंवार हलफा लगने से उपकूल का तलभाग खोखर गया था। कभी २ अरार टूट कर गिर पड़ता था। पूजा के स्थान पर दीप नहीं था—केवल काष्ठखंड में आग जलती थी, उस के प्रकाश से अतिशय अस्पष्ट श्मशानभूमि और भी भयंकर दिखाई देती थी। निकट ही पूजा होम, बलि, प्रभृति का सब आयोजन था। विशाल तरंगिणी का हृदय अंधकार में विस्तृत हो गया था। चैत्रमास की वायु अप्रति-हतवेग से गंगा के हृदय अंधकार में विस्तृत हो गया था। चैत्र-मास की वायु से गंगा के हृदय पर दौड़ रही थी।

इसी कारण तरंगाभिघात जनित कलकल शब्द आकाश तक व्याप्त हो गया था। श्मशान भूमि में शवभोजी पशुगण कर्कश कंठ से कभी २ चीत्कार करते थे।

कापालिक ने नवकुमार और कपालकुंडला को उपयुक्त स्थान में कुशासन पर बैठाके तंत्र के विधानानुसार क्रिया का आरंभ किया। उपयुक्त समय में नवकुमार को आज्ञा दी कि कपालकुंडला को स्नान करा लाओ। नवकुमार कपालकुंडला का हाथ थाम के श्मशानभूमि में होकर स्नान कराने ले चले। उन दोनों के पैरों में अस्थिखंड गड़ने लगे। नवकुमार के पदाघात से एक जल भरा श्मशान का घड़ा फूट गया। उस के समीप ही मुरदा पड़ा था—अभागे का किसी ने संस्कार भी नहीं किया था। दोनों व्यक्ति का चरण उस में स्पर्श हुआ। कपालकुंडला उस से हट कर चली गई और नवकुमार पददलित करते गये। चारोंओर किनारे २ मांसभोजी पशु गण फिरते थे। दो मनुष्यों का आगमन देख के उच्चकंठ से रव करने लगे, कोई आक्रमण करने के लिये आया, और कोई चरण पटक शब्द कर के चला गया। कपालकुंडला ने देखा कि नवकुमार का हाथ कांपता है; पर स्वयं निर्भय निष्कंप थी।

कपालकुंडला ने पूछा-“ डरते हो ? ”

नवकुमार के मदिरा का मोह क्रमश: मन्दीभूत हो चला था। अत: अति गंभीर स्वर से उत्तर दिया,

“ भय से, मृण्मयी ? सो नहीं। ”

कपालकुंडला ने पूछा, “ तो कांपते क्यों हो ? ”

यह प्रश्न कपालकुंडला ने जैसे स्वर से किया वह केवल रमणी के कंठ ही से उत्पन्न हो सकता है। जब रमणी पराए दुःख से पघल जाती हैं तभी ऐसे स्वर का संभव होता है। कौन जानता था कि आसन्नकाल में श्मशान में आकर कपालकुंडला के कंठ से ऐसा स्वर निकलेगा ? नवकुमार ने कहा " भय नहीं है। रो नहीं सकते ; इसी क्रोध से कांपते हैं।"

कपालकुंडला ने कहा, " किस लिये रोदन करोगे ? "

फिर वही कंठ !

" क्यों रोवेंगे ? तुम क्या जानोगी ?

मृण्मयी ! तुम तो कभी रूप देख के उन्मत्त नहीं हुई" कहते कहते नवकुमार के कंठ का स्वर यातना से रुद्ध होने लगा, ' तुम तो कभी अपने हृत्पिण्ड को स्वयं छेदन कर के श्मशान में फेंकने नहीं आई। " यह कह के नवकुमार चीत्कार करके रोदन करते २ कपालकुंडला के चरणतल में पछाड़ खा के गिर पड़े,

"मृण्मयी !—कपालकुंडला ! हमें बचाओ। देख तेरे चरणों में लोटते हैं—एक बेर कहो, कि "मैं अविश्वासिनी नहीं हूं—एक बेर बोल तो हम तुझे हृदय में धारण करके घर ले जायं।"

कपालकुंडला ने हाथ पकड़ के नवकुमार को उठाया। और मृदुस्वर से कहा, " तुम ने तो जिज्ञासा नहीं की थी ? "

जब यह बात हुई, तब तक दोनों एक दम से जल के किनारे आकर खड़े हुए; कपालकुंडला पहिले नदी की ओर पीठ कर के खड़ी थी, पीछे एक ही पग पर जल था। ज्वार आरंभ हुआ था। कपालकुंडला एक करारे के ऊपर खड़ी थी। उस ने उत्तर दिया, "तुम ने तो जिज्ञासा नहीं की थी।"

नवकुमार ने पागलों की न्याईं कहा, "चैतन्य लोप हो गया है, क्या जिज्ञासा करते, बोल मृण्मयी ! बोल—बोल—बोल ! हमें बचाव। घर चल।"

कपालकुंडला ने कहा, "जो पूछो सो कहूंगी। आज जिसे देखा है, वह पद्मावती है। मैं अविश्वासिनी नहीं हूं। यह बात सत्य कही। किन्तु अब मैं घर न जाऊंगी। भवानी के चरण में देह विसर्जन करने आई हूं। निश्चय यही करूंगी। तुम घर जाव। मैं मरूंगी। मेरे लिये रोदन मत करना।"

"नहीं—मृण्मयि ! —नहीं !—" इस प्रकार से उच्चशब्द कर के नवकुमार ने कपालकुंडला को हृदय में धारण करने के लिये बाहु फैलाया। पर फिर कपालकुंडला को नहीं पाया। चैतीवायु से उठी एक विशाल नदीतरंग ने आकर जहां कपालकुंडला खड़ी थी, वहां तट के निम्नभाग में आघात किया; तत्क्षण तट पर का अरार कपाल-कुंडला के संग घोर शब्द करके नदी के प्रवाह में टूट पड़ा।

नवकुमार ने भीषण तरंग का शब्द सुना, कपालकुंडला अंतर्धान हुई, यह भी देखा। तुरंत उस के पीछे छलांग मार के जल में कूद पड़े। नवकुमार तैरने में नितान्त असमर्थ नहीं थे। थोड़ी देर तक तैरते २ कपालकुंडला का अन्वेषण करने लगे। पर नहीं पाया, वह भी नहीं निकले।

अनंत गंगाप्रवाह में, वसंतवायुविक्षिप्त वीचिमाला से आंदोलित होते २ कपालकुंडला और नवकुमार कहां गये ?

चतुर्थ खंड समाप्त हुआ।

॥ इति श्री ॥

# पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित ग्रंथ ।

ठेठ हिन्दी का ठाट—( ठेठ हिन्दी में मनभावन उपन्यास ) ।)

" " उर्दू ।)

अधखिला फूल—( ठेठ हिन्दी में लिखा सुन्दर उपन्यास ) ॥=)

प्रबोधन—( सजीव हिन्दी में धर्म विषयक निबन्ध, जिस के पढ़ते ही रोंगटे खड़े हो जायं ) ।)

प्रद्युम्नविजय— ( उपन्यास ) =)

रुक्मिणीपरिणय— )

काव्योपवन—(भिन्न २विषयों की मनोहर कविताओं का संग्रह)॥=)

प्रियप्रवास— खड़ी बोली के अनुप्रासरहित छन्दों में पहला महाकाव्य है।

छन्द की मधुरता और सरसता, कविता का सौन्दर्य, देखने ही से जान पड़ेगा। पाण्डित्य भरी बृहद् भूमिका देखने योग्य है। बम्बई अक्षर, विलायती कागज, साफ छपाई, चित्त को मुग्ध करती है। दाम केवल १॥)

# पण्डित प्रतापनारायण मिश्र रचित पु

कलि कौतुक रूपक—(इस नाटक में आज काल की द
 चित्र खिंचे हैं)

मन की लहर—(कई एक भाषाओं में कई भावों से
 मनोहर लावनियां)

आल्हा (पढ़ते ही मन भड़क उठता है)

सूबे बंगाल का भूगोल—(बंगाल का पूरा वर्णन)

कथामाला—(बालकों के लिये उपदेश भरी कथायें)

नीतिरत्नावली—(बालकों के लिये उपदेश)

शैवसर्वस्व—(शिवपूजा युक्तियों से सिद्ध और नास्तिकों
 शंका खंडन)

पञ्चामृत—(पाखंडियों का मतखंडन और सदुपदेश)

रसखानशतक—(भक्ति और शृङ्गाररस की हृदयग्राहिणी

संगीतशाकुंतल (इस की मनोहरता देखने योग्य है)

वैडला स्वागत (अंगरेजी अनुवाद सहित)

बोधोदय (यथा नाम तथा गुण)

लोकोक्तिशतक (१०० कहावतों पर कविता)

चरिताष्टक प्रथम भाग (आठ महान् पुरुषों का जीवनच

सेनवंश (प्रसिद्ध सेनराजवंश का इतिहास)

सुचालशिक्षा (बालकोपयोगी प्रबन्ध)

शिशुविज्ञान

पता—"मैनेजर खड्गविलास" प्रेस, बां

दाम १) रुपया

श्री

(राय)बहादुर बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी॰ आई॰ ई॰

कृत

# मृणालिनी

का

पटना कालेज के संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्याता

पण्डित अक्षयवट मिश्र (विप्रचन्द्र) कृत

## हिन्दी अनुवाद

—:※:—

# MRINALINEE

Translated

BY

(Pa)ndit Aksyavat Mishra (Viprachandra)

*Lecturer in Sanskrit & Hindi*

PATNA COLLEGE

श्री

# समर्पण ।

मैं

यह पुस्तक

मान् विप्रकुलकुमुदकलाधर, परमगुणग्राही, संस्कृतज्ञशिरोमणि,

हिन्दीहितैषी, कलकत्ता संस्कृत-कालेज के प्रिन्सपल,

एम० ए० पदभूषित, महामहोपाध्याय,

डाक्टर, सतीशचन्द्र विद्याभूषण,

महाशय की सेवा में सप्रेम,

सभक्ति, सादर समर्पित

करता हूं ।

अनुवादक,

अक्षयवट मिश्र

# मृणालिनी

## प्रथम खण्ड

## प्रथम परिच्छेद

### आचार्य्य

एक दिन प्रयाग तीर्थ में गंगा यमुना के संगम पर पावस ऋतु के सायंकाल में अपूर्व शोभा देख पड़ती थी। वर्षाकाल था, पर मेघ नहीं थे। और जो मेघ थे भी वे सुवर्ण की तरंगमाला की भांति पश्चिम दिशा के आकाश में शोभित हो रहे थे। सूर्यदेव अस्ताचल पर जा चुके थे। वर्षा के जल की बाढ़ से गंगा और यमुना दोनों ही भर कर पूर्ण यौवन से मतवाली हो कर दो बहनों के समान आपस में परस्पर मिल रही थीं। चंचल अंचल के समान तरंगमाला हवा का झोंका खा कर तीर पर आ लगती थी।

एक छोटी सी नौका में दो आदमी बैठे थे। वह नौका बड़ी तेजी के साथ उस भयंकर यमुना की धारा के वेग में आ कर प्रयाग के एक घाट पर आ लगी। एक आदमी नौका से नीचे उतर आया, दूसरा उसी पर रह गया। जो उतर पड़ा उस की अभी नई जवानी थी, देह ऊंची और मज़बूत थी, और उस का ठाट सिपाहियाना था। सिर पर पगड़ी, बदन पर बख़्तर

( कवच ), हाथों में धनुष और बाण, पीठ पर तरकस, और पैरों में जूते थे। यह वीर पुरुष बड़ा ही सुन्दर था। घाट पर बहुत से संसारत्यागी, धर्मात्मा, तपस्वियों के आश्रम थे। उन आश्रमों की एक छोटी सी कुटी में यह जवान घुस गया।

कुटी के बीच में एक ब्राह्मण कुशासन पर बैठ कर जप कर रहे थे। ब्राह्मण का शरीर बहुत लम्बा था। सब शरीर सूख गये थे, चौड़े मुंह पर सफेद दाढ़ी अच्छी जान पड़ती थी। सिर के बाल सघन न थे और ललाट पर विभूति शोभा दे रही थी। ब्राह्मण के शरीर की चमक बड़ी तेज़ थी और आंखें बड़ी चमकीली थीं। देखने में वे निर्दय वा घृणा के योग्य नहीं जान पड़ते थे, किन्तु उन्हें देखने से भय होता था। आये हुए वीर को देखते ही गम्भीरता दूर हुई, मुख पर प्रसन्नता झलकने लगी। वह वीर ब्राह्मण को प्रणाम कर खड़ा हो गया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद दे कर कहा "वत्स हेमचन्द्र ! मैं बहुत दिनों से तुम्हारी राह देख रहा हूं।"

हेमचन्द्र ने नम्रता से कहा "अपराध क्षमा कीजिये। दिल्ली में कार्य सिद्ध नहीं हुआ। पर यवन ने मेरा पीछा किया था, इस लिये कुछ सचेत हो कर आना था, इसी कारण विलम्ब हुआ"।

ब्राह्मण ने कहा "दिल्ली का सब समाचार मैं ने सुन लिया है। बख्तियार खिलजी हाथी से मारा जाता, तो अच्छा होता। देवता का शत्रु उस पशु के हाथ से मारा जाता, लेकिन क्यों उस का प्राण बचाया गया ?

हेमचन्द्र। उस को अपने हाथ से मारूंगा। वह मेरे पिता का
त्रु है। मेरे पिता का राज्य चुरानेवाला है। वह मुझी से मारे
ाने के योग्य है।

ब्राह्मण। (उस पर क्रोध कर के) जिस हाथी ने हमला
िया था, तुम ने बख्तियार खिलजी को न मार कर उस हाथी
ो को क्यों मार डाला?

हेम०। क्या मैं चोर के समान विना युद्ध ही शत्रु को मारूंगा?
ं मगध के विजयी को युद्ध में जीत कर पिता के राज्य का
द्धार करूंगा। नहीं तो मेरे "मगधराजपुत्र" इस नाम में
लंक लगेगा।

ब्राह्मण ने कुछ रूखेपन से कहा—"ये सब बातें तो बहुत
दिनों की हैं। इस के पहले यहां तुम्हारे आने की सम्भावना
ी, तो तुम ने विलम्ब क्यों किया? क्या तुम मथुरा चले गये थे?

हेमचन्द्र ने सिर झुका लिया। ब्राह्मण ने कहा—मैं सम-
झता हूं। तुम मथुरा गये थे। मैं ने मना किया था, पर तुम ने
न माना। जिस को देखने के लिये तुम मथुरा गये थे, क्या उस
को देखा?

इस बार हेमचन्द्र ने बहुत रूखेपन से कहा—"देखादेखी जो
हुई, सो तो आप ही की दया है। आप ने मृणालिनी को कहां भेज
दिया है?"

माधवाचार्य ने कहा—"मैं ने ही कहीं भेज दिया है, यह बात
तुम को कैसे मालुम हुई?"

हेम०। माधवाचार्य को छोड़ यह राय दूसरे किस की हो सकती है ? मैं ने मृणालिनी के धाय के मुंह से सुना है कि मृणालिनी मेरी अंगूठी देख कर कहीं चली गई है। और कोई कारण नहीं है। मेरी अँगूठी आप ने रास्ते में धीरज रखने के लिये ली थी। अँगूठी के बदले में मैं ने दूसरा रत्न देना चाहा था। किन्तु आप ने अंगूठी न दी। तभी मुझे सन्देह हुआ। पर "आप को मैं न दूं" ऐसी कोई चीज़ ही मेरे पास नहीं है। इसी कारण मैं ने बिना विवाद ही अंगूठी आप को दे दी। किन्तु उस असावधानी का पूरा फल आप ने मुझे दे दिया।

माधवाचार्य ने कहा—" यदि यही बात है, तो मुझ पर क्रोध मत करो। तुम देवकार्य नहीं कर सकते, तो क्या कर सकते हो ? यदि तुम ने यवन को न मारा, तो किसे मार सकते हो ? यवनों को गिरा देना ही तुम्हारा प्रधान कार्य होना उचित है, उसी पर तुम्हें सदा ध्यान रखना चाहिये। इस समय मृणालिनी तुम्हारे मन को कैसे खींच लेती ? एक वार तुम मृणालिनी की आशा से मथुरा में रहते थे। तुम्हारे बाप का राज्य छीन लिया गया था। यवनों के आने के समय यदि हेमचन्द्र मथुरा में न रह कर मगध में रहता, तो मगध क्यों जीता जाता ? अब भी क्या मृणालिनी ही के फांस में बंध कर चुपचाप बैठे रहोगे ? माधवाचार्य के जीवन भर यह बात नहीं हो सकती। इस लिये जहां रहने से तुम मृणालिनी को न पा सकोगे, मैं ने उसी जगह उस को रख दिया है।

हेम०। अपने देवकार्य का आप ही उद्धार कीजिये। मैं ने तो इतने ही दिनों तक किया।

मा० तुम्हारी बुद्धि बिगड गई है क्या यही तुम्हारी देवभक्ति है? अच्छा! वह भी न हो। देवताओं को अपना कार्यसिद्ध करने के लिये तुम्हारे समान मनुष्यों की चाह नहीं है, किन्तु यदि तुम कायर पुरुष नहीं हो, तो क्यों शत्रु की हुकूमत में रहना चाहते हो? क्या यही तुम्हारा वीरोचित अहंकार है? क्या यही तुम्हारी शिक्षा है? राजवंश में जन्म ले कर अपने राज्य के उद्धार करने से क्यों विमुख होना चाहते हो?

हेम०। राज्य—शिक्षा—अहंकार अतल जल में डूब जाय।

मा०। नराधम! तुम्हारी माता ने तुम को दस महीने और दस दिनों तक गर्भ में रख कर क्यों दुःख भोग किया? और मैं ने भी क्यों बारह बरसों तक देवताओं की पूजा छोड़ कर इस अधम को सारी विद्याओं की शिक्षा दी?

माधवाचार्य बहुत देर तक चुपचाप हो कर हथेली पर गाल रख कर बैठे रहे। धीरे धीरे हेमचन्द्र के सुन्दर गोरे मुख की कान्ति मध्याह्न की किरणों से मुरझाये हुए कमल के समान लाल हो रही थी। लेकिन भीतर धधकती हुई ज्वालावाले पर्वत के शृंग के समान स्थिर भाव से हेमचन्द्र खड़े रह गये। अंत में माधवाचार्य ने कहा—"हेमचन्द्र धैर्य धारण करो। मृणालिनी कहां है? यह बात बता दूंगा। मृणालिनी के साथ तुम्हारा ब्याह करा दूंगा। लेकिन इस समय तुम मेरी राय के मुताबिक काम करो। पहले अपना काम पूरा करो।

हेमचन्द्र ने कहा—" मृणालिनी कहां है? जब तक आप

नही बतावेंगे, तब तक मैं यवनो को मारने के लिये हथियार न उठाऊँगा ?"

माधवाचार्य ने कहा—" यदि मृणालिनी मर गई हो ? "

हेमचन्द्र की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। उन ने कहा—" तब यह आप का काम है। " माधवाचार्य ने कहा—" मैं इस बात को मान लेता हूं कि मैं ही करता हूं। मैं ही देवकार्य के कांटों को विनष्ट करता हूं।

हेमचन्द्र के मुंह की छटा, बरसनेवाले मेघ के समान हो गयी। हाथ में धनुष उठा कर उस पर बाण चढ़ा कर बोले—" जिस ने मृणालिनी को मारा है, उसे मैं मारूंगा। इसी बाण से गुरुहत्या और ब्रह्महत्या दोनों ही दुष्ट कर्म करूंगा।

माधवाचार्य हँस कर बोले—" गुरुहत्या और ब्रह्महत्या करने में जितना आनन्द तुम को है, उतना आनन्द हम को स्त्रीहत्या करने में नहीं है। इस समय तुम को पापी न बनना पड़ेगा। मृणालिनी जीती है। तुम से हो सके, तो उस को ढूंढ़ कर उस सें मिलो। इस समय तुम मेरे आश्रम से निकल कर दूसरी जगह चले जाओ। आश्रम को अपवित्र मत करो। अयोग्य पर मैं कोई भार नहीं रखता। " यह कह कर माधवाचार्य पहले ही की भांति जप करने में लग गये।

हेमचन्द्र उस आश्रम से बाहर निकले। घाट पर आ कर छोटी नौका पर चढ़ गये। जो दूसरा आदमी नौका में था उस से कहा—" दिग्विजय ! नौका छोड़ दो। "

दिग्विजय बोला—" कहां जाइयेगा ? " हेमचन्द्र ने कहा—" जहां इच्छा होगी। यम के घर जाऊंगा। "

दिग्विजय स्वामी का स्वभाव जानता था। धीरे से कहा " वह समीप ही है " यह कह कर नौका को छोड़ दिया और जिधर से धारा आ रही थी, उसी ओर नौका को खेने लगा।

हेमचन्द्र बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोले—" दूर हो! लौट चलो! "

दिग्विजय ने नौका लौटाई। फिर प्रयाग के घाट पर आ पहुंची। हेमचन्द्र कूद कर तीर पर उतर पड़े। और फिर माधवाचार्य की कुटी में चले गये।

उन को देख कर माधवाचार्य ने कहा—" फिर क्यों आये ? "

हेमचन्द्र ने कहा—" आप जो कहेंगे, वही करूंगा। मृणालिनी कहां है ? बता दीजिये। "

मा०। तुम सत्यवादी हो। मेरी आज्ञा का पालन करना तुम ने स्वीकार कर लिया। मैं इतने ही से सन्तुष्ट हो गया। गौड़ नगर में एक शिष्य के घर मृणालिनी को रख दिया है। तुम को भी वहीं जाना होगा। पर तुम उसे न देख सकोगे। शिष्य से मैं ने भली भांति कह दिया कि—" जितने दिनों तक मृणालिनी तुम्हारे घर रहे, उतने दिनों तक किसी पुरुष से देखादेखी न करने पावे। "

हेम०। " देखादेखी न करने पावे " जो आप ने कहा इसी से मैं कृतकृत्य हो गया। इस समय क्या करना होगा ? आज्ञा दीजिये।

मा० । तुम दिल्ली जा कर "यवनों की क्या सलाह है" यह बूझ कर चले आओ ।

हेम० । यवन लोग बंगाल जीतने का उपाय कर रहे हैं । बहुत जल्दी बख्तियार खिलजी सेना ले कर गौड़ की ओर जायगा ।

माधवाचार्य का मुख प्रसन्नता से खिल उठा । उन ने कहा— "जान पड़ता है कि विधाता ने इतने दिनों के बाद इस देश पर दया की है ।"

हेमचन्द्र एकाग्र चित्त से माधवाचार्य की ओर मुंह कर के उन के वचन की राह देखने लगे । माधवाचार्य कहने लगे "कई महीनों तक मैं केवल गणना ही में लगा हुआ था । गणना से जिस भविष्यत् बात के होने की सम्भावना थी, उस के फलित होने का प्रारम्भ होने लगा ।

हेम० । कैसे ?

मा० । गणना कर के मैं ने देखा था कि—यवनराज्य का नाश बङ्गराज ही से प्रारम्भ होगा ।

हेम० । वह हो सकता है । किन्तु कितने दिनों में होगा ? और किस के हाथ से होगा ?

मा० । उस को भी गिनकर स्थिर कर लिया है । जब पश्चिम देश के रहनेवाले बनिये बंग राज्य में हथियार उठावेंगे, तभी यवन-राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जायगा ।

हेम० । तब मेरे जयलाभ की कौन आशा है ? मैं तो बनिया नहीं हूं ।

मा० । तुम्हीं बनिये हो। जब तुम मृणालिनी के लिये बहुत दिनों तक मथुरा में रहे तब कौन छल कर के वहां रहे ?

हेम० । उस समय मैं अपने को बनिया कह कर सब को परिचय देता था। यह ठीक है।

मा० । इसलिये तुम्हीं पश्चिम देश के बनिये हो। गौड़ राज्य में जाकर तुम्हारे हथियार उठाते ही यवनों का पतन हो जायगा। तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि "कल भोर होते ही गौड़ देश को चला करूंगा"। जब तक तुम यवनों के साथ युद्ध न करो, तब तक तुम मृणालिनी के साथ देखा देखी न करो।

हेमचन्द्र ने ऊंची सांस लेकर कहा "यही स्वीकार करता हूं। किन्तु अकेले युद्ध कर के क्या करूंगा ?"

मा० । गौड़ेश्वर की सेना है।

हेम० । हो सकती है, पर उस में कई सन्देह हैं। यदि है भी, तो वह मेरे अधीन क्यों होगी ?

मा० । तुम आगे जाओ। नवद्वीप में मुझ से भेंट होगी। उसी जगह चल कर इस का उचित उपाय किया जायगा। गौड़ेश्वर से मेरी जान पहचान है।

" जो आज्ञा " कह कर हेमचन्द्र प्रणाम कर के विदा हुए। जब तक उन की वीरमूर्त्ति आंखों के सामने थी, तब तक आचार्य टकटकी लगा कर उन की ओर देखते ही रहे। और जब हेमचन्द्र आंखों की ओट में हो गये, तब माधवाचार्य मनही मन कहने लगे

" जाओ वत्स ! पद पद पर विजय लाभ करो यदि मेरा जन्म ब्राह्मण वंश में है, तो तुम्हारे पैरों में कुश का अंकुर भी न गड़ेगा। मृणालिनी पक्षिणी को तुम्हारे ही लिये पींजरे में बांध रखा है। पर क्या जानें, पीछे तुम उस की मीठी बोली से मोहित होकर अपना बड़ा काम भूल जाओ। इसी लिये तुम्हारा परम मंगला कांक्षी ब्राह्मण तुम को कुछ दिनों के लिये मन में दुःख दे रहा है।

---

## द्वितीय परिच्छेद ।

### पींजरे की चिड़िया ।

लक्षणावती-निवासी हृषीकेश धनी ब्राह्मण नहीं हैं। उन के घर की किञ्चित ही शोभा थी। उन के घर के भीतर जहां दो युवतियों ने दीवार में चित्र लिखे हैं, वहां पाठक महाशयों को ठहरना होगा। दोनों ही युवतियों ने अपने अपने कामों में अच्छी तरह मन लगाया था, पर उन के परस्पर वार्तालाप में कोई विघ्न नहीं होता था। उसी वार्तालाप के बीच ही से पाठकों को सुनाना आरम्भ करता हूं।

एक युवती ने दूसरी से कहा—" क्यों मृणालिनी ! मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देती ? मैं उसी राजपुत्र की कथा सुनना पसंद करती हूं।"

सखी मणिमालिनी ! अपने सुख की कथा कहो। मैं आनन्द से सुनूंगी।

मृणिमालिनी ने कहा—"अपने सुख की कथा सुनती सुनती मैं ही जल गई। तुम को क्या सुनाऊंगी?"

मृ०। तुम किस से सुनती हो। अपने स्वामी से ?

मणि०। नहीं तो, और किसी से बहुत सुनने भी तो नहीं पाती हूं। देखो, इस कमल को कैसा लिख रही हूं ?

मृ०। अच्छा हो भी नहीं सकता। कमल जल से बहुत ऊपर है। तालाब में तो ऐसा नहीं रहता। कमल की डंटी जल में सटी रहती है. चित्र में भी वैसा ही होना चाहिये। और कई एक कमल के पत्ते बनाओ। नहीं तो कमल की शोभा साफ २ न देख पड़ेगी और भी यदि उस के पास बना सको, तो एक राजहंस बना दो।

मणि०। हंस यहां क्या करेगा ?

मृ०। तुम्हारे स्वामी के समान कमल के पास सुख की कथा कहेगा।

मणि०। (हंसकर) दोनों ही के वचन बड़े मीठे हैं। मैं हंस को न लिखूंगी। मैं सुख की कथा सुनती २ जल गई।

मृ०। तब एक खंजरीट लिख दो।

मणि०। खंजरीट न लिखूंगी। खंजरीट पंख फैला कर उड़ जायगा। यह तो मृणालिनी नहीं है कि प्रेम की जंजीर से बांध रखूंगी ?

मृ० । यदि खञरीट ऐसा ही निर्दय है, तो जैसे मृणालिनी को पींजरे में रखा है, वैसे ही खंजरीट को भी पींजरे में बांध रखना ।

म० । मैं ने मृणालिनी को पींजरे में नहीं बांध रखा है, वह आप ही आकर पींजरे में घुस गई है ।

मृ० । वह माधवाचार्य का गुण है ।

म० । सखी ! तुम ने कई वार कहा है कि "माधवाचार्य के उस कठोर कार्य की कथा भली भांति कहूंगी, सो क्यों आज तक तुम ने नहीं कही ? क्या तुम माधवाचार्य की बात पिता के घर छोड़ आई हो ?

मृ० । माधवाचार्य की कथा नहीं ले आई हूं । माधवाचार्य को मैं नहीं पहचानती थी । मैं अपनी इच्छा से यहां नहीं आई हूं । एक दिन सांझ होने के बाद मेरी दासी ने मुझे यह अंगूठी दी । और कहा कि जिन ने यह अंगूठी दी है, वे फूलवाग में तुम्हारी राह देख रहे हैं । मैं ने देखा कि वह हेमचन्द्र के संकेत की अंगूठी है । उन को मुझे देखने की इच्छा है, इसी से उन ने अंगूठी भेज दी है । मेरे घर के पीछे ही फूलवाग था । यमुना से ठंढी हवा आकर उस बाग में नाच किया करती थी । वहीं उन से भेंट होती ।

म० । इस बात के याद पड़ने पर भी दुःख होता है । क्या तुम को दूसरे पुरुष के लिये छिपा रखा है ?

मृ० । दुःख क्यों होता है, सखी ! वे मेरे स्वामी हैं । उन को छोड़ कर दूसरा कोई कभी मेरा स्वामी नहीं हो सकता ।

म० । लेकिन अब तक तो स्वामी नहीं हुए । क्रोध मत करना, सखी ! मैं तुम को बहिन के समान प्यार करती हूं । इसी लिये कहती हूं ।

मृणालिनी ने गर्दन झुकाली । कुछ देर के बाद आंखों का आंसू पोंछ डाला । फिर बोली " मणिमालिनी ! इस विदेश में मेरा अपना कोई नहीं है । मुझ से अच्छी बात भी कहे, ऐसा कोई नहीं है । जो मुझे प्यार करता है, उस के साथ देखा देखी कभी होने की अब आशा भी नहीं है । केवल एक तुम्हीं मेरी सखी हो । यदि तुम मुझे प्यार न करोगी, तो मुझे और कौन प्यार करेगा ?

म० । मैं तुम्हे प्यार करती हूं और करूंगी । पर जब यह बात याद आती है, तब मन में विचारती हूं कि—

मृणालिनी फिर चुप होकर रोने लगी । और बोली "सखी ! तुम्हारे मुंह की यह कथा मुझ से नहीं सही जाती । यदि तुम मेरे सामने शपथ करो कि 'जो मैं तुम से कहूंगी, उस को इस संसार में किसी से न कहोगी,' तो मैं तुम से सब बातें खोल कर कह सकती हूं । उस के कहने ही से तुम मुझे प्यार करोगी ।"

म० । मैं शपथ करती हूं ।

मृ० । तुम्हारी चोटी में देवता का फूल है, उस को छूकर शपथ करो ।

मणिमालिनी ने वही किया ।

उस समय मृणालिनी ने जो बात मणिमालिनी के कान में कही, उस को फैला कर कहने का कोई प्रयोजन नहीं है । सुन कर

मणिमालिनी ने बड़ी प्रीति प्रगट की। गुप्त कथा समाप्त हुई।

मणिमालिनी ने कहा—"उस के बाद माधवाचार्य के साथ तुम किस तरह आई? यह बात तुम कह रही थी, सो कहो।

मृणालिनी ने कहा "मैं हेमचन्द्र की अंगूठी देख कर उन को देखने की आशा से बाग में गई। दूती ने कहा कि—राजपुत्र नौका पर हैं, नौका तीर पर लगी हुई है।, मैं ने बहुत दिनों से राजपुत्र को न देखा था। बड़ी घबड़ाई। इसी से कुछ न विचार सकी। तीर पर आकर मैं ने देखा कि सच ही एक नौका तीर पर लगी हुई है। उस के बाहर एक पुरुष खड़ा है। मैं नौका के पास गई। नौका पर जो खड़े थे, उन ने मेरा हाथ पकड़ कर नौका पर चढ़ा लिया। इसी बीच मल्लाहों ने नौका खोल दी। लेकिन मैं हाथ के छूते ही बूझ गई कि ये हेमचन्द्र नहीं हैं।"

म०। क्या उस समय तुम चिल्लाने लगी?

मृ०। मैं चिल्लाई नहीं। एक बार चिल्लाने की इच्छा हुई, पर चिल्ला न सकी।

म०। मैं होती तो जल में डूब जाती।

मृ०। हेमचन्द्र को बिना देखे मैं कैसे मरूंगी?

म०। उस के बाद क्या हुआ?

मृ०। पहले ही उस पुरुष ने मुझे "मा" कह कर पुकारा और कहा—मैं तुम को "मा" कह कर पुकारता हूं। मैं तुम्हारा पुत्र हूं। किसी बात का संदेह मत करना। मेरा नाम है "माधवाचार्य।"

मैं हेमचन्द्र का गुरु हूं। केवल मैं हेमचन्द्र ही का गुरु नहीं हूं, वरन भारतवर्ष के अनेक राजाओं से मेरा वही सम्बन्ध है। मैं इसी समय किसी देवकार्य में लगा हुआ हूं। उस में हेमचन्द्र मेरे पूरे सहायक हैं। तुम उन का पूरा विघ्न हो।

मैं बोली—"मैं विघ्न हूं?" माधवाचार्य ने कहा "तुम्हीं विघ्न हो! यवनों का जीतना और हिन्दू राज्य का फिर उद्धार करना सहज काम नहीं है। हेमचन्द्र को छोड़ कर दूसरे किसी से वह काम नहीं हो सकता। हेमचन्द्र का मन भी यदि दूसरी ओर लग जाय, तो उन से भी वह काम पूरा न होगा। जितने दिनों तक तुम से देखा देखी सुगमता से होती रहेगी, उतने दिनों तक हेमचन्द्र को तुम्हें छोड़ कर और कोई दूसरा व्रत नहीं रहेगा। तब यवनों को कौन मारेगा?।"— मैं ने कहा— "मैं समझती हूं कि मुझ को मारे बिना यवन नहीं मारे जायँगे। क्या आप के शिष्य ने आप के हाथ अंगूठी भेज कर मुझ को मार डालने की आज्ञा दे दी है?"

म०। तुम ने उस बुड्ढे से इतनी बातें कैसे कहीं?

मृ०। मुझे बड़ा क्रोध हुआ था। बुड्ढे की बातों से मेरी हड्डियां जल गई थीं। और विपत्काल में लज्जा कैसी? माधवाचार्य ने मुझे अपने मन में लड़ाक समझा। थोड़ा सा हंस कर कहा— "मैं तुम को इस तरह अपने कब्जे में करूंगा।" इस बात को हेमचन्द्र नहीं जानते हैं।

मैं ने मन ही मन कहा—"तब जिस के लिये मैं यह भार रखती हूं, उस के बिना कहे अपने प्राणों का त्याग न करूंगी।"

माधवाचार्य कहने लगे "तुम को प्राण त्याग न करना होगा। सिर्फ इस समय हेमचन्द्र का त्याग करना होगा। इस में उन का बड़ा मङ्गल होगा। जिस में वे राजेश्वर होकर तुम को महारानी बना सकें, वह क्या तुम्हारा कर्तव्य कार्य नहीं है? तुम्हारे प्रेम-मन्त्र से वे कायर हो गये हैं, उन का यह भाव दूर करना क्या उचित नहीं है?"

मैं ने कहा—"यदि मेरे साथ देखा देखी करना उन के लिये अनुचित है, तो वे कभी मेरे साथ फिर देखा देखी न करें।" माधवाचार्य ने कहा—"वह लड़का है, लड़के और बुड्ढे का विचार बराबर ही होता है। लेकिन यह बात नहीं है। हेमचन्द्र से अधिक हम लोगों की वह बुद्धि है, जो बहुत दूर की बातें सोचा करती है। इस में सन्देह मत करो। तुम्हारी राय हो वा न हो, जो मन में ठान लिया है उस को मैं, ज़रूर करूंगा। मैं तुम को दूसरे देश में ले जाऊंगा। गौड़ देश में एक सीधे साधे स्वभाववाले ब्राह्मण के घर तुम को रख कर चला आऊंगा। वे अपनी लड़की के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे। एक बरस के बाद तुम को तुम्हारे पिता के पास पहुंचा दूंगा। और उस समय हेमचन्द्र जिस अवस्था में रहेगा, उसी अवस्था में तुम्हारे साथ उस का ब्याह करा दूंगा। यह बात सच कहता हूं।" इस बात से हो, वा लाचारी से हो, मैं चुप हो गई। उस के बाद यहां आई हूं। क्या वह नहीं है?

# तृतीय परिच्छेद

## भिखारिन

दोनों सखियां इसी प्रकार बातें कर रही थीं, इसी समय कोमल कंठ से निकला हुआ मधुर गीत उन दोनों के कानों में जा पड़ा।

" मथुरावासिनी, मधुरहासिनी,
श्यामविलासिनी रे।"

मृणालिनी ने कहा—" यह कहां गा रही है ? "

मणिमालिनी ने कहा—" घर के बाहर गारही है ?

फिर वह गाने लगी—

" क्यों री नागरी घर को परिहरि
काहे विवासिनी रे।"

मृ०। सखी ! कौन गाती है ? जानती हो ?

म०। कोई भिखारिन होगी।

" वृन्दावन धन, गोपी मोहन,
काहे तू त्यागी रे।
सकल देश भर, सो श्याम सुन्दर,
फिरे तोहि लागी रे।

मृणालिनी ने बड़े वेग से कहा—" सखी ! सखी !! उस को घर के भीतर बुला लाओ।

मणिमालिनी गायिका को बुलाने गई। उस समय वह गाने लगी।

विकसित नलिने यमुना पुलिने,

बहुत पियासा रे।

चन्द्र शालिनी, यह मधुयामिनि,

मिटी न आशा रे।

सा॰ नि॰ सा॰ स॰ म रे—

इसी समय मणिमालिनी उस को पुकार कर घर के भीतर ले आई। वह भीतर आकर पहले ही की भांति गाने लगी।

सा॰ नि॰ सा॰ स॰ म रे

क्योंरी सुन्दरी,

कहां मिले देखा रे।

सुनि आओ चलि, बाजै मुरली,

बन बन एका रे।

मृणालिनी ने उस से कहा "तुम्हारा गला बड़ा मीठा है। तुम और गीत गाओ।" गायिका की उमर सोलह वर्ष की थी। वह नाटी और काली थी। वह स्वभाव ही से काली थी। इसी से उस के शरीर पर यदि भौंरा बैठ जाय, तो वह देख नहीं पड़ेगा। स्याही में जल मिला दिया हो वा जल में स्याही मिलायी गई हो, ऐसी वह काली नहीं है। जैसी काली अपने घर में रहने पर उसे सब लोग सांवली कहते हैं। दूसरे के घर यदि ऐसी हो वा वेश्या ऐसी हो तो, उसे काली कहते हैं, वैसी ही वह काली है। उस का रंग कैसा हू क्यों न हो, पर भिखारिन

रूपा नहीं है। उस का शरीर साफसुथरा, चिकना और चम-
ीला है। मुंह खिला हुआ है, दोनों आंखें बड़ी चंचल और
सी से भरी हैं, आंख की पुतलियां बड़ी काली हैं। एक पुतली
पास एक तिल है। दोनों ओठ छोटे और बड़े लाल हैं। उन के
ीतर बहुत निर्मल, साफ, चमकीली, सफेद कुंद की कलियों के
समान दांतों की दो पांतियां हैं। बाल बड़े पतले हैं, कंधे पर
टक रहे हैं। उन में जूही की माला गूंथी गई है। यौवन के आने
े शरीर की गढ़न सुन्दरी जान पड़ती है। जान पड़ता है कि
किसी कारीगर ने काले पत्थर में पुतली खोद रखी है। पहरावा
बहुत ही मामूली था, लेकिन साफ है। उस में धूलि वा कीचड़
नहीं लगा है। उस के शरीर गहनों से एकदम खाली नहीं हैं।
वरन कुछ गहने भिखारिन के योग्य हैं। हाथ में पीतल के कड़े,
गले में लकड़ी की माला, नाक पर एक टीका, और भौंहों के बीच
चन्दन एक बिंदुली। वह आज्ञा पा कर पहले ही की भांति गाने
लगी।—(गीत)

"मथुरावासिनि, मधुरहासिनि, स्यामविलासिनि, क्यों री
नागरि! घर को परिहरि, काहे बिवासिनी रे॥१॥

बृन्दावनधन, गोपीमोहन, क्यों तुम त्यागी रे।
सकल देश भर, सो स्यामसुन्दर फिरे तोहि लागी रे॥२॥
विकसित नलिने, यमुनापुलिने, बहुत पियासा रे।
चन्द्रमाशालिनी, यह मधुयामिनी, मिटी न आसा रे॥३॥
सो निसि सुमिरी, क्यों री सुंदरी, कहां मिले देखा रे।
सुनि आओ चलि बाजै मुरली बन बन एका रे॥४॥"

गीत समाप्त हुआ। मृणालिनी ने कहा—" तुम अच्छा गाती हो। सखी मणिमालिनी! इस को कुछ देना अच्छा है। इस को कुछ दो न? मणिमालिनी कुछ इनाम लाने गई। इसी बीच मृणालिनी ने बालिका को पास बुला कर पूछा "सुनो भिखारिन! तुम्हारा नाम क्या है?"

गि०। मेरा नाम गिरिजाया।

मृ०। तुम्हारा घर कहां है?

गि०। इसी गांव में रहती हूं।

मृ०। क्या तुम गीत गा कर दिन बिताती हो?

गि०। और कुछ तो जानती नहीं।

मृ०। तुम ने सब गीत कहां पाये?

गि०। जिस जगह जो पाती हूं, वही सीखती हूं।

मृ०। ये गीत तुम ने कहां सीखे?

गि०। एक बनिये ने मुझे सिखाया है।

मृ०। वह बनिया कहां रहता है?

गि०। इसी गांव में है।

मृणालिनी का मुंह आनन्द से खिल उठा। मानो प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के लगने से कमल खिल गया। उस ने कहा—" बनिया तो वाणिज्य करता है। वह किस चीज़ का वाणिज्य (तिज़ारत) करता है?

गि०। जो सब का व्यवसाय है, वही उस का भी व्यवसाय है।

मृ०। वह किस का व्यवसाय है?

गि० । बात का ——— ।

मृ० । यह तो नया व्यवसाय है। उस में हानि लाभ कैसे होता है ?

गि० । इस में लाभ का हिस्सा है " प्रेम करना "। हानि का हिसा है " झगड़ा करना "।

मृ० । तुम भी व्यवसायी हो। इस का महाजन कौन है ?

गि० । जो महाजन हो ।

मृ० । तुम इस के कौन हो ?

गि० । नगदा गाहक ।

मृ० । अच्छा ! अपना बोझा उतारो । इस में सामग्री क्या है ? देखूं।

गि० । यह सामग्री देखी नहीं जाती। सुनी जाती है।

मृ० । अच्छा ! सुनूं ।

गिरजाया गाने लगी ।

( दोहा )

यमुना के जल में मुझे, मिला अनूपम रत्न ।
कूद जाय जल में उसे, उठा लिया करि यत्न ॥१॥
अतिहि चाह से ताहि लै, अपने गल में डारि ।
पहिर लिया अति प्रेम से, अति प्रिय ताहि विचारि ॥ २ ॥
सोती थी जब नींद में, घर में आया चोर ।
उसी रतन को दुष्ट ने, लिया काट कर डोर ॥ ३ ॥

मृणालिनी की आंखों में आंसू भर आया। उस ने हँस कर गद्गद स्वर से कहा " यह किस चोर की बात है ?"

गे०। वह बनिया कहलाता है। चोरी ही का धन लेन व्यवसाय है।

मृ०। उस से कहना कि "चोरी के व्यापार से साधु भी नहीं बचता।"

गि०। मैं समझती हूं। व्यापारी का भी नहीं।

मृ०। क्यों नहीं? व्यापारी का क्यों?

गिरिजाया ने गाया— (दोहा)।

बार बार तट विजन में, फिरी जाय बहु देश।
कहँ वे मेरे सुघर प्रिय, कहं वह राज सुवेश॥ १
कमल जमाया हीय पै, कीनो यतन अनेक।
सो मेरा कहँ है कमल, कहँ मृणाल मम एक॥ २।

मृणालिनी ने प्रेम भरे कोमल स्वर से कहा "मृणाल मैं पता बता सकती हूं। उस को याद रख सकती हो

गि०। याद रख सकती हूं, कहाँ है, कहो।

मृणालिनी ने कहा— (रोला)

निठुर विधाता ने मृणाल को कांटों से छिदवाया है।
उसे हृदय में पीड़ित कर के, जल के बीच डुबाया है॥
उस पर देखा राजहंस को, जो नयनों का प्यारा था।
उसे फंसाया बड़े यत्न से, पद में बेड़ी डारा था॥ १
राजहंस अब बोलो तुम तो, इसे छोड़ कहं जाओगे
मेरा हृदयकमल है आसन, इस पर तुम सुख पाओगे
हृदयकमल के ऊपर आकर, राजहंस जब बैठ गये
तब मृणालिनी कांपी जल में, सब कांटे भी कांप गये

उसी समय आकाशपटल में, मेघझुंड भी फैल गये ।
फिर तो राजहंस भी उड़ कर, मानस सर के गैल गये ॥
उस झोंके से झोंका खा कर, हृदय कमल भी टूट गया ।
मृणालिनी भी डूबी जल में, तुरत प्राण भी छूट गया ॥३॥

क्यों गिरिजाया ! गीत सीख सकती हो ?

गि० । सीख तो सकती हूं। आंखों का आंसू पोछूंगी वा सीखूंगी ?

मृ० । नहीं । इस व्यवसाय में मेरा लाभ तो यही है । मृणालिनी गिरिजाया को यही कविता याद करा रही थी, इसी समय मणिमालिनी के पैरों की आहट सुन पड़ी । मणिमालिनी उस की प्यारी सखी थी, उस की सभी बातें जानती थी, तो भी मणिमालिनी पिता की प्रतिज्ञा के न भङ्ग होने में सहायता करेगी, ऐसा उस पर विश्वास नहीं था। इसी लिये उस ने ये सब बातें सखी से छिपाने के लिये गिरिजाया से कही " आज और काम नहीं है। बनिये से जा कर मिलना, तुम अपना और बोझा लाना। यदि कोई चीज़ खरीदनी होगी, तो उसे हम खरीदेंगी !

गिरिजाया बिदा हुई। मृणालिनी ने जो उस भिखारिन को इनाम देने का विचार किया था उसे वह भूल गई थी । जब गिरिजाया कुछ दूर गई, तब मणिमालिनी ने एक छीमी केला, एक पुराना कपड़ा, और कुछ कौड़ियां लाकर गिरिजाया को सब चीजें दीं। और मृणालिनी भी एक पुराना कपड़ा देने के लिये गई। देने के समय उस भिखारिन के कानों में कहा "मैं धीरज नहीं रख सकती, कल तक मैं राह नहीं देख सकती। तुम आज रात को

एक पहर बीतने पर आकर इस घर की उत्तर ओर दीवार के पास खड़ा कराना, वहीं मुझ से देखा देखी होगी। यदि तुम्हारे बनिया आवें तो साथ में लेआना।"

गिरिजाया ने कहा "मैं जानती हूं कि मैं ज़रूर आऊंगी। मृणालिनी मणिमालिनी के पास लौट आई। मणिमालिनी ने कहा "सखी! भिखारिन के कानों में तुम ने क्या कहा है?॥"

मृणालिनी ने कहा "क्या कहूंगी, सखी!"

( गज़ल )

मन की कथा सखी री, मन की कथा सखी री।
किस से कहूं सखी री, किस से कहूं सखी री॥
फिरे न वे सखी री, आये न क्यों सखी री।
नहीं तो क्यों कहूंगी, किस से कथा सखी री॥

मणिमालिनी ने हंस कर कहा—"क्या हुआ सखी?"
मृणालिनी ने कहा—"तुम्हारी ही सखी!"

—o—

## चतुर्थ परिच्छेद

### दूत

लक्षणावती नगरी की एक महल्ले में "सर्वधन" नामक बनिये के घर में हेमचन्द्र रहते थे। बनिये के दरवाजे पर एक सुन्दर अशोक का पेड़ था। दिन थोड़ा सा बाकी था। उसी समय उसी पेड़ की छाया में बैठ कर एक फूली हुई अशोक की डाल को छुरी

से विना प्रयोजन ही टूक टूक कर रहे थे। और वार वार रास्ते की ओर देख रहे थे। जान पड़ता था कि वे किसी की राह देख रहे थे। जिस की राह देख रहे थे, वह नहीं आया। नौकर दिग्विजय सिंह आया। हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा "दिग्वि- जय! आज भिखारिन अब तक नहीं आई। मैं बहुत घबड़ा गया हूँ। तुम एक वार उस की खोज कर आओ।"

"जो आज्ञा" कह कर दिग्विजय गिरिजाया को ढूंढ़ने चला। नगरी की एक सड़क पर उस ने गिरिजाया को देखा।

गिरजाया ने कहा—"क्या हो! दिल्बिजय?" दिग्विजय ने क्रोध कर के कहा—"मेरा नाम दिग्विजय है।"

गि०। अच्छा दिग्विजय! आज किस दिशा को जीतने चले हो?

दि०। तुम्हारी दिशा को।

गि०। क्या मैं एक दिशा हूं? तुम्हें दिशा विदिशा का ज्ञान नहीं है।

दि०। कैसे बैठा रहूं। तुम अंधेरे नें रहती हो। इसी समय चलो। स्वामी तुम को बुलाते हैं।

गि०। क्यों?

दि०। जान पड़ता है कि तुम्हारे साथ मेरा व्याह कर देंगे।

गि०। क्यों तुम्हारे मुंह में आग देने के लिये और कोई आदमी नहीं मिला?

दि० । नहीं, वह काम तुम्हीं को करना पड़ेगा । अभी चलो ।

गि० । " दूसरे ही के लिये मैं मरी । तो चलो । " यह कह कर गिरजाया दिग्विजय के संग चली । दिग्विजय अशोक के नीचे बैठे हुए हेमचन्द्र को दिखला कर कहीं दूसरी जगह चला गया । हेमचन्द्र उदासीन हो कर धीरे धीरे गा रहे थे—

विकसित नलिने यमुनापुलिने, बहुत पियासा रे ।

गिरजाया ने पीछे से गाया—

'चन्द्रमाशालिनी, यह मधुयामिनी, मिटी न आशा रे' ।

गिरजाया को देख कर हेमचन्द्र का मुंह खिल गया । उन ने कहा—" क्यों गिरिजाया ! क्या आशा मिट गई ? "

गि० । किस की आशा ? " आप की या मेरी ? "

हे० । मेरी आशा । उस के मिटते ही तुम्हारी भी मिट जायगी ।

गि० । आप की आशा कैसे मिटेगी ? लोग कहते हैं कि—"राजा-रजवाड़ों की आशा किसी से नहीं मिटती । "

हे० । मेरी आशा बहुत छोटी है ।

गि० । यदि कभी मृणालिनी से मुलाकात होगी तो उस से यह बात कहूंगी ।

हेमचन्द्र दुखी हो गये । फिर बोले " तो क्या आज भी मृणालिनी का पता नहीं लगा ? आज तुम किस महल्ले में गीत गाने गई थी ?

गि० । कई महल्लों में गई थी । उस का हिसाब रोज रोज क्या बताऊं ? कोई दूसरी बात कहिये ।

हेमचन्द्र ने ऊंची सांस लेकर कहा— जानता हूं कि विधाता विमुख है। अच्छा, फिर कल्ह पता लगाने के लिये जाना।

तब गिरिजाया प्रणाम करके बनावटी विदाई का उद्योग करने लगी। जाने के समय हेमचन्द्र ने उस से कहा—"गिरिजाया! तुम हंसती न थी, पर तुम्हारी आंखें हसती थीं। क्या आज तुम्हारा गाना सुन कर किसी ने कुछ कहा है?

गि०। कथा क्या कहूं। एक लड़की खदेड़ कर मारने दौड़ी थी। और उस ने कहा था—"मथुराबासिनी के लिये तो श्याम-सुन्दर के सिर में पीड़ा उत्पन्न हुई थी।"

हेमचन्द्र ऊंची सांस ले कर धीरे धीरे आप ही आप कहने लगे—"इतना परिश्रम करने पर भी यदि मैं पता नहीं पाता, तो अब आशा करना वृथा है। व्यर्थ समय बिता कर अपना काम क्यों बिगाड़ूं?" गिरिजाया कल तुम्हारे नगर से विदा होऊंगा।

"अच्छा!" कह कर गिरिजाया धीरे धीरे गाने लगी—

"सुनि आओ चलि बाजै मुरली बन बन एका रे।"

हेमचन्द्र ने कहा—"यह गान इतना ही गाओ। फिर दूसरा गीत गाओ।"

गिरिजाया ने गाया— (दोहा)

सखी भवन तरु डार पै, फूला था जो फूल।
ताको क्योंरे पवन तू, उड़ा दिया करि तूल॥

हेमचन्द्र ने कहा—"जो फूल हवा में उड़ जाता है, उस के लिये दुःख क्या है? अच्छा गीत गाओ।"

गिरिजाया ने गाया—

निठुर विधाता ने मृणाल को, कांटों से छिदवाया है।
उसे हृदय में पीड़ित कर के, जल के बीच डुबाया है॥

हे०। क्या, क्या? मृणाल क्या?

गि०। निठुर विधाता ने मृणाल को कांटों से छिदवाया है।
उसे हृदय में पीड़ित कर के, जल के बीच डुबाया है॥
उस पर देखा राजहंस को, जो नयनों का प्यारा था।
उसे फँसाया बड़े यत्न से, पद में बेड़ी डारा था॥

नहीं, अब दूसरा गीत गाती हूं।

हे०। नहीं, नहीं, नहीं, नहीं, यही गीत गाओ, यही गीत गाओ। तुम राक्षसी हो।

गि०। राजहंस अब बोलो तुम तो, इसे छोड़ कहं जाओगे।
मेरा हृदय कमल है आसन, इस पर तुम सुख पाओगे॥
हृदय कमल के ऊपर आकर, राजहंस जब बैठ गये।
तब मृणालिनी कांपी जल में, सब कांटे भी कांप गये॥

हे०। गिरिजाया! गिरि—यह गीत तुम को किस ने सिखाया है?

गि०। (हंस कर)

उसी समय आकाश पटल में मेघ झुंड भी फैल गये।
फिर तो राजहंस भी उड़ कर मानस सर के गैल गये॥
उस झोंके से झोंका खाकर हृदय कमल भी टूट गया।
मृणालिनी भी डूबी जल में, तुरत प्राण भी छूट गया॥

हेमचन्द्र ने आंखों में आंसू भर कर गद्गद स्वर से गिरिजाया से कहा—" यह मेरी ही मृणालिनी है। तुम ने उस को कहां देखा है ?"

गि०। मैं ने देखा है—सरोवर में हवा के झोंके से मृणाल के ऊपर मृणालिनी कांप रही थी।

हे०। इस समय रूपक बंद करो, मेरी बात का जवाब दो। मृणालिनी कहां है ?

गि०। इसी नगर में।

हेमचन्द्र ने कुछ क्रोध कर के कहा—सो तो मैं बहुत दिनों से जानता हूं। इस नगर में किस जगह ?

गि०। हृषीकेश शर्मा के घर में।

हे०। क्यों पापिनी ! यह बात तो मैं ने ही तुम से कही थी। इतने दिनों तक तो तुम उस का पता न लगा सकी। अब तुम ने क्या पता लगाया है ?

गि०। पता लगाया है।

हेमचन्द्र ने दो बूंद—केवल दोही बूंद आंसू गिराये। फिर कहा " वह यहां से कितनी दूर है ?"

गि०। बहुत दूर।

हे०। यहां से किस तरफ़ जाना होगा ?

गि०। यहां से दक्खिन, वहां से पूरब, वहां से उत्तर, फिर वहां से पच्छिम।

हेमचन्द्र ने मुक्का बांध कर कहा—"इस समय तमाशा मत करो। नहीं तो सिर फोड़ डालूंगा।"

गि०। क्षमा कीजिये, क्या रास्ता बता देने से आप पहचान लेंगे? यदि नहीं पहचान सकेंगे, तो पूछने से क्या प्रयोजन? आज्ञा दीजियेगा, तो मैं अपने संग लेकर चलूंगी।

बादल से बाहर निकले हुए सूर्य के समान हेमचन्द्र का मुंह चमकने लगा। उन ने कहा—तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हों। मृणालिनी ने क्या कहा?

गि०। उस ने तो कहा था—"अथाह जल में डूब कर मृणालिनी मर गई।"

हे०। मृणालिनी कैसी है?

गि०। मैं ने देखा है। शरीर में कोई पीड़ा नहीं है।

हे०। सुख में है कि दुःख में? क्या तुम ने पूछा था?

गि०। शरीर पर गहने हैं। पहरने के लिये अच्छे कपड़े हैं। और वह हृषीकेश ब्राह्मण के कन्या की सखी बनी है।

हे०। तुम नरक में पड़ो। तुम ने मन की बात कुछ जानी है?

गि०। वर्षाकाल के कमल के समान उस का मुंह सदा जल में डूबा रहता है।

हे०। दूसरे के घर कैसे रहती है?

गि०। इसी अशोक के गुच्छे के समान अपने बड़प्पन से आप ही झुकी रहती है।

हे०। गिरिजाया! तुम लड़की हो, पर तुम्हारी जैसी और कहीं नहीं देख पड़ी।

गि० । सिर फोड़ने के लायक आदमी मेरे समान और न देख पड़ा होगा ।

हे० । वह अपराध मन में मत रखो । मृणालिनी ने और क्या कहा है ?

गि० । जिस दिन जानकी—

हे० । और ?

गि० । जिस दिन जानकी ने रामचन्द्र को देखा– हेमचन्द्र ने गिरजाया की चोटी पकड़ कर खींची । उस समय उस ने कहा– " छोड़ो ! कहती हूं । कहती हूं । "

" कहो " कह कर हेमचन्द्र ने चोटी छोड़ दी । तब गिरिजाया ने मृणालिनी की सब बातें समूची सुनाईं । अन्त में कहा– ' महाशय ! यदि आप मृणालिनी को देखना चाहें, तो मेरे साथ एक पहर रात बीत जाने पर चलें ।

गिरिजाया की बात पूरी हो गई । हेमचन्द्र चुपचाप अशोक के नीचे टहलने लगे । बहुत देर के बाद कुछ न कह कर घर के भीतर चले गये । फिर बाहर आकर, गिरिजाया के हाथ में एक पत्र देकर बोले " मृणालिनी को देखने का इस समय मेरा अधिकार नहीं है । तुम रात को उस के कथनानुसार उस से भेंट करना और उस को यह पत्र देना । और कहना "यदि देवता प्रसन्न होंगे, तो एक बरस के भीतर ही भेंट होगी । मृणालिनी क्या कहती है । सो आज ही रात को मुझ से कह जाना ।"

गिरिजाया विदा हुई। हेमचन्द्र बहुत देर तक चिन्तित हो कर अशोक के नीचे घास पर लेट गये। बांह पर सिर रख कर पृथिवी की ओर मुंह लगा कर सो गये। कुछ देर के बाद अचानक ही उन की पीठ पर एक कठिन हाथ आ लगा। सिर घुमा कर उन ने देखा कि सामने माधवाचार्य हैं।

माधवाचार्य ने कहा—"बेटा खड़े हो जाओ। मैं तुम पर प्रसन्न हूं, अप्रसन्न भी हूं। तुम हम को देख कर क्यों आश्चर्य में पड़ गये हो" ?

हेमचन्द्र ने कहा—"आप यहां कब से आये हैं ?" माधवाचार्य इस बात का कुछ उत्तर न दे कर कहने लगे, "तुम अब तक नदिया न जा कर रास्ते में विलम्ब कर रहे हो। इस से हम तुम पर अप्रसन्न हैं। और तुम ने मृणालिनी का पता पा कर भी अपनी सत्यता का पालन करने के लिये उस से भेंट होने के अच्छे अवसर को छोड़ दिया। इस लिये मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम्हारा कुछ निरादर न करूंगा, लेकिन यहां अब तुम को विलम्ब न करना होगा। मृणालिनी के जवाब की राह न देखनी होगी। वेगवाले हृदय का विश्वास नहीं करना चाहिये। मैं आज नदिया जाऊंगा, तुम को मेरे साथ चलना होगा, नौका तैयार है। अस्त्र शस्त्र आदि घर से ले आओ। मेरे साथ चलो।"

हेमचन्द्र ने ऊंची सांस लेकर कहा—"हानि नहीं है। मैं ने आशा, भरोसा सब कुछ छोड़ दिया है। चलिये। लेकिन आप केवल कामचारी ही नहीं हैं, वरन अन्तर्यामी भी हैं।"

यह कह कर हेमचन्द्र फिर घर में जाकर बनिये से बिदा हुए। और अपनी चीज़ें एक सेवक के सिर पर रख कर आचार्य के पीछे चले।

## पंचम परिच्छेद

### लुब्ध

मृणालिनी या गिरिजाया इन दोनों में से किसी को अपनी प्रतिज्ञा भूली न थी। दोनों ही एक पहर रात बीतने पर हृषीकेश के गृह के बगल में मिलीं। मृणालिनी गिरिजाया को देखतेही बोली "क्यों हेमचन्द्र कहां हैं?" गिरिजाया ने कहा–" वे नहीं आये।"

"नहीं आये?" यह बात मृणालिनी के भीतरी हृदय से प्रतिध्वनित हुई। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं। इस के बाद मृणालिनी ने पूछा "क्यों नहीं आये?"

गि०। "सो मैं नहीं जानती। यह पत्र दिया है।" यह कह कर गिरिजाया ने उस के हाथ में पत्र दिया। मृणालिनी ने कहा "इसे कैसे पढ़ूं? घर जाकर दीप जला कर पढ़ूंगी; तो मणिमालिनी जग जायगी।"

गिरिजाया ने कहा "घबड़ाओ मत मैं दीप, तेल, चकमकी, सोला सभी चीजें लेती आई हूं। अभी उजाला करती हूं।"

गिरिजायाने बहुत जल्दी आग पैदा करके दीप जला दिया आग पैदा करने का शब्द, एक घरवाले के कान में पड़ा। उस ने दीप का उजाला भी देखा। जब गिरिजाया ने दीप जला दिया तब मृणालिनी ने नीचे लिखे हुए पत्र को मन ही मन पढ़ लिया।

"मृणालिनी? क्या कह कर मैं तुम्हारे पास पत्र लिखूं? तुम मेरे लिये देश छोड़ कर दूसरे के घर दुःख से दिन काटती हो। यदि ईश्वर की कृपा से तुम्हारा पता पाया तो भी तुम से भेंट न की। इस से तुम मुझे प्रेमविहीन समझोगी—नहीं, दूसरा कोई होता तो ऐसी बात सोचता—तुम नहीं सोचोगी मैं एक विशेष व्रत में लगा हूं। यदि मैं उसका निरादर करूं, तो कुलाङ्गार बनूं। उस को पूरा करने के लिये गुरु से मैं ने प्रतिज्ञा की है कि—"तुम्हारे साथ यहां भेंट नहीं करूंगा"। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि "तुम्हारे लिये मैं प्रतिज्ञा भंग करूं" तुम्हारी भी ऐसी इच्छा नहीं है। इस लिये किसी प्रकार एक बरस बिता दो। बाद ईश्वर प्रसन्न होंगे, तो तुरत ही तुम को रानी बनाकर अपना सुख पूरा करूंगा। इसी चतुर थोड़ी अवस्था वाली बालिका के हाथ उत्तर भेजना।"

मृणालिनी ने पत्र पढ़ कर गिरिजाया से कहा—"गिरिजाया! मेरे पास कागज़ वा कलम कुछ भी नहीं है। उत्तर कैसे लिखूं। तुम मुंह से मेरी ओर से जवाब ले जाओ। तुम विश्वास के योग्य हो। तुम को इनाम में अपने शरीर के गहने उतार कर देती हूं।

गिरिजाया ने कहा "उत्तर किस के पास ले जाऊंगी? उन्ने पत्र देकर बिदा करने के समय मुझ से कहा था कि "आज ही

रात को मेरे पास उत्तर ला देना" मैं ने भी "हां" कह दिया था। आने के समय मैं ने सोचा कि तुम्हारे पास लिखने का तो कुछ भी सामान नहीं है। इसीलिये वह सब उपाय कर के उन को संग लिवाने गई थी। पर उन से भेंट न हुई। सुना है कि वे सांझ ही को नदिया चले गये।

मृ०। नदिया ?

गि०। नदिया।

मृ०। सांझ ही को ?

गि०। सांझ ही को. सुना है कि उन के गुरु आकर उन को लेकर चले गये हैं।

मृ०। माधवाचार्य ! माधवाचार्य ही मेरे काल हैं। फिर कुछ देर चिन्ता कर के मृणालिनी बोली—" गिरिजाया ! तुम विदा दो। अब अधिक मैं घर के बाहर नहीं रह सकती।

गिरिजाया ने कहा " मैं चलती हूँ " यह कह कर गिरिजाया विदा हुई। उस की मीठी मीठी गीत सुनती सुनती, मृणालिनी फिर घर में आई।

मृणालिनी ज्यों ही घर में घुस कर दरवाजा बंद करने का उद्योग करने लगी त्यों ही पीछे से किसी ने आ कर उस का हाथ पकड़ लिया। मृणालिनी अचम्भे में पड़ गई। हाथ पकड़नेवाले ने कहा—" पतिव्रते ! अब की वार जाल में पड़ गई। किस पर तुम्हारी कृपा है ? क्या मैं सुन नहीं सकता ?

उस समय मृणालिनी क्रोध से कांप कर बोली " व्योमकेश ! ब्राह्मणकुलकलङ्क ! हाथ छोड़। "

व्योमकेश हृषीकेश का पुत्र था। वह बहुत बड़ा मूर्ख और बदचलन था। वह मृणालिनी पर मोहित हो गया था। अपने मन की इच्छा पूरी करने का दूसरा उपाय न पा कर बलात्कार करने का उस ने विचार किया था। पर मृणालिनी मणिमालिनी का संग कभी न छोड़ती थी। इस लिये व्योमकेश को आज तक कोई मौका नहीं मिला।

मृणालिनी के डपटने के बाद व्योमकेश ने कहा—" क्यों हाथ छोड़ूंगा ? हाथ छोड़ कर क्या होगा ? छोड़ाछोड़ी का काम क्या है ? अपने मन का कुछ दुःख कहता हूं, क्या मैं मनुष्य नहीं हूं ? यदि एक का मन प्रसन्न करती हो, तो दूसरे का नहीं कर सकती ?

मृ०। कुलाङ्गार ! यदि नहीं छोड़ेगा तो अभी सब को पुकार कर जगा दूंगी।

व्यो०। जगाओ। मैं कहूंगा कि यह अपने प्रिय के पास गई थी इसी लिये पकड़ लिया है।

मृ०। तब तुम नरक में पड़ो। यह कह कर मृणालिनी ने बल से अपना हाथ छोड़ाना चाहा, पर यह उस से न हो सका। व्योमकेश ने कहा " घबड़ाओ मत। अपना मनोरथ पूरा होते ही तुम को छोड़ दूंगा। इस समय तुम्हारी सखी बहीन मणिमालिनी कहां है ?

मृ०। मैं ही तुम्हारी बहिन हूं।

व्यो०। तुम मेरी साली की बहिन हो, मेरी ब्राह्मणी के भाई की बहिन हो, मेरी तो प्राणाधिका राधिका और सर्वार्थसाधिका हो।

यह कह कर व्योमकेश मृणालिनी को हाथ से खींच कर ले चला। जिस समय माधवाचार्य ने मृणालिनी को चुराया था उस समय भी उस ने चिल्लाना पसन्द नहीं किया, जिसे स्वभाव से ही समय पड़ने पर स्त्रियां किया करती हैं। इस समय भी उस ने वह चिल्लाना पसंद न किया। किन्तु मृणालिनी और न सह सकी, अपने हृदय में ब्राह्मणों को लाखों प्रणाम कर के व्योमकेश को जोर से लात मारी। व्योमकेश लात खा कर बोला वाह! वाह! मैं धन्य हुआ, इन चरणों के छू जाने से मोक्षपद पाऊंगा। सुन्दरी! तुम मेरी द्रौपदी हो, और मैं तुम्हारा जयद्रथ हूं।

पीछे से किसी ने कहा—" मैं तुम्हारा अर्जुन हूं।

अचानक ही व्योमकेश, कातर स्वर कर के बड़े जोर से चिल्ला उठा। " राक्षसी! तेरे दांतों में क्या विष है?" यह कर मृणालिनी का हाथ छोड़ कर अपनी पीठ अपने हाथों से सुहराने लगा। हाथों से छूने पर मालूम पड़ा कि पीठ से बहुत खून टपक रहा है।

मृणालिनी हाथ छूट जाने पर भी न भगी। वह भी पहले व्योमकेश ही के समान अचम्भे में आ गई कि, " मैं ने तो व्योमकेश को दांतों से नहीं काटा। भालू के समान काम करना तो मुझे उचित नहीं है।" लेकिन उसी समय तारों के प्रकाश में एक नाटी सी लड़की की मूर्ति सामने से जाती हुई देख पड़ी। गिरिजाया उस का कपड़ा खींच कर धीरे से " भाग आओ " कह कर आप भी भग गई।

भागने का स्वभाव भी मृणालिनी का न था। वह न भगी। " व्योमकेश अपने आंगन में खड़ा हो कर चिल्ला रहा है और रो

रहा है यह देख कर वह मदमत्त हाथी के समान अपने शयन-गृह में चली। किन्तु उस विकटरात में व्योमकेश की चिल्लाहट से सभी घरवाले जाग गये। सामने हृषीकेश आया। उस ने पुत्र को घबड़ाया हुआ देख कर पूछा—"क्या हुआ है? क्यों सांढ़ के समान चिल्ला रहे हो?"

व्योमकेश ने कहा—"मृणालिनी अपने प्रिय से मिलने गई थी। मैं ने उस को पकड़ा है, इसी लिये उस ने मेरी पीठ दांतों से काट ली है।

हृषीकेश लड़के की बदचलनी कुछ भी नहीं जानता था, और मृणालिनी को आंगन से जाती हुई देख कर उस ने लड़के की बात पर विश्वास कर लिया। उस समय उस ने मृणालिनी से कुछ न कहा। वह चुपचाप उस गजगामिनी के पीछे उस के शयनगृह में पहुंच गया।

## षष्ठ परिच्छेद

### हृषीकेश

मृणालिनी के साथ साथ उस के शयनगृह में आ कर हृषीकेश ने कहा "मृणालिनी! तुम्हारी यह चाल कैसी है?"

मृ०। मेरी कैसी चाल है?

हृ० । तुम किस की लड़की हो, और तुम्हारी चाल कैसी है ? कुछ भी मैं नहीं जानता । गुरु की आज्ञा से मैं ने तुम को घर में जगह दी है । तुम मेरी लड़की मणिमालिनी के साथ एक बिछौने पर सोती हो, तुम्हारी चाल ऐसी नीच क्यों है ?

मृ० । जो मेरी चाल को बुरी बताता है वह झूठा है ।

क्रोध से हृषीकेश के ओठ कांपने लगे । वह बोला " क्यों पापिनी ! मेरे अन्न से पेट पालेगी और मुझे ही गाली देगी ? तू मेरे घर से दूर हो । माधवाचार्य क्रोध करेंगे, यह समझ कर मैं अपने घर में काल सांप को नहीं रख सकता ।

मृ० । बहुत अच्छा ! कल भोर को तुम मुझे न देख सकोगे ।

हृषीकेश समझता था कि " जिस समय मृणालिनी मेरे घर से निकलेगी उसी समय मृणालिनी आश्रय-हीन हो जायगी, कहीं रहने को जगह नहीं मिलेगी । उस समय ऐसा उत्तर वह न कर ४सकेगी । किन्तु " मृणालिनी आश्रय-हीन होने के डर से कुछ भी नहीं डरी है " यह देख कर उस ने मन में सोचा कि " दूसरे घर में स्थान पाने की आशा से ही ऐसा उत्तर कर रही है ।" इस कारण हृषीकेश का क्रोध और भी बढ़ गया । उस ने बड़े जोर से कहा " कल्ह भोर ! आज ही दूर हो " !

मृ० । " जो आज्ञा " मैं सखी मणिमालिनी से बिदा लेकर आज ही दूर होती हूं । यह कह कर मृणालिनी उठ खड़ी हुई ।"

हृषीकेश ने कहा—" मणिमालिनी के साथ कुलटा क्या बात करेगी ? "

अब मृणालिनी की आखों में आसू भर आया। वह बोली, " वही होगा, मैं कुछ ले कर नहीं आई हूं और न कुछ ले कर जाऊंगी। एक धोती पहर कर जा रही हूं। तुम को प्रणाम है।

यह कह कर दूसरी बात के बिना बोले ही मृणालिनी शयन-गृह से बाहर निकल चली।

जिस प्रकार दूसरे दूसरे घरों के रहनेवाले व्योमकेश की चिल्लाहट सुन बिछौने छोड़ उठ खड़े हुए थे, उसी प्रकार मणिमालिनी भी उठी थी। " मृणालिनी के साथ साथ उस के पिता शयनगृह तक गये थे " यह बात देख कर मणिमालिनी इसी समय अपने भाई से बातचीत कर रही थी। और भाई की बदचलनी जान कर उस को दपट रही थी। जब वह डांट दपट खतम कर के लौट रही थी तभी उस ने आंगन में तेज़ी के साथ जाती हुई मृणालिनी को देखा। उस ने पूछा—" सखी ! ऐसी तेज़ी से इस रात को कहां जा रही हो ? "

मृणालिनी ने कहा—" सखी ! मणिमालिनी ! बहुत दिनों तक जीती रही। मेरे साथ बातचीत मत करो। तुम्हारे पिता ने मना किया है।

मणि०। यह क्यों मृणालिनी ? तुम रोती क्यों हो ? हाय सर्वनाश हुआ। न मालूम पिता ने क्या कह दिया है ? सखी ! फिरो. क्रोध मत करो।

मणिमालिनी मृणालिनी को न लौटा सकी। पर्वत की चोटी से लुढ़कनेवाली पत्थर के चट्टान के समान अभिमानिनी साध्वी

मृणालिनी चली गई। तब मणिमालिनी बहुत घबड़ा कर पिता के पास गई, मृणालिनी भी घर से बाहर हुई।

बाहर आकर उस ने देखा, पहले के संकेत स्थान में गिरिजाया खड़ी है। मृणालिनी ने उस को देख कर कहा—"तुम अब तक क्यों खड़ी हो ?

गि०। मैं तुम को भागने के लिये कह आई थी। तुम आओगी या नहीं, यही देख कर चली जाने के लिये खड़ी हूं।

मृ०। क्या तुम ने ब्राह्मण को दांतों से काटा था ?

गि०। तो इस में हानि क्या है ? वह ब्राह्मण गुरु तो नहीं है।

मृ०। लेकिन, तुम जो गाती गाती चली गई थी सो तो मैं ने सुनी थी।

गि०। उस के बाद तुम लोगों की बातचीत सुन, लौट कर देखने के लिये चली आई थी। मन में देखने की इच्छा हुई। वह मुंहझौंसा, एक दिन मुझ को "काला चींटी" कह ठट्ठा करता था। उस दिन का बदला हंसना बाकी था। अच्छा मौका पा कर उस ब्राह्मण का कर्ज वसूल कर दिया। इस समय तुम कहां जाओगी ?

मृ०। तुम को घर दरवाजा है ?

गि०। है, पर पत्ते की झोपड़ी।

मृ०। वहां और कौन है ?

गि०। सिर्फ एक बुढ़िया है। उस को "आजी" कहती हूं।

मृ० । चलो, तुम्हारे घर चलूंगी ।

गि० । चलो, मैं भी यही सोचती थी ।

यह कर दोनों जनी चलीं । जाती जाती गिरिजाया बोली, लेकिन वह तो झोपड़ी है, वहां कितने दिनों तक रहोगी ।

मृ० । कल भोर को दूसरी जगह चली जाऊंगी ।

गि० । कहां ? मथुरा ?

मृ० । मथुरा में अब मेरी जगह नहीं है ।

गि० । तब कहां ?

मृ० । यमलोक ।

इस के वाद कुछ देर तक दोनों चुप रहीं । फिर मृणालिनी बोली क्या इस बात का तुम्हें विश्वास है ?

गि० । विश्वास क्यों न होगा ? किन्तु वह जगह तो हई है जब इच्छा हो तभी जा सकती हो । इस समय क्यों नहीं एक दूसरी जगह चली जाती ?

मृ० । कहां ?

गि० । नदिया ।

मृ० । गिरिजाया ! तुम भिखारिन के भेष में कोई मायाविनी हो । तुम से कोई बात नहीं छिपाऊंगी । तुम मेरी बड़ी हित चाहने वाली हो । " नदिया " जाऊंगी । मैं ने ठीक कर लिया है ।

गि० । अकेले जाओगी ?

मृ० । साथी कहां पाऊंगी ?

( गीत )

हाय बदरिया छाई। चली पपीही धाई।
कब कब तेरे साथ चलूंगी, जाई जाई जाई॥
बादल में बिजली चमके, मैं प्यार करूं अतिहीरी।
जो जावे सो जावे तेरी गिरिजाया तो जाई॥

मृ०। यह क्या भेद है? गिरिजाया?

गि०। मैं चलूंगी।

मृ०। सच सच ही?

गि०। सच सच ही चलूंगी?

मृ०। क्यों जाओगी?

गि०। मेरे लिये सब जगह बराबर है। राजधानी में भीख भी बहुत मिलती है।

## द्वितीय खण्ड

# प्रथम परिच्छेद

## गौड़ेश्वर

एक बड़े विशाल सभामण्डप में नवद्वीप को प्रकाशित करने- वाले, राजाधिराज गौड़ेश्वर सुशोभित हो रहे हैं। संगमर्मर के ऊँचे चबूतरे पर मणियों से जड़ा हुआ एक सिंहासन रखा है।

उस पर रत्नों से सुशोभित एक छाता लगा हुआ है। उस के नीचे एक बूढ़ा राजा बैठा हुआ है। उस सिंहासन के ऊपर एक सुफेद चांदनी ( चंदोआ ) तनी हुई है जिस में चारो ओर मोतियों की झालरें लगी हुई हैं। और उस में अनेक प्रकार के चित्र लिखे हुए हैं। एक तरफ दूसरे आसन पर बैठे हुए सभापण्डित को, होम की विभूति से सुशोभित सुन्दर ब्राह्मण मण्डली घेर कर बैठी हुई है। जिस आसन पर एक दिन "हलायुध" बैठे थे, उसी आसन पर आज एक लघुबुद्धि और ठकुरसुहाती कहनेवाला पुरुष बैठा है। दूसरी तरफ प्रधान दीवान धर्माधिकारी ( इन्साफ करनेवाले ) आदि प्रधान राजपुरुष गण बैठे हुए हैं। नायब दीवान, बड़े राजकुमार के दीवान, खेत नापनेवाले, ऊपर के काम करनेवाले, दण्ड देनेवाले, चोर पकड़नेवाले, तहसील करनेवाले, बगीचों के दारोगा, गृहनिरीक्षक, चौहद्द की रखवाली करनेवाले, वन की रखवाली करनेवाले, मुकद्दमा चलानेवाले आदि राजकर्मचारी गण भी बैठे हुए हैं। सभा का प्रधान प्रतिहारी ( चोपदार ) हथियार ले कर बड़ी चौकसी के साथ सभा की रखवाली कर रहा है। भाट, बंदी आदि स्तुति करनेवाले दोनों तरफ कतार लगा कर खड़े हुए हैं। सब लोगों से अलग एक कुशासन पर पण्डितवर माधवाचार्य बैठे हुए हैं।

राजसभा के नियमित सब काम समाप्त हुए। सभा विसर्जन करने की तैयारी हुई। उस समय माधवाचार्य ने महाराज को सम्बोधन कर के कहा—"महाराज! ब्राह्मण का अनुचित वचन क्षमा कीजियेगा। आप नीति-शास्त्र के बड़े भारी विद्वान हैं। इस

समय भूमण्डल पर जितने राजा हैं उन सबों में दूर की बात सोचनेवाले प्रजा का पालन करनेवाले, आप ही जन्म से राजा हैं। .ह बात आप से छिपी हुई नहीं है कि राजा का प्रधान कर्म शत्रु का नाश ही करना है।" आप ने प्रबल शत्रु के दबाने का क्या उपाय किया है?

राजा ने कहा "आप क्या आज्ञा देते हैं?" सब समाचार बूढ़े राजा को मालूम नहीं है।

माधवाचार्य के फिर बोलने की प्रतीक्षा न करके धर्माधिकारी पशुपति ने कहा "महाराज! माधवाचार्य श्रीमान् से पूछते हैं कि राज शत्रुओं के दबाने का क्या उपाय किया गया है? बंगेश्वर का कौन शत्रु आजतक नहीं दबाया गया? उस को इस समय आचार्य ने प्रगट नहीं किया। वे साफ साफ कहें।

माधवाचार्य ने थोड़ा हंस कर अब ऊंचे स्वर से कहा "महाराज! तुर्की लोगों ने सारे भारत को अपने हाथ में कर लिया है। अब वे लोग मगध को जीत कर गौड़ राज्य पर तुरत धावा करने का उद्योग कर रहे हैं।

यह बात अब राजा के कानों में पहुंची। राजा ने कहा "आप तुर्की लोगों की बात कहते हैं? क्या तुर्की लोग आ गये हैं!

माधवाचार्य ने कहा "ईश्वर रक्षा कर रहे हैं। अब तक भी वे लोग यहां नहीं आये हैं। लेकिन आने पर आप कैसे उन लोगों को हटावेंगे।

राजा ने कहा " मैं क्या करूंगा, मैं क्या करूंगा ? मेरा यह शरीर बूढ़ा हो गया। मेरा युद्ध करना असम्भव है। इस समय मेरी मौत तो हो ही जायगी। तुर्की लोग आते हैं तो आवें।

राजा की ऐसी बात समाप्त हुई। सभा के सब लोग चुप हो गये। केवल महासामन्त की म्यान में रहनेवाली तलवार ने झनझनाहट की। और सब सुननेवाले लोगों के मुंह पर कोई नया भाव न देख पड़ा। माधवाचार्य की आंखों से एक बूंद आंसू निकल पड़ा।

पहले सभापति दामोदर ने कहा—" आचार्य आप क्यों घबड़ा गये हैं ? महाराज ने जो कहा है वह शास्त्र के अनुकूल ही है। शास्त्रों में ऋषियों ने कहा है कि " तुर्कीलोग इस देश पर अधिकार करेंगे। यदि शास्त्र में है तो जरूर होगा। उसे कौन हटा सकता है ? तब लड़ाई करने के लिये प्रयोजन ही क्या है ? "

माधवाचार्य ने कहा—" ठीक ! सभापण्डित महाशय ! मैं एक बात पूछता हूं " आप ने यह बात किस शास्त्र में लिखी देखी है ?

दामोदर ने कहा " विष्णुपुराण में है। जैसे कि—

माध०। " जैसे कि " रहने दीजिये। विष्णुपुराण लाने की आज्ञा दीजिये। दिखलाइये, ऐसी बात कहां लिखी है ?

दामो०। क्या मुझे इतना भ्रम हो गया है ? अच्छा ? स्मरण कर के बताता हूं। देखिये मनु में यह बात है कि नहीं ?

माध० । गौड़ेश्वर के सभापण्डित मानवधर्म शास्त्र को भी भलीभांति नहीं जानते हैं ?

दामो० । कैसी ज्वाला है ! आप ने मुझे घबड़ा दिया । आप के सामने सरस्वती उदासीन हो जाती है । मैं कैसे जल गया आप के सामने ग्रन्थ का नाम भी याद नहीं पड़ता । पर श्लोक सुनिये ।

माध० । गौड़ेश्वर के सभापण्डित अनुष्टुप छन्द में एक श्लोक बना देंगे, यह कुछ अनहोनी बात नहीं है । लेकिन मैं गला फाड़ कर कहता हूं कि " तुर्क जाति के लोग गौड़ पर विजय पावेंगे " यह बात किसी शास्त्र के किसी प्रकर्ण में नहीं लिखी है ।

पशुपति ने कहा " क्या आप सब शास्त्र जानते हैं ?

माधवाचार्य ने कहा " यदि आप से हो सके तो मुझे " अशास्त्रज्ञ " सिद्ध कर दीजिये ।

सभापण्डित के एक साथी ने कहा " मैं सिद्ध करूंगा । अपनी प्रशंसा करना शास्त्रों में मना है । जो अपनी प्रशंसा करने में लगा रहता है यदि वह पण्डित है तो मूर्ख कौन है ? "

माधवाचार्य ने कहा " मूर्ख तीन हैं । जो अपनी रक्षा का उपाय नहीं करते, जो रक्षा का उपाय करने की राय नहीं देते, और जो अपनी न जानी हुई बात में राय देते हैं यही लोग मूर्ख हैं । आप तीनों प्रकार के मूर्ख हैं ।

सभापण्डित का साथी सिर झुका कर बैठ गया ।

पशुपति ने कहा " मुसलमानों के आने पर हमलोग युद्ध करेंगे ।

माधवाचार्य ने कहा " बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। आप का जैसा यश है वैसाही आप ने विचार भी प्रकट किया है। जगदीश्वर आप को सकुशल रक्खें। मैं केवल इतनाही पूछना चाहता हूं कि यदि युद्ध ही करने का विचार है तो उस का क्या उपाय हुआ है ?

पशुपति ने कहा " सलाह अकेले ही में कहना चाहिये। इस सभा में न कहना चाहिये। लेकिन जो घोड़े पैदल और नौका की सेना इकट्ठी की जा रही है वह कुछ दिनों के बाद इस नगरी को घूमने से ही जान सकेंगे।

मा०। कुछ को जानता भी हूं।

पशु०। तब यह प्रस्ताव क्यों करते हैं ?

मा०। प्रस्ताव का प्रयोजन यही है कि एक वीर पुरुष यहां आये हुए हैं। मगध के युवराज हेमचन्द्र की वीरता की प्रसिद्धि आप ने सुनी होगी ?

प०। बहुत सुनी है। यह भी सुनने में आया है कि वे श्रीमान् ही के शिष्य हैं। क्या आप बता सकते हैं कि ऐसे वीर पुरुष के बाहु से रक्षित मगध राज्य शत्रुओं के हाथ में कैसे चला गया ?।"

मा०। यवनों के उपद्रव के समय युवराज परदेश में थे केवल यही कारण है।

प०। क्या वे इस समय नवद्वीप में आये हुए हैं ?

मा०। हां, आये हैं राज्य ले लेने वाले यवन इसी देश में आ रहे हैं, यह बात सुन कर इसी देश में उनलोगों के साथ युद्ध करके

डाकुओं को दण्ड देंगे। गौड़ राज्य उन के साथ संधि कर के, ों मिल कर, यदि शत्रु के नाश करने की चेष्टा करेंगे, तो ों का मङ्गल है।

प०। राजा के प्रियपुरुष आज ही उन की सेवा के लिये नियुक्त ये जायंगे। उन के रहने के लिये उत्तम गृह दिया जायगा। ्धि करने की सलाह उचित समय स्थिर की जायगी।

इस के बाद राजा की आज्ञा से सभा का विसर्जन किया गया।

---

## द्वितीय परिच्छेद

### कुसुम निर्मिता

---

नगर के एक किनारे गंगा के तट पर एक ऊंची अटारी हेम- न्द्र के रहने के लिये राजपुरुषों ने ठहराई। हेमचन्द्र ने माधवा- ार्य की सलाह से उस रमणीय अटारी पर रहना निश्चय किया।

नवद्वीप में "जनार्दन" नामक एक वृद्ध ब्राह्मण निवास करते ।। वे वृद्ध होने और कानों से बहरे होने के कारण अस- ्थं और सहायहीन थे। उन की धर्मपत्नी भी वृद्धा और ाक्तिहीन थी। कुछ दिन हुए कि इन की झोपड़ी भी भयंकर आंधी के झोंके से टूट फूट गई। उसी दिन से ये दोनों स्थान के अभाव से इसी बड़े मकान के एक किनारे राजपुरुषों की आज्ञा लेकर रहा करते थे। "इस समय कोई राजपुत्र आकर वहां बास करेंगे"

यह सुन कर उस स्थान को छोड़ ये दूसरा स्थान ढूढ़ने जाने के लिये उद्योग कर रहे थे।

हेमचन्द्र यह सुन कर दुखी हुए। उन ने विचार किया कि इस बड़े मकान में हम दोनों के रहने योग्य स्थान हो सकते हैं। ब्राह्मण क्यों आश्रमहीन होंगे? हेमचन्द्र ने दिग्विजय को आज्ञा दी "ब्राह्मण को घर छोड़ने के लिये मना करो।" दास ने मुसका कर कहा "यह काम नौकर की मार्फत ठीक न होगा। ब्राह्मण ठाकुर मेरी बात नहीं सुनते।"

ब्राह्मण ने कई बातें न सुनीं, यह सच है। क्योंकि वे बहरे थे। हेमचन्द्र ने सोचा "ब्राह्मण अभिमान से नौकर की बात नहीं सुनते, इस कारण वे आप ही उन से कहने के लिये गये। हेमचन्द्र ने ब्राह्मण को प्रणाम किया।

जनार्दन ने आशीर्वाद देकर पूछा "तुम कौन हो?"

हे०। मैं आप का दास हूं।

ज०। क्या कहा? तुम्हारा नाम रामकृष्ण है?

हेमचन्द्र ने विचार किया कि "ब्राह्मण के कान बड़े जोरदार नहीं हैं।" इस लिये उन ने ऊंचे स्वर से कहा "मेरा नाम हेमचन्द्र है, मैं ब्राह्मण का दास हूं।"

ज०। ठीक ठीक। पहले मैं अच्छी तरह न सुन सका। तुम्हारा नाम हनुमान दास।

हेमचन्द्र ने सोचा " नाम की बात दूर करो। काम ही पूरा होना चाहिये।" उन ने कहा "नवद्वीप के राजा की यह अटारी है

न ने इस को रहने के लिये मुझे दिया है। मैं ने सुना है कि मेरे आने से आप यह स्थान छोड़ रहे हैं।"

ज०। नहीं, मैं अब तक भी गङ्गा स्नान करने नहीं गया। अब स्नान करने का उद्योग कर रहा हूं।

हे०। (ऊंचे स्वर से) स्नान अपने समय पर कीजियेगा। इस समय मैं यह प्रार्थना करने के लिये आया हूं कि आप घर छोड़ कर न जायं।

ज०। घर में भोजन नहीं करूंगा। तुम्हारे घर में क्या है? आज श्राद्ध है?

हे०। भला। भोजन चाहते हैं, उस का भी बन्दोबस्त करूंगा। इस समय ये जिस प्रकार इस घर में रहें वही उपाय करना चाहिये।

ज०। अच्छा अच्छा! ब्राह्मणभोजन कराने पर दक्षिणा तो दी ही जायगी। उस के लिये तो कुछ कहना ही न होगा। तुम्हारा घर कहां है?

हेमचन्द्र आशा छोड़ कर लौट रहे थे। इस समय पीछे से किसी ने उन की चादर पकड़ कर खींची। हेमचन्द्र ने उलट कर देखा। देखने से पहले क्षण में तो मालूम पड़ा कि फूल की बनी हुई एक देवी की मूर्त्ति है। दूसरे क्षण में जान पड़ा कि उस मूर्त्ति में जीव भी है। तीसरे क्षण में जान पड़ा कि वह मूर्त्ति नहीं है। वरन विधाता की रचना की सीमा स्वरूपिनी बालिका या पूरे यौवन से युक्त युवती है।

"बालिका है या युवती ?" इस बात को हेमचन्द्र उसे देख कर निश्चय न कर सके।

वीणा से भी अधिक मीठे स्वर से सुन्दरी ने कहा—"तुम बाबा से क्या कह रहे थे ? क्या वे तुम्हारी बात सुन सकते ?

हेमचन्द्र ने कहा—"हां, मैं भी यही समझता हूं। तुम कौन हो ?"

बालिका ने कहा —"मैं मनोरमा हूं।"

हे०। ये तुम्हारे बाबा हैं ?

म०। तुम बाबा से क्या कहते थे ?

हे०। मैं ने सुना कि "ये यह घर छोड़ कर जाने का उद्योग करते हैं।" मैं उसे ही मना करने आया था।

म०। इस घर में एक राजपुत्र आये हैं। क्या वे हमलोगों को इस में रहने देंगे ?

हे०। वह राजपुत्र मैं ही हूं। मैं तुम लोगों से प्रार्थना करता हूं कि तुम लोग यहां रहो।

म०। क्यों ?

हे०। 'क्यों' का जवाब नहीं है। हेमचन्द्र ने दूसरा जवाब न पा कर कहा—"क्यों, तुम विचार सकती हो। यदि तुम्हारा भाई आ कर इस घर में रहता तो क्या वह तुमलोगों को इस घर से निकाल देता ?"

म०। क्या तुम मेरे भाई हो ?

हे०। आज से मैं तुम्हारा भाई हुआ। अब समझा ?

म०। समझती हूं, पर बहिन समझ कर कभी निरादर तो नहीं करोगे ?

हेमचन्द्र मनोरमा की बातचीत की परिपाटी (तौर तरीका) से चमत्कृत होने लगे। उन ने सोचा क्या यह अति विचित्र सीधी बालिका है वा पगली है? फिर कहा—"क्यों निरादर करूंगा?"

म०। यदि मैं कोई अपराध करूं?

हे०। अपराध करने पर कौन निरादर नहीं करता?

मनोरमा उदासीन होकर खड़ी हो गई। फिर बोली "मैं ने कभी भाई नहीं देखा है। क्या भाई से लजाना होता है?

हे०। नहीं।

म०। तो मैं तुम से लाज नहीं करूंगी। तुम मुझ से लाज करोगे?

हेमचन्द्र हंसे। फिर बोले "मैं अपनी बात तुम्हारे बाबा से न कह सका, उस का उपाय क्या है?

"मैं कह देती हूं।" यह कह कर मनोरमा ने धीमे धीमे स्वर में जनार्दन से हेमचन्द्र की सब बातें कह दीं। देख कर हेमचन्द्र अचम्भे में आगये कि मनोरमा की वह धीमी आवाज बहरे की समझ में आ गई।

ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर राजपुत्र को आशीर्वाद दिया। और कहा "मनोरमा! ब्राह्मणी से कहो, राजपुत्र उस के नाती हुए।" यह कह कर ब्राह्मण आप भी "ब्राह्मणी! ब्राह्मणी" कह कर पुकारने लगे। उस समय ब्राह्मणी दूसरी जगह बैठ कर घर का काम कर रही थो, इस लिये पुकारना न सुन सकी। ब्राह्मण ने क्रोध कर के कहा "ब्राह्मणी में यह बहुत बड़ा दोष है कि "वह कानों से कम सुनती है।"

## तृतीय परिच्छेद।

### नौका पर।

हेमचन्द्र उस फूलबाग के मकान में ठहरे। और मृणालिनी? घर से निकाली हुई, सताई हुई, सहायहीना, अनाथा, मृणालिनी कहां है?

सांझ के समय लालरंगवाले बादलों ने सोना सा चमकीला रंग छोड़ धीरे २ काला रंग धारण किया। रात की दी हुई अंधकार रूपी चादर से गंगा का विशाल हृदय धुंधला हो गया। सभामण्डल में सेवकों के हाथों में जले हुए दीपों के समान, अथवा भोर के समय फुलवाड़ी में खिले हुए फूलों के समान आकाश में तारागण प्रकाशित होने लगे। नदी के धुंधले हृदय पर रात की हवा कुछ वेग से बहने लगी। उस से कामिनी के हृदय में नायक के छूने से उत्पन्न होनेवाली कँपकँपी के समान नदी के फेन की ढेरी में श्वेत फूल की माला गूंथी जाने लगी। जनसमूह के कोलाहल के समान लहर की ध्वनि उठने लगी। मल्लाह लोग सब नौकाओं को तीर पर लगा कर रात को दूसरी जगह ठहरने का विचार करने लगे। उन में एक छोटी सी डेंगी दूसरी २ नौकाओं से अलग ही एक गड्ढे की ओर आ लगी। मल्लाह लोग खाने पीने की तैयारी करने लगे।

उस छोटी नौका में केवल दो ही स्त्रियां चढ़ी हुई थीं। पाठकों से [illegible] न होगा कि, "ये मृणालिनी और [illegible] हैं"

गिरिजाया ने मृणालिनी से कहा—"आज का दिन कट गया।' मृणालिनी ने कुछ जवाब न दिया।

गिरिजाया ने फिर कहा—" कल का दिन भी काटूंगी, परसों का दिन भी काटूंगी, क्यों न काटूंगी ?"

तो भी मृणालिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया; केवल दीर्घ निःश्वास लिया।

गिरिजाया ने कहा—" ठाकुरानी ! यह क्या है ? यह क्या ? दिन रात चिन्ता करने से क्या होगा ? यदि हमलोगों का 'नदिया' में आना अच्छा नहीं हुआ, तो चलो अब भी लौट चलें।"

मृणालिनी ने अब जवाब दिया। वह बोली-"कहां जाऊंगी ?"

गि०। चलो, हृषीकेश के घर चलें।

मृ०। वरन इसी गङ्गाजल में डूब मरूंगी।

गि०। चलो तब मथुरा चलें।

मृ०। मैं ने तो कहा है कि अब मेरा वैसा स्थान नहीं है। कुलटा स्त्री के समान रात के समय पिता के जिस घर को छोड़ आई हूं उसी पिता के घर अब क्या कह कर मुंह दिखलाऊंगी ?

गि०। लेकिन तुम अपनी इच्छा से तो नहीं आई हो। नीच विचार से भी नहीं आई हो, जाने में हानि क्या है ?

मृ०। इस बात पर कौन विश्वास करेगा ? जिस पिता के घर मैं आदर की मूर्त्ति थी, उसी पिता के घर घृणित हो कर ही कैसे रहूंगी ? गिरिजाया अन्धेरे में न देख सकी। मृणालिनी की आंखों से एक के बाद एक लगातार आंसू के बूंद टपकने लगे। गिरिजाया ने पूछा " तब कहां जाओगी ? "

मृ० । जहां जा रही हूं ।

गि० । वह तो सुख की यात्रा है । तब क्यों उदास हो ? जिस को देखना पसंद करती हो, उसी को देखने जाती हो । इस से बढ़ कर और अधिक सुख क्या है ?

मृ० । नदिया में हेमचन्द्र के साथ मुझ से देखादेखी न होगी ।

गि० । क्यों ? क्या वे वहां नहीं हैं ?

मृ० । वहीं हैं । पर तुम तो जानती ही हो कि मुझ से एक बरस तक देखादेखी न करना ही उन का व्रत है । क्या मैं उस व्रत को भंग कराऊंगी ?

गिरिजाया चुप हो गई । मृणालिनी ने फिर कहा—"और क्या कह कर उन के सामने खड़ी होऊंगी ? क्या मैं कहूंगी कि—हृषीकेश पर क्रोध कर के चली आई हूं ? या यह कहूंगी कि हृषीकेश ने मुझ को कुलटा कह कर घर से निकाल दिया है ।"

गिरिजाया कुछ देर तक चुप रह कर बोली—"तो क्या नदिया में तुम को हेमचन्द्र से भेंट न होगी ?"

मृ० । नहीं ।

गि० । तब क्यों जा रही हो ?

मृ० । वे हम को न देख सकेंगे, पर मैं उन को देखूंगी । उन को देखने ही के लिये जा रही हूं ।

गिरिजाया हँसी न रोक सकी । बोली—"तब मैं गीत गाऊंगी ।"

अहो श्याम ! तुव चरण तले यह, प्राणरत्न मैं दीना रे ।
दैहों नाहीं तुम्हें नाथ ! मैं झूठा यौवनहीना रे ॥

इसी रत्न के ठीक बराबर, मुझे दाम तुम दीजे जू।
नाथ! रैन दिन दरसन दे कर, दया मोहि पर कीजे जू॥

ठाकुरानी! तुम उन को देख कर तो जीवनधारण करोगी। मैं तुम्हारी दासी हूं, मेरा तो उन को देख कर पेट न भरेगा। मैं क्या खा कर बचूंगी?

मृ०। मैं दो एक कारीगरी का काम जानती हूं। माला गूंथना जानती हूं, तसवीर लिखना जानती हूं, कपड़े पर बेलबूटा काढ़ सकती हूं। तुम बाज़ार में मेरी कारीगरी की चीज़ें बेंच दिया करोगी।

गि०। और मैं घर घर गीत गाऊंगी। क्या "मृणालअधमे" गाऊंगी?

मृणालिनी ने आधी हँसी और आधा क्रोधभरी नज़र से गिरिजाया की ओर देखा।

गिरिजाया ने कहा—"ऐसा कर के देखने से मैं गीत गाऊंगी।"

ऐसा कह कर गाने लगी—

जलतरङ्ग में डारी किस ने, मेरी प्रेम की नैया।
नाव खेवैया कौन मोर है, को है साथ जवैया॥

मृणालिनी ने कहा "यदि इतना डर था तो अकेले क्यों आई? गिरिजाया ने कहा "आगे क्या जानूं" कह कर गाने लगी।

भोर चढ़ी मैं उसी नाव पर, जल की खेल समझ कर।
हवा चलेगी मीठी मीठी, जैहों सुख से बीच भंवर॥

तभी गगन में बादल गरजे, आंधी चली अधिक तरसे।
छोड़ किनारा क्यों मैं आई, मरन लगी हा! इस डर से॥

मृणालिनी ने कहा "क्यों नहीं तीर पर लौट जाती?"
गिरिजाया गाने लगी—

धीरे धीरे नाव चला कर, तट पर फिरना चाहा।
पै, तट पर कांटों के तरु हैं, जिन पर सर्प अथाहा॥

मृणालिनी ने कहा "तब क्यों नहीं डूब कर मर जाती?"
गिरिजाया ने कहा "मरूं, उस में हानि नहीं है। पर—" यह कह कर गाया कि—

चढ़नहार हित सुन्दरता से, मैं ने नाव सजाई।
पै, न कभी पद दीनो प्यारे, उस नैया पर आई॥

मृणालिनी ने कहा—गिरिजाया! यह किस प्रेम-विहीन जन का गान है?

गि०। क्यों?

मृ०। मैं होती तो नौका ही डुबा देती।

गि०। साध लगती है।

मृ०। हां साध लगती है।

गि०। तब तुम ने जल में रत्न देखा है।

—०—

## चतुर्थ परिच्छेद

हेमचन्द्र कुछ दिनों तक उसी घर में रहे। जनार्दन से रोज मुलाकात होती थी, पर उस ब्राह्मण के बहरे होने के कारण सिर्फ इशारे से बातचीत होती थी। मनोरमा से भी रोज ही भेंट होती थी। मनोरमा कभी उन के साथ प्रेमिका बन कर बातें करती थी। और कभी कुछ बिना कहे सुने ही दूसरी ओर चली जाया करती थी। सत्य हो, मनोरमा का स्वभाव उन के लिये बहुत ही आश्चर्य-जनक जान पड़ने लगा। पहले तो उस की उमर का पता ही नहीं लगता था। यों तो उस को बालिका समझना ही उचित जान पड़ता था, पर कभी २ मनोरमा को बहुत ही धीर गम्भीर देखते थे। क्या मनोरमा आजतक कुमारी ही है? एक दिन हेमचन्द्र ने बातचीत के बहाने मनोरमा से पूछा—"मनोरमा तुम्हारी ससुराल कहां है?" मनोरमा ने कहा "नहीं बता सकती" और एक दिन पूछा था "मनोरमा! तुम कै बरस की हुई? "मनोरमा ने उस का भी उत्तर दिया था कि "मैं नहीं बता सकती।"

माधवाचार्य हेमचन्द्र को उस फुलवारी वाले मकान में रख-कर देश घूमने के लिये निकले। उन का मतलब यही था कि इस समय गौड़ देश के अधीन राजा लोग जिस प्रकार नदिया में अपनी सारी सेना के साथ खुद आकर गौड़ेश्वर की सहायता करें, ऐसी ही उन की तत्परता हो। हेमचन्द्र नदिया में उन के आने की राह देखने लगे। पर बेकार बैठे रहना, उन को बड़ा दुःखदायी हुआ हेमचन्द्र उदास हो गये उन के मन में यह इच्छा उत्पन्न

होने लगी कि दिग्विजय को घर की रखवाली के लिये रख कर, घोड़े पर चढ़ कर एकबार "गौड़" जावें। लेकिन ऐसा करने से, मृणालिनी से भेंट करने के कारण मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी" और गौड़ जा कर यदि मृणालिनी से न मिलेंगे तो वहां जाना ही व्यर्थ है। इन्हीं सब बातों को विचार कर हेमचन्द्र "गौड़" न गये। तो भी मृणालिनी की चिन्ता सदा हृदय में बनी रहती थी। एक दिन सायंकाल को वे शयनगृह में पलंग पर सो कर मृणालिनी की चिन्ता कर रहे थे। चिन्ता से भी हृदय में सुख पाते थे। खुली हुई खिड़की से हेमचन्द्र प्रकृति की शोभा देख रहे थे। शरत्काल का नया उदय हुआ है। रात चांदनी है, आकाश निर्मल, बड़ा और तारों से भरा है, फिर कहीं कहीं बिछौने के समान फैले हुए मेघ समूह से सुशोभित है। समीप ही बहनेवाली गंगा भी खिड़की की राह भली भांति देख पड़ रही है। गंगा की चौड़ाई बड़ी मालूम पड़ती थी। वह बहुत दूर तक फैली हुई है। चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से उस को तरंगें चमकीली जान पड़ती हैं। दूर में अन्धकार से भरी जान पड़ती हैं। और वह नये जल के आने से उमड़ी हुई हैं। नये जल के आने का कलकल शब्द हेमचन्द्र सुन सकते हैं। खिड़की में हवा आ रही है। हवा गंगा-जल के कणों के संग से ठंढी और रात में खिलनेवाले फूलों के संग सुगन्धित है। चन्द्रमा की किरणों को रोकनेवाले पेड़ों के काले और सफेद पत्तों को हिला कर, नदी के तट पर उगे हुए कास के फूलों को कँपा कर हवा खिड़की में आ रही है। हेमचन्द्र भी बहुत प्रसन्न हो रहे हैं।

अचानक ही खिड़की के दरवाज़े पर अँधेरा छा गया। चांदनी का आना बंद हो गया। हेमचन्द्र ने खिड़की के पास एक मनुष्य का सिर देखा। खिड़की ज़मीन से कुछ ऊंची थी, इस लिये किसी का हाथ पैर कुछ न देख पड़ा। उन ने सिर्फ़ एक मुंह देखा। मुंह बहुत बड़ा था, उस में दाढ़ी थी और उस के ऊपर पगड़ी थी। उस स्वच्छ चांदनी में, खिड़की के पास ही सामने उस दाढ़ीवाल, पगड़ीवाले मनुष्य के मुंह को देखते ही हेमचन्द्र ने पलंग से उछल कर, अपनी तीखी तलवार उठा ली।

तलवार लेकर हेमचन्द्र ने झांक कर देखा, तो खिड़की के पास अब वह मनुष्य का सिर नहीं है।

हेमचन्द्र तलवार ले कर दरवाज़ा खोल कर घर से बाहर निकले। खिड़की के नीचे आये, पर वहां कोई नहीं था।

हेमचन्द्र ने घर की चारो ओर, गंगा के तीर पर और बन में इधर उधर ढूंढ़ा, पर कहीं किसी को न देखा। हेमचन्द्र घर पर लौट आये। उस समय राजपुत्र ने पिता के दिये हुए योधा के कपड़ों और गहनों से सिर से पैर तक अपना सारा शरीर सज डाला। आकाश में घिरे हुए मेघमण्डल के समान उन का सुन्दर मुख अंधकार से भर गया। वे अकेले ही उसी गहरी रात में हथियारों से भरपूर हो कर, निकल पड़े। खिड़की के दरवाज़े पर मनुष्य का मुंह देख कर वे जान गये कि "बंगाल में तुर्क आ गये।"

—:o:—

## पञ्चम परिच्छेद

### ( वापी के तीर पर )

अकाल में घिरे हुए मेघ के समान भयंकरस्वरूप, राजपुत्र हेमचन्द्र तुर्क को ढूँढ़ने के लिये निकले। जैसे बाघ अपना आहार देखते ही वेग से दौड़ता है वैसे ही हेमचन्द्र तुर्क को देखते ही दौड़े। पर कहां तुर्क से भेंट होगी, इस का कुछ ठिकाना न था।

हेमचन्द्र ने एक ही तुर्क को देखा था। पर उन ने यह सिद्धान्त कर लिया कि ज़रूर ही तुर्कों की सेना नगर के पास ही आकर छिपी हुई है। वा यही आदमी तुर्कसेना के आगे आनेवाला दूत है। यदि तुर्कों की फ़ौज ही आ गई है, तो उस के साथ अकेले लड़ना नहीं हो सकता। पर जो हो, ठीक बात क्या है? उस का बिना पता लगाये हेमचन्द्र चुप न बैठ सकते थे। जिस बड़े काम के लिये मृणालिनी का त्याग किया था, आज रात में सोकर उस काम को लापरवाही से नहीं छोड़ सकते थे। और हेमचन्द्र को शत्रुओं के मारने में हृदय से आनन्द था। उस पगड़ी वाले मनुष्य के मुँह को देखते ही उन की इच्छा उस को मारने के लिये और भी भयानक तथा प्रबल हो गई। इसलिये उन के स्थिर होने की संभावना क्या थी? इस कारण बड़े वेग से पैर बढ़ाते हुए हेमचन्द्र राजमार्ग की ओर चले।

फुलवारी वाले घर से राजमार्ग कुछ दूर था। जो रास्ता तै कर के उस घर से राजमार्ग जाना पड़ता था उस से थोड़े ही लोग चला करते थे। वह रास्ता गावं में जाने के लिये था।

हेमचन्द्र उसी रास्ते से चले। उसी रास्ते के बगल में एक बहुत बड़ी सुंदर बावली थी, जिस में सीढ़ियां बड़ी सुन्दरता से बनी हुई थीं। बावली के बगल में अनेक, मौलिश्री, साल, अशोक, चम्पा, कदम्ब,, पीपल, बड़, आम, इमली आदि के वृक्ष थे। वे वृक्ष पांती से लगातार नहीं लगाये गये थे, वरन बहुत से वृक्षों की डालियां आपस में ऐसी मिल गई थीं कि बावली के तीर पर बड़ा अंधेरा छाये रहता था, जिस से दिन में भी वहां अंधेरा ही जान पड़ता था। लोग कहा करते थे कि उस बावली में भूत लोग खेला करते हैं। यह संस्कार पड़ोसियों के हृदय में ऐसा दृढ़ जम गया था कि कोई वहां न जाता था। यदि कोई जाता भी था, तो अकेले नहीं। रात को तो कोई जाता ही न था।

-पौराणिक धर्म की पूर्ण प्रबलता के समय हेमचन्द्र भी यदि भूत के होने में विश्वास करें, तो आश्चर्य ही क्या है? लेकिन भूत पर विश्वास कर के वे अपने चाहे हुए रास्ते से जाने में डरें, ऐसे डरनेवाले नहीं थे। इसीलिये वे निडर हो कर बावली के बगल से चले। निडर थे, पर भूतों के देखने की इच्छा से खाली न थे। बावली के बगल में सब जगह और उस के तीर पर टकटकी लगाए चलते थे। सीढ़ियों के पास पहुंचे। अचानक चमक उठे। सब लोगों के कहे हुए वचन पर उन का भी विश्वास दृढ़ हो गया। उन ने देखा कि—चांदनी के उजाले में सब से नीचेवाली सीढ़ी पर, पानी में पैर लगा कर, सपेद चादर ओढ़कर कोई बैठा हुआ है। उन ने उस को "स्त्री" समझा। उस स्त्री का वस्त्र सपेद था, उस के सिर के सघन काले बाल, मुहँ, दोनों बांह, कांधा, पीठ,

छाती आदि सब अंगों को ढकते हुए जमीन तक फैले हैं उस को प्रेत समझ कर हेमचन्द्र चुपचाप चले जाते थे। पर मन में सोचा " यदि वह मनुष्य है, तो इतनी रात को यहां क्यों आया है ? उस ने तुर्क को तो देखा ही होगा ? " इसी संदेह से हेमचन्द्र लौटे। निडर हो कर बावली के तीर पर चढ़ आये। सीढ़ियों पर धीरे धीरे उतरने लगे। प्रेतिनी उन का आना जान कर भी न हटी। पहले ही के समान बैठी ही रह गई। हेमचन्द्र उस के पास आये। तब वह उठ खड़ी हुई। हेमचन्द्र की ओर फिरी। और हाथों से मुंह को घेरने वाले बालों को हटाया। हेमचन्द्र ने उस का मुंह देखा। वह प्रेतिनी नहीं है। प्रेतिनी होने पर हेमचन्द्र को बहुत आश्चर्य न होता। उन ने कहा " मनोरमा ! तुम यहां क्यों आई ? "

मनोरमा ने कहा " मैं तो यहां कई बार आती हूं, पर तुम क्यों आये ? "

हे०। मेरा एक काम है।

मनो०। इस रात को कौन सा काम आ पड़ा है ?

हे०। पीछे कहूंगा। तुम इस रात को यहां क्यों आई ?

म०। तुम्हारा ऐसा पहिरावा क्यों है ? हाथ में बरछा, कांख के नीचे तलवार, क्या यह तलवार जल रही है ? यह क्या हीरा है ? सिर पर यह क्या है ? इस में चकमकाहट के साथ ज्वाला निकल रही है। और यह क्या है ? क्या यह भी हीरा है ? इतने हीरे तुम ने कहां पाये ?

हे०। मेरे हैं।

म० . इस रात को इतने हीरे पहन कर कहा जा रहे हो ? अगर चोर चुरा ले ?

हे० । मेरे पास से चोर नहीं ले सकता ।

म० । तो इतनी रात को इतने गहनों की ज़रूरत ही क्या है ? क्या तुम विवाह करने जाते हो ?

हे० । तुम क्या समझती हो, मनोरमा ?

म० । मनुष्य के मारनेवाले हथियारों को लेकर कोई ब्याह करने नहीं जाता । तुम लड़ने जाते हो ?

हे० । किस के साथ लड़ाई करूंगा ? तुम यहां क्या कर रही थी ?

म० । नहा रही थी । नहा कर हवा में बालों को सुखा रही थी । यह देखो "इस समय भी बाल भींगे हुए हैं ।" यह कह कर मनोरमा ने अपने भींगे बाल हेमचन्द्र के हाथ में छुआ दिये ।

हे० । रात में क्यों नहाती हो ?

म० । मेरे शरीर में गरमी मालूम पड़ती है ।

हे० । गंगा में न नहा कर यहां क्यों नहाती हो ?

म० । यहां का पानी बड़ा ठंढा है ।

हे० । तुम हमेशा यहां आती हो ?

म० । आती हूं ।

हे० । मैं तुम्हारा सम्बन्ध कर देता हूं । तुम्हारा ब्याह होगा ब्याह होने पर इस तरह कैसे आ सकोगी ?

म० । पहले ब्याह तो हो ।

हेमचन्द्र ने हँसकर कहा " तुम को लाज नही है तेरा मुँह काला है। "

म०। क्यों निरादर करते हो ? तुम ने तो कहा था कि निरादर नहीं करूंगा।

हे०। यह बुरा न मानना। इस रास्ते किसी को जाते हुए देखा है ?

म०। देखा है।

हे०। उस का कैसा भेष था ?

म०। तुर्क का पहिरावा था।

हेमचन्द्र बहुत आश्चर्य में पड़ गये। फिर बोले, तुम ने तुर्क को कैसे पहचाना ?

म०। मैं ने पहले तुर्क देखा है।

हे०। यह कैसे ? पहले तुम ने कहां देखा ?

म०। यहां नहीं देखा है। तुम उस तुर्क का पीछा करोगे ?

हे०। हां, पीछा करूंगा। वह किस रास्ते गया है ?

म०। क्यों ?

हे०। उस को मारूंगा।

म०। मनुष्य को मारने से क्या होगा ?

हे०। तुर्क मेरे बड़े शत्रु हैं।

म०। तो क्या एक को मार कर प्रसन्न होगे ?

हे०। मैं जितने तुर्क को देखूंगा उतने को मारूंगा।

म०। सब को मार सकोगे ?

हे०। मार सकता हूं।

मनोरमा ने कहा तब सचेत होकर मेरे साथ आओ।

हेमचन्द्र इधर उधर करने लगे। यवनों की लड़ाई में यही रास्ता बतावेगी? मनोरमा उन के मन की बात समझ गई। और बोली "मुझ को लड़की समझ कर अविश्वास करते हो?"

हेमचन्द्र ने मनोरमा की ओर बड़ी देर तक देखा। अचम्भे में पड़ कर उन ने सोचा "क्या मनोरमा मानुषी है?

## षष्ठ परिच्छेद।

### पशुपति।

गौड़ देश के धर्माधिकारी पशुपति मामूली आदमी नहीं थे। वे दूसरे गौड़ेश्वर ही थे। राजा बूढ़े थे। बुढ़ापे के कारण दूसरे की राय पर चलते थे। और राजकाज भलीभांति न कर सकते थे। इस लिये प्रधान दीवान धर्माधिकारी ही के हाथ में गौड़ राज्य का सच्चा भार रक्खा हुआ था। सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य में पशुपति गौड़ेश्वर के समान हो गये थे।

पशुपति की उमर पैंतीस बरस की होगी। वे देखने में बड़े सुन्दर थे। उन का शरीर लम्बा और छाती चौड़ी थी। सब शरीर में मांस सुन्दरता के साथ भरा हुआ था। उन का रंग तपाए हुए सोने के समान था। सिर बहुत ऊंचा था। उन में मानसिक शक्ति भरपूर थी। नाक लम्बी और ऊंची थी। आंखें

छोटी पर बड़ी चमकीली थीं। मुंह देखने से वे बुद्धिमान जान पड़ते थे। और सदा कार्य करने की चिन्ता से उस मुंह पर कुछ रूखापन भी था। इस से क्या? राजसभा के बीच उन के समान सर्वांग सुन्दर पुरुष दूसरा कोई नहीं था। सब लोग कहते थे कि गौड़ देश में ऐसा पण्डित और चतुर कोई नहीं है।

पशुपति जाति के ब्राह्मण थे। पर उन की जन्मभूमि कहां थी, यह बात किसी को भली भांति मालूम नहीं। लोग कहते हैं कि उन के पिता विद्वान् दरिद्र ब्राह्मण थे, पशुपति केवल अपनी ही बुद्धि और विद्या के प्रभाव से गौड़राज्य के प्रधान पद पर पहुंचे थे।

पशुपति जब युवा, थे तब काशीपुरी में रह कर अपने पिता से शास्त्र पढ़ते थे। वहां केशव नामक एक ब्राह्मण रहते थे। केशव की एक लड़की थी, जिस की उमर आठ बरस की थी। उस के साथ पशुपति का व्याह निश्चित हुआ, पर भाग्यवश व्याह ही की रात को केशव व्याही हुई कन्या को ले कर कहीं छिप गया। फिर उस का पता नहीं लगा। उसी दिन से पशुपति पत्नी के सुख से वञ्चित थे। किसी कारण से इस समय उन ने दूसरा व्याह नहीं किया। वे इस समय राजभवन के समान ऊँचे मकान में रहते थे, किन्तु स्त्री के नयनों की ज्योति के न रहने के कारण वह ऊँची अटारी आज अंधेरे से भर रही है।

आज की रात उसी ऊँची अटारी पर एक एकान्त कमरे में पशुपति अकेले ही दीप के प्रकाश में बैठे हुए थे। इसी कमरे के पीछे ही एक आम का बागीचा था। उस बागीचे में जाने के

लिये एक छिपा हुआ दरवाज़ा था। आधी रात को इसी दरवाज़े पर कोई आ कर धीरे धीरे दरवाज़ा खटखटाने लगा। घर के भीतर से पशुपति ने दरवाज़ा खोला। एक आदमी घर में घुस आया। वह मुसलमान था। हेमचन्द्र ने उसी को खिड़की पर देखा था। उस समय पशुपति ने उस को अलग बैठने की आज्ञा दे कर विश्वासजनक वस्तु देखने की इच्छा प्रगट की। मुसलमान ने विश्वासजनक वस्तु दिखलाई।

पशुपति ने संस्कृत में कहा—"मैं समझता हूं। आप तुर्कों की सेना के प्रधान स्वामी के विश्वासपात्र हैं, इस लिये मेरे भी विश्वासपात्र हैं। आप ही का नाम मुहम्मद अली है? अब सेना-पति का विचार प्रगट कीजिये।" मुसलमान ने भी संस्कृत ही में जवाब दिया। लेकिन उस की संस्कृत के तीन हिस्से फ़ारसी थे, और चौथा हिस्सा जैसी संस्कृत थी, वैसी भारतवर्ष में कभी नहीं बोली गई। वह मुहम्मद अली ही की बनाई हुई संस्कृत थी। पशु-पति ने बड़े कष्ट से उस का अर्थ समझा। पाठक महाशयों को उस कष्ट के हिस्सेदार बनने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं उन को समझाने के लिये उस नई संस्कृत का अनुवाद कर देता हूं।

मुसलमान ने कहा—खिलजी साहब का मतलब तो आप जानते ही होंगे। "बिना लड़े ही गौड़ देश को जीतें" यही उन को इच्छा है। आप किस तरह यह राज उन के हाथ में दे देंगे?

पशुपति ने कहा—"मैं यह राज्य उन के हाथ में दूंगा या नहीं, अभी यह ठीक नहीं हुआ है। अपने देश की बुराई करना बहुत बड़ा पाप है। मैं यह काम कैसे करूंगा?

यवन, बहुत अच्छा! मै जाता हू. तब आप ने खिलजी के पास दूत क्यों भेजा था?

पशु०। "उन की युद्ध करने की इच्छा कितनी बड़ी है?" यही जानने के लिये।

यव०। मैं यह आप को बताये जाता हूं कि दिन की लड़ाई में बड़ी खुशी है।

पशु०। मनुष्य के युद्ध में, पशु के युद्ध में या हाथी के युद्ध में, किस में आनन्द है?

यव०। महम्मद अली ने क्रोध कर के कहा "गौड़ युद्ध में पशु-युद्ध ही अधिक होगा, ऐसी ही आशा है। मैं ने समझ लिया कि ताना देने ही के लिये आप ने सेनापति से दूत भेजने को कहला भेजा है। हम लोग लड़ना जानते हैं, ताना देना नहीं जानते। जो जानते हैं, वही करेंगे।"

यह कह कर महम्मदअली जाने की तैयारी करने लगा। पशु-पति ने कहा "थोड़ी देर और ठहरिये और कुछ सुन कर जाइये। मैं इस राज्य को मुसलमानों के हाथ देने में "नहीं" भी नहीं करता। और असमर्थ भी नहीं हूं। मैं ही गौड़ का राजा हूं। सेनराजा नाम मात्र के लिये हैं। पर पूरा दाम बिना पाये अपना राज्य आप लोगों को कैसे दे सकता हूं?"

महम्मदअली ने कहा—आप क्या चाहते हैं?

पशु०। खिलजी क्या देंगे?

यव०। जो आप का है वह सभी आप ही के पास रहेगा। आप का प्राण, धन और दर्जा, सभी रहेंगे। इतना ही।

पशु०। तब मैं ने क्या पाया ? ये सभी तो मेरे ही हैं। किस लोभ से मैं यह बहुत बड़ा पाप करूंगा ?

यव०। हम लोगों को नाराज करने से कुछ भी नहीं रहेगा। लड़ाई करने से आप के धन, दर्जा और प्राण तक भी चले जायंगे।

पशु०। तब युद्ध समाप्त हुए बिना नहीं जा सकता। हम लोग युद्ध करने में एकदम उदासीन नहीं हैं। और मगध में लड़ने का उद्योग हो रहा है, यह बात भी मैं जानता हूं। खिलजी उसी को बंद करने में लगे हुए हैं। इसलिये कुछ दिनों के लिये गौड़ जीतने की इच्छा न करनी होगी। यह भी वे जानते हैं कि मेरा पुरस्कार पूरा नहीं देंगे तो न दें, पर यदि लड़ना ही स्थिर कर लिया है, तो हम लोगों के लिये यही अच्छा समय है। जब बिहार में विद्रोह की सेना सजी जायगी, तब गौड़ेश्वर की भी सेना सजेगी।

म०। नुकसान क्या है ? चींटी के काटने के बाद अगर मच्छड़ भी काट दे, तो हाथी नहीं मरता। पर आप क्या पुरस्कार मांगते हैं, मैं यह भी सुन लेना चाहता हूं।

प०। सुनो। इस समय मैं ही गौड़ का सच्चा मालिक हूं, पर सब लोग हम को गौड़ेश्वर नहीं कहते। मैं अपने नाम से राजा होना चाहता हूं। सेनवंश का नाम मिट जाय और पशुपति के नाम से गौड़ का राज्य प्रसिद्ध हो।

म०। इस के बदले आप हमलोगों का क्या उपकार करेंगे; हमलोगों को क्या देंगे ?

पशु०। सिर्फ मालगुज़ारी। मुसलमानों की अधीनता में रह कर सिर्फ मालगुज़ारी देकर राजा बनूंगा।

म०। अच्छा ! यदि आप ही गौड़ के सच्चे राजा हैं, और राज्य भी आप के हाथ में हुई है, तो हम लोगों के साथ आप को बात करने की ज़रूरत ही क्या है ? हम लोगों की सहायता का क्या मतलब ? और आप हम लोगों को मालगुज़ारी क्यों देंगे ?

प०। सो तो सच बताऊंगा। इस में कपट नहीं करूंगा। पहले तो सेन राजा मेरे स्वामी हैं, बुड्ढे हैं और मुझे बहुत प्यार करते हैं। अपने बल से यदि मैं उन को राज्य से उठा दूं, तो संसार में निंदा होगी। आप लोग लड़ाई की थोड़ी सी तैयारी दिखा कर मेरी राय से बिना युद्ध ही राजधानी में आ कर उन को राज्य सिंहासन से उठा कर मुझ को उस पर बैठा देंगे, तो वह निन्दा न होगी। दूसरी बात यह कि अयोग्य पुरुष के हाथ में पड़ने ही से राज्य में विद्रोह होने की सम्भावना रहती है। आप लोगों की सहायता के लिये उस विद्रोह को सहज ही रोक सकता हूं।

तीसरी बात यह कि—यदि मैं आप ही राजा हो जाऊंगा, तो इस समय सेन राजा के साथ आप लोगों का जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध मेरे साथ भी रहेगा। हम लोगों के साथ युद्ध होने की सम्भावना है। युद्ध के लिये हम लोग तैयार हैं, पर जय और पराजय दोनों की सम्भावना है। जय होने पर मुझे कोई नई वस्तु न मिलेगी। पर पराजय होने में सभी हानि ही है। और आप लोगों के साथ संधि कर के राज्य लेने से वह शंका न रहेगी। फिर सदा युद्ध के लिये तत्पर रहने से नये राज्य का शासन भी भली भांति नहीं हो सकता।

म०। आप ने राजनीति जानने वाले के समान सोच विचार किया है। आप की बात से मुझे पूरा एतमाद हो गया। मैं भी इसी तरह खुलासा कर के खिलजी साहिब का मतलब ज़ाहिर करता हूं। "वे इस वक्त कई फिक्रों से घबड़ाये हुए हैं" यह बात सच है, लेकिन सारे हिन्दुस्तान में मुसलमान ही एक बादशाह होंगे। दूसरे राजाओं का नाम भी हम लोग न रहने देंगे। तो भी आप को गौड़ देश का राजा बनावेंगे। जैसे दिल्ली में महम्मदगोरी के कायम मुकाम "कुतुबउद्दीन" हैं वैसे ही पूरब देश में कुतुबउद्दीन के कायममुकाम "बख्तियार खिलजी" हैं। इसी प्रकार गौड़ देश में बख्तियार खिलजी के कायममुकाम आप रहेंगे। आप को यह मंजूर है कि नहीं?

पशुपति ने कहा "मैं इसे स्वीकार करता हूं।"

म०। अच्छा। मैं एक बात और पूछ लेना चाहता हूं। क्या आप जिस बात को मंजूर करते हैं, उस के पूरा करने में आप कामयाब हो सकते हैं?

प०। मेरी आज्ञा के बिना एक सिपाही युद्ध नहीं कर सकता। राज्य का प्रधान कोष मेरे ही अनुचरों के हाथ में है। बिना मेरी आज्ञा के, युद्ध के उद्योग में एक कौड़ी खर्च नहीं की जा सकती। केवल पांच अनुचर को ले कर खिलजी को राजनगर में प्रवेश करने के लिये कहना। कोई नहीं पूछेगा कि "तुम लोग कौन हो?"

म०। एक बात और भी बाकी है। इस देश में मुसलमानों का बहुत बड़ा दुश्मन हेमचन्द्र रहता है। आज रात ही को उस का सिर मुसलमानों की सेना में भेजना होगा।

प० । आप ही लोग आ कर उसे काटेंगे। मैं अपनी शरण में आये हुए मनुष्य की हत्या करके महा पाप कैसे करूंगा ?

म० । हम लोगों से यह बात नहीं हो सकती। मुसलमानों का आना सुनते ही वह राजधानी छोड़ कर भाग जायगा। आज वह बेफिक्र है। आज ही आदमी भेज कर उस को मरवा डालिये।

प० । अच्छा इसे भी स्वीकार करता हूं।

म० । मैं खुश हुआ, आप का जवाब ले कर मैं जा रहा हूं।

प० । जो आज्ञा, एक बात और पूछना है।

म० । क्या है ? हुक्म दीजिये।

प० । मैं तो राज्य आप लोगों के हाथ दे देता हूं। पीछे यदि आप लोग मुझ को राज्य से निकाल दें ?

म० । हम लोग आप की बात से निडर हो कर, थोड़ी सी फौज ले कर, दूत के कहने के मुताबिक राजधानी में घुसेंगे। इस में यदि हम लोग मंजूरी के मुताबिक काम न करेंगे, तो आप बिन तरद्दुद ही हम लोगों को निकाल देंगे।

प० । यदि आप लोग थोड़ी सेना ले कर न आवेंगे तो ?

म० । तब लड़ाई कीजियेगा। यह कह कर महम्मद अली बिदा हुआ।

—:o:—

# सप्तम परिच्छेद ।

## चोर पकड़नेवाला ।

जब महम्मद अली, बाहर आंखों की ओट में चला गया, तब एक दूसरा आदमी गुप्त दरवाजे के पास आ कर धीरे से बोला "भीतर आवें ?"

पशुपति ने कहा "आओ ।"

एक गुप्त दूत आया । उस ने प्रणाम किया । पशुपति ने आशीर्वाद देने के बाद पूछा—"क्यों शान्तशील ! आनन्द मङ्गल समाचार तो है न ?

दूत ने कहा—आप एक एक बात पूछते जायं, मैं बारी बारी से जवाब देता जाऊंगा ।

प० । तू मुसलमानों के पड़ाव पर गया था ?

शा० । वहां कोई नहीं जा सकता ।

प० । क्यों ?

शा० । जंगल बड़ा घना है । उस में घुसना कठिन है ।

प० । टांगा ले कर पेड़ों को काटते काटते क्यों न घुस गया ?

शा० । बाघ और भालुओं का डर है ।

प० । हथियार क्यों न लेता गया ?

शा० । जो लकड़िहारे बाघ भालुओं को मार कर बन में घुसे थे, वे सभी मुसलमानों के हाथ मारे गये । कोई लौट कर न आया ।

प० । तू भी क्यों न जा कर उसी प्रकार मर गया ?

शा० । ऐसा होने से कौन आ कर आप से संदेसा कहता ?

पशुपति ने हंस कर कहा " तू ही आता । "

शान्तशील ने प्रणाम करके कहा—मैं ही समाचार कहने के लिये आया हूं ।

पशुपति ने आनन्दित हो कर पूछा " तू कैसे गया ? "

शा० । पहले पगड़ी, हथियार, टोपी आदि तुर्की पहिरावे की चीज़ें इकट्ठी कीं । उन्हें गठरी में बांध कर पीठ पर लटका लिया । उस के बाद लकड़िहारों के साथ बन में घुसा । रास्ते में जब मुसलमान लकड़िहारों को देख कर मारने के लिये मुस्तैद हो गये, तब मैं ने हट कर पेड़ की ओट में जा कर अपना भेष बदल दिया । फिर मुसलमान बन कर मुसलमानों की सेना में सब जगह घूमा, फिरा ।

प० । तू प्रशंसा के योग्य है । मुसलमानों की सेना कितनी देखी ?

शा० । उस बड़े बन में जितने अंटे हों, पर जान पड़ता है कि वे पचीस हज़ार होंगे ।

पशुपति भौंहें टेढ़ी कर के कुछ देर तक चुप रहे । पीछे कहा " उन लोगों की क्या बातचीत सुनी ? "

शा० । अच्छी तरह सुना है, पर आप से कुछ नहीं कह सकता।

प० । क्यों ?

शा० । मुसल्मानों की भाषा कुछ भी नहीं जानता ।

पशुपति हंसे, उस समय शांतशील ने कहा "महम्मद अली जो यहां आया था, मैं उस से डरता हूं।"

पशुपति ने घबड़ा कर कहा—"क्यों ?"

वह छिप कर न आ सका। उन का आना किसी किसी ने जान लिया है।

पशुपति बहुत डर कर बोले "कैसे जाना ?"

शान्तशील ने कहा "जब मैं आप के चरणों का दर्शन करने के लिये आ रहा था, तब देखा कि पेड़ के नीचे एक आदमी छिपा हुआ है। उस का पहिरावा सिपाहियों का सा था। उस के साथ बात-चीत करने में जान गया कि वह महम्मद अली को नगर में घुसते हुए देख कर उस की राह देख रहा है। पर अंधकार में मैं उसे न पहचान सका।

प०। उस के बाद ?

शांत०। उस के बाद दास उस को "चित्रगृह" में कैद कर के रख आया है।

पशुपति शान्तशील को धन्यवाद देने लगे। फिर बोले "कल प्रातःकाल उठ कर उस आदमी के लिये उचित कार्य किया जायगा। आज रात भर वह उसी जेल में रहे। इस समय तुम को एक दूसरा काम पूरा करना होगा। मुसलमान सेनापति की इच्छा है कि "आज ही रात को मैं मगध देश के राजकुमार का कटा हुआ सिर देखूं।" उस को आज ही काट लाऊंगा।

शा०। यह काम बहुत सहज नहीं है। राजपुत्र चींटी या मक्खी नहीं है।

प० । मैं तुम को अकेले जाने के लिये नहीं कहता । कई आदमियों को लेकर उस के घर पर चढ़ जाओ ।

शा० । सब लोगों से आप क्या कहेंगे ?

प० । सब लोगों से कह दिया जायगा कि उसे डाकू मार कर चले गये हैं ।

शा० । जो आज्ञा । मैं जाता हूं ।

पशुपति ने शान्तशील को पारितोषिक देकर बिदा किया । इस के बाद घर के भीतर जहां अति सुन्दर विचित्र मन्दिर में अष्टभुजी देवी की मूर्त्ति स्थापित थी, वहां जा कर मूर्त्ति के सामने साष्टांग प्रणाम कर के भक्तिभाव से देवी की स्तुति करने के बाद पशुपति ने कहा—"जननी ! विश्वपालनी ! मैं अथाह तथा अनन्त समुद्र में कूद चुका हूं । मा ! देखना, मेरा उद्धार करना । मैं प्राणस्वरूप जन्मभूमि को देवताओं के शत्रु मुसलमानों के हाथ कभी न बेचूंगा । केवल मेरा इतना ही पापकर्म है कि निर्बल पुराने राजा के स्थान पर मैं राजा होऊंगा । जैसे कांटे से कांटा निकाल कर, फिर दोनों कांटों को दूर फेंक दिया जाता है; वैसे ही मुसलमानों की सहायता से राज्य पा कर, राज्य की सहायता से मुसलमानों को नीचा दिखलाऊंगा । इस में पाप क्या है, मा ? यदि इस में पाप है, तो सारी जिन्दगी भर प्रजा के सुखों के कार्य कर के उस पाप का प्रायश्चित्त करूंगा । जगज्जननी ! प्रसन्न हो कर मेरा मनोरथ सिद्ध करो ।

यह कह कर पशुपति ने फिर भी प्रणाम किया । प्रणाम कर के उठे । शयनागार में जाने के लिये लौट कर देखा कि, एक

विचित्र ही दर्शन है। सामने दरवाज़ा रोक कर सजीव मूर्ति के समान एक युवती खड़ी है।

पशुपति पहले तो अचंभे में पड़ गये। फिर कांप उठे। इस के बाद ही लहरातेहुए समुद्र के समान आनन्द से फूल उठे। उस युवती ने बीणा से भी अधिक मीठे स्वर से कहा—"पशुपति!"

पशुपति ने देखा कि "वह मनोरमा है।"

---

# अष्टम परिच्छेद।

---

## मोहिनी।

---

रत्नों के दीपों से जगमगाते हुए उस देवमन्दिर में चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित द्वार पर मनोरमा को देख कर, पशुपति का हृदय लहराते हुए समुद्र के समान उछलने लगा। मनोरमा बहुत नारी न थी; पर वह बालिका ही जान पड़ती थी। कारण यह कि उस का मुंह बहुत ही कोमल था; अवर्णनीय मधुर और बहुत ही बालिका के समान भोला भाला था। इस लिये यदि हेमचन्द्र ने उस की उमर को पन्द्रह बरस समझा, तो इस में कुछ अनुचित नहीं है। मनोरमा की उमर ठीक क्या थी? "पन्द्रह वा सोलह, या इस से कुछ अधिक वा कम" यह कहीं इतिहास में लिखा नहीं है। पाठक महाशय खुद ठीक कर लेंगे।

मनोरमा का उमर कितनी ही क्यों न हो, किन्तु उस के रूप की बराबरी कोई नहीं कर सकता। उस पर आंखें नहीं ठहर सकती थीं। बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वा यौवनावस्था, सभी समय वैसी सुन्दरता नहीं मिल सकती। एक तो उस का रंग ही सोने और चम्पा के समान था; उस पर सांपों की कतार के समान टेढ़ी टेढ़ी अलकें लटकी हुई हैं। इस समय वह बावली का जल खींचने के लिये डोरी हुई हैं। आधे चन्द्रमा के समान निर्मल ललाट है। भौंरों के भार से हिलते हुए काले फूलों के समान काले तारों से सुशोभित चंचल नेत्र हैं। बार बार फैलती और सिकुड़ती हुई अति सुढार नाक है। ऊपर नीचे वाले दोनों ओठ, प्रातः-काल में बर्फ से सींचे हुए और प्रातःकाल के सूर्य की किरणों से खिलाए हुए लाल फूलों के दो गुच्छों के समान हैं। गाल चन्द्रमा की किरणों के समान उजले, स्थिर और गंगाजल के फैलाव के समान स्वच्छ हैं। बच्चे के पकड़े जाने के डर से चौंकी हुई हंसी के समान गला है। वेणी के बँध जाने पर भी उस गले पर भी बंधे हुए छोटे २ सब बाल आ कर खेल कर रहे हैं। हाथी के दांत यदि फूल के समान कोमल हो सकें, चम्पा के फूल गढ़ने के लायक कठिन हो सकें, अथवा चन्द्रमा की किरणें यदि शरीर धारण कर सकें तो उन से उस की दोनों बाहें गढ़ी जा सकती हैं। उस का हृदय उसी के हृदय से गढ़ा जा सकता है। ये सभी उस सुन्दरी के हैं। मनोरमा की रूपराशि, अतुल इस लिये है कि उस के सब अंग बड़े ही सुकुमार हैं। उस के मुंह, ओष्ठ, दोनों भौंहें, ललाट, कपोल, केश आदि सभी अति सुकुमार हैं। उस के बाल जो

सांपों के बच्चों के समान हैं वे भी मानो सांपों के सुकुमार बच्चे ही हैं। गाले और गले की गढ़न में सुकुमारता है। बाहों में और उन के हिलाने डुलाने में भी सुकुमारता है। हृदय के धड़कने में भी बड़ी सुकुमारता है। चरण सुकुमार और उन की बनावट भी सुकुमार है। चलना बहुत ही सुकुमार और वसन्त की हवा से हिलाई हुई पुष्पित लता के धीरे धीरे हिलने डुलने के समान है। वचन सुकुमार और आधी रात के समय जलराशि के उस पार से आये हुए विरहगीत के समान है। कटाक्ष सुकुमार और दया-भाव के लिये मेघमाला से निकली हुई चन्द्रमा की किरणों की वर्षा के समान है। और यह जो मनोरमा देवी घर के दरवाज़े पर खड़ी हैं, उस में पशुपति का मुंह देखने के लिये सिर ऊंचा किया है, आंखों के तारे ऊपर को ओर स्थिर हैं, बादलों के जल से भीगे तथा लपेटे हुए बालों के छोर को एक हाथ में ले कर एक पैर कुछ आगे बढ़ा कर जिस भावभङ्गी से मनोरमा खड़ी है वह भावभङ्गी भी सुकुमार है और नये सूर्य के उदय होने पर तुरन्त के खिले हुए कमलों की राशि के समान प्रसन्न लज्जा के समान सुकुमार है। उस मधुरता से भरी हुई देह पर देवों के समीप रहने-वाले रत्नदीप का प्रकाश आ पड़ा। पशुपति टकटकी लगा कर देखने लगे।

—:o:—

## नवम परिच्छेद ।

—:o:—

### मोहिता ।

पशुपति चाहभरी आंखों से देखने लगे। देखते ही देखते मनोरमा की सुन्दरता के समुद्र की एक बहुत बड़ी महिमा उन ने देखी। जैसे सूर्य की तीखी किरणों से हँसते हुए समुद्र में, मेघों के छा जाने से धीरे धीरे गहरा अँधेरा छा जाता है, वैसे ही पशुपति के देखते ही देखते मनोरमा का मुखमण्डल गंभीर होने लगा। और वह बालिकाओं में दीख पड़नेवाला, उदारता पूर्ण-भाव न रहा। अपूर्व तेज के प्रकाश के सहित और युवती स्त्रियों में गम्भीरता उस में विराजित होने लगा। सरलता को ढक कर प्रतिभा का उदय हुआ। पशुपति ने कहा—"मनोरमा! इतनी रात को क्यों आई? यह क्या? आज तुम्हारा यह भाव क्यों है?"

मनोरमा ने जवाब दिया—"क्या मेरा यह भाव देखा?"

प०। तुम्हारी दो मूर्त्तियां हैं। एक मूर्त्ति आनन्दमयी भोली-बालिका। उस मूर्ति में क्यों नहीं आई? उस रूप से मेरा हृदय शीतल होता है। और यह तुम्हारी मूर्त्ति गंभीर, तेजस्विनी, प्रतिभामयी तथा तीखी बुद्धि वाली है। इस मूर्त्ति को देख कर मैं डर जाता हूं, तब मैं समझ सकता हूं कि "तुम किसी दृढ़ प्रतिज्ञा में लगी हो।" आज तुम इस मूर्त्ति में मुझ को डराने क्यों आई हो?

म० । पशुपति ! तुम इतनी रात तक जग कर क्या करते हो ?

प० । मैं राज काज में लगा हूं। पर तुम—

म० । पशुपति ! इस समय ? राजकाज में लगे हो वा निज काज में ?

प० । अपना ही काम समझो । राजकाज हो वा अपना काज हो, मैं कब नहीं लगा रहता ? तुम आज क्यों पूछती हो ?

म० । मैं ने सब सुना है ।

प० । क्या सुना है ?

म० । यवन के साथ पशुपति की सल्लाह । शान्तशील के साथ सल्लाह । दरवाज़े के बगल में खड़ी हो कर मैं ने सब सुनी है ।

मानो पशुपति का मुंह बादल के अंधेरे में डूब गया । वे बहुत देर तक चिन्ता में रहने के बाद बोले । अच्छा ही हुआ है । मैं सभी बातें तुम से कहता हूं । नहीं तो तुम पीछे भी सुन लेती । तुम कौन बात नहीं जानती ?

म० । पशुपति ! तुम ने मुझ को छोड़ दिया ?

प० । क्यों मनोरमा ! तुम्हारे ही लिये मैं ने यह सल्लाह की है । मैं इस समय राजा का नौकर हूं । अपनी इच्छा के अनुसार काम नहीं कर सकता । इस समय " विधवा विवाह " करने पर समाज से निकाला जाऊँगा । पर जब मैं खुद राजा हो जाऊँगा तब मुझ को कौन निकालेगा ? जैसे बल्लालसेन ने कुलीनता की नई परिपाटी चलाई वैसे ही मैं " विधवा विवाह " की नई रीति चलाऊँगा ।

मनोरमा ने ऊँची सांस लेकर कहा—" पशुपति ! ये सब मेरे केवल स्वप्न ही हैं। यदि तुम राजा बनोगे तो मेरे साथ यह प्रेम नहीं रखोगे। मैं कभी तुम्हारी रानी नहीं हो सकती। "

प०। क्यों मनोरमा ?

म०। क्यों ? राज्यभार लेकर क्या तुम मुझे प्यार करोगे ? राज्य ही तुम्हारे हृदय में प्रधान स्थान पावेगा। तब तुम मेरा अनादर करोगे। यदि तुम मुझे प्यार नहीं करोगे, तो मैं क्यों तुम्हारी स्त्री बनने की फांस में पड़ी रहूंगी ?

प०। तुम यह बात मन में क्यों लाती हो ? "पहले तुम, पीछे राज्य " यही बात बहुत दिनों तक बनी रहेगी।

म०। यदि राजा होकर यह काम करो, और राज्य से अधिक रानी को प्यार करो, तो तुम राज्य नहीं कर सकते। तुम राज्य से गिराये जाओगे। स्त्री में लगे हुए राजा का राज्य नहीं रहता।

पशुपति आदरभरी दृष्टि से मनोरमा का मुंह देखने लगे फिर बोले " जिस की बाईं तरफ ऐसी सरस्वती हैं, उस को क्या डर है ? नहीं तो वही हो। तुम्हारे लिये राज्य भी छोड़ूंगा।

म०। तब राज्य क्यों लेते हो ? छोड़ने के लिये लेने में क्या फल है ?

प०। तुम्हारे साथ ब्याह।

म०। वह आशा छोड़ दो। तुम राज्य लोगे, तो मैं कभी तुम्हारी पत्नी नहीं बनूंगी।

प०। क्यों मनोरमा ! मैं ने क्या अपराध किया है ?

म०। तुम विश्वासघातक हो। मैं विश्वासघातक पर कैसे भक्ति करूँगी? कैसे विश्वासघातक को प्यार करूँगी?

प०। क्यों? मैं ने किस के साथ विश्वासघात किया है?

म०। तुम अपने पालन करनेवाले स्वामी को राज्यच्युत करने का विचार करते हो। शरण में आये हुए राजपुत्र को मारने का विचार करते हो। क्या यह विश्वासघात का काम नहीं है? जिस ने स्वामी का विश्वास नष्ट कर दिया, वह स्त्री के साथ क्या विश्वास-घात नहीं करेगा?

पशुपति चुप हो गये। मनोरमा फिर कहने लगी—"पशुपति! मैं विनय करती हूँ, इस नीच विचार को छोड़ो।

पशुपति ने पहले ही की भांति फिर सिर झुका लिया। उन को राज्य लेने की और मनोरमा से प्रीति करने की, दोनों की इच्छाएँ बहुत बड़ी थीं। राज्यपाने का यत्न करने से मनोरमा का प्रेम नष्ट हो जायगा। वह भी छोड़ने के लायक नहीं है। इन दोनों संकटों में पड़ कर उन के हृदय में उद्वेग बड़ा उत्पन्न हुआ। उन की बुद्धि की स्थिरता दूर होने लगी।

"यदि मैं मनोरमा को पा जाऊं तो भीख मांगना भी अच्छा है, राज्य से क्या काम?" इसी प्रकार बारम्बार मन में इच्छा उत्पन्न होने लगी। फिर उसी समय विचारने लगे. "पर इस के होने से जगत् में निन्दा होगी। जनसमाज में कलंक लगेगा। जातिभ्रष्ट होगी। सब लोग घृणा करेंगे। इन बातों को कैसे सहूंगा?" पशुपति चुप रहे। कोई उत्तर न दे सके।

मनोरमा उत्तर न पा कर कहने लगी। "सुनो पशुपति! तुम

ने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। मैं चलती हूं। पर यह प्रतिज्ञा करती हूं कि विश्वासघातक के साथ इस जन्म में भेंट न करूंगी।"

यह कह कर मनोरमा पीछे लौटी। पशुपति रोने लगे। तुरत ही मनोरमा फिर आई। आकर उस ने पशुपति का हाथ पकड़ लिया। पशुपति उस का मुंह चाह से देखने लगे। उन ने देखा कि तेज तथा गर्व से भरी हुई, टेढ़ी लहरों को उछालनेवाली अब सरस्वती नहीं है। वह प्रतिभा देवी कहीं अन्तर्धान हो गई। फूलों के समान सुकुमारी बालिका उन के साथ रो रही है।

मनोरमा ने कहा—"पशुपति! रोते क्यों हो?"

पशुपति ने आंखों का आंसू पोंछ कर कहा—"तुम्हारी बात पर।"

म०। क्यों? मैं ने क्या कहा है?

प०। तुम मुझ को छोड़ कर जा रही हो।

म०। अब मैं ऐसा न करूंगी।

प०। तुम मेरी रानी बनोगी?

म०। बनूंगी।

पशुपति का आनन्द सागर उछलने लगा। दोनों की आंखों में आंसू भरे हैं। आपस में परस्पर टकटकी लगाये एक दूसरे का मुंह देख रहा है। अचानक ही मनोरमा चिड़िये के समान उड कर चली गई।

—:o:—

## दशम परिच्छेद।

### फंदा ।

पहले ही मैं ने कह दिया है कि बावली के तीर पर से ही हेमचन्द्र मनोरमा के पीछे होकर यवन को ढूंढ़ने के लिये चले। मनोरमा ने धर्म्माधिकारी पशुपति के घर से कुछ दूर पहले ही हेमचन्द्र से कहा—"सामने यह अटारी देखते हो ?"

हे०। देखता हूं।

म०। इसी मकान में यवन गया है।

हे०। क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर बिना दिये ही मनोरमा ने कहा—"तुम इसी जगह पेड़ की ओट में खड़े रहो। यवन को इसी रास्ते जाना पड़ेगा।

हे०। तुम कहां जाओगी ?

म०। मैं इसी घर में जाऊंगी।

हेमचन्द्र ने यह बात मान ली। मनोरमा की चाल देख कर कुछ अचम्भे में पड़ गये। उस की राय के मुताबिक रास्ते के बगल में पेड़ की ओट में छिप कर खड़े हो गये। मनोरमा गुप्तमार्ग से उस गुप्तगृह में घुस गई।

इसी समय शान्तशील पशुपति के घर आया, उस ने देखा कि एक आदमी पेड़ की ओट में छिप गया। शान्तशील संदेह से उस पेड़ के नीचे गया। उस ने वहां जा कर चोर के धोखे से कहा—

"तुम कौन हो? यहां क्या करते हो?" फिर उसी समय हेमचन्द्र का अनमोल मणियों से सुशोभित वीर वेष देख कर कहा—"आप कौन हैं?"

हेमचन्द्र ने कहा—"मैं कोई होऊं, इस से क्या?"

शा०। आप यहां क्या कर रहे हैं?

हे०। मैं यहां मुसलमान को ढूंढ़ता हूं।

शान्तशील ने आगे से आ कर कहा—"मुसलमान कहां है?"

हे०। इसी घर में गया है।

शान्तशील ने डरे हुए के समान स्वर से कहा—"इस घर में क्यों?"

हे०। यह मैं नहीं जानता।

शा०। तब आप ने कैसे जाना कि, "इस घर में मुसलमान गया है?

हे०। यह सुन कर तुम क्या करोगे?

शा०। यह घर मेरा है। यदि मुसलमान इस घर में गया है तो कोई बुराई करने ही के विचार से गया है। इस में सन्देह नहीं। आप वीर और यवनों के शत्रु जान पड़ते हैं। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ आइये। दोनों चोर को पकड़ेंगे।

हेमचन्द्र उस की बात मान कर उस के साथ हो गये। शान्तशील, सिंह-द्वार के रास्ते पशुपति के घर में हेमचन्द्र को ले कर चला गया और एक चौक के भीतर जाकर उस ने कहा—"इसी घर में मेरा सोना, मणि आदि सभी चीजें हैं।" आप यहां पहरा दीजिये। मैं तब तक ढूंढ़ूं कि, "मुसलमान कहां छिपा हुआ है।"

यही बात कह कर शान्तशील उस चौक से बाहर निकल गया और हेमचन्द्र के उत्तर देने के पहले ही बाहर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। हेमचन्द्र फंदे में पड़ कर कैदी हो गये।

---

# एकादश परिच्छेद।

## मुक्त ( छूट गये )

मनोरमा पशुपति के पास से विदा होते ही जल्दी के साथ पैर बढ़ाती हुई "चित्रगृह" में आई। पशुपति के साथ शान्तशील की बातें होने के समय ही मनोरमा ने सुना कि, 'इस घर में हेमचन्द्र कैद हैं।' आते ही उस ने "चित्रगृह" का द्वार खोल कर हेमचन्द्र से कहा—'हेमचन्द्र! बाहर निकल आओ।"

हेमचन्द्र घर से बाहर हुए। मनोरमा उन के साथ २ आई। तब हेमचन्द्र ने मनोरमा से पूछा—"मैं क्यों रोका गया था?"

म०। यह पीछे कहूँगी।

हे०। जिस ने मुझ को कैद किया था वह कौन है?

म०। शान्तशील।

हे०। शान्तशील कौन है?

म०। चोरों को पकड़नेवाला।

हे०। क्या यही उस का घर है?

म०। नहीं।

हे० । यह किस का घर है ?

म० । पीछे कहूंगी ।

हे० । मुसलमान कहां गया ?

म० । पलटन में चला गया ।

हे० । पलटन में कितने मुसलमान हैं ?

म० । पच्चीस हज़ार ।

हे० । उन लोगों की पलटन कहां है ?

म० । महावन में ।

हे० । महावन कहां है ?

म० । इस नगर से उत्तर कुछ दूर पर ।

हेमचन्द्र गालों पर हाथ रख कर सोचने लगे ।

मनोरमा ने कहा—" सोचते क्यों हो ? क्या उन लोगों के साथ लड़ोगे ?"

हे० । पच्चीस हजार आदमी के साथ एक आदमी का लड़ना सम्भव है ?

म० । तब क्या करोगे ? घर लौट जाओगे ?

हे० । इस समय घर नहीं जाऊंगा ।

म० । कहां जाओगे ?

हे० । महावन ।

म० । जब लड़ाई नहीं करोगे तब महावन क्यों जाओगे ?

हे० । मुसलमानों को देखने के लिये ।

म० । यदि लड़ाई नहीं करोगे, तो देख कर क्या होगा ?

हे० । देख कर जान सकूंगा कि किस उपाय से उन लोगों को मार सकूंगा ।

मनोरमा घबड़ा उठी । और बोली—" बीस हज़ार आदमियों को मारोगे ? क्या सर्वनाश करोगे ? छिः ! छिः !

हे० । मनोरमा ! तुम ने ये सब समाचार कहां पाये हैं ?

म० । और भी समाचार है । आज रात को तुम को मारने के लिये तुम्हारे घर डाकू आवेंगे । आज घर मत जाओ ।

यह कह कर मनोरमा बड़े ज़ोर से भागी ।

—:o:—

## द्वादश परिच्छेद ।

### अतिथि सत्कार ।

हेमचन्द्र घर आकर एक सुन्दर घोड़े को सजकर उस पर चढ़ गये । और घोड़े को चाबुक मार कर महाबन की ओर चले । पहले नगर के पार हो गये, उस के बाद उस चौहद्दी के पार हुए । फिर चौहद्दी से भी कुछ आगे निकल गये । इसी समय अचानक ही उन के कंधे पर बहुत भारी चोट लगी । उन ने देखा कि " मेरे कंधे में एक तीर गड़ गया है । " पीछे से घोड़ों की टाप भी सुन पड़ी । फिर कर देखा कि तीन ' घुड़सवार ' आ गये हैं ।

हेमचन्द्र घोड़ा का मुंह फिरा कर उन लोगों की राह देखने लगे । फिरते ही उन ने देखा कि सब घुड़सवारों ने मुझी को निशाना बना कर तीर तान लिये हैं । हेमचन्द्र ने शिक्षा की विचित्र

चतुरता से बरछे को घुमा कर उन के तीनों तीरों की चोट से एक ही समय में अपने को बचा लिया।

घुड़सवारों ने फिर एक बार तीरों को धनुष पर रखा। उन को रखते ही रोकते फिर तीन तीर चलाये।

इसी प्रकार लगातार वे लोग हेमचन्द्र पर बाण बरसाने लगे। उस समय हेमचन्द्र ने रत्नों से जड़ा हुआ ढाल हाथ में ले लिया। और उस को चारों ओर घुमा कर उस तीर की वर्षा को रोका। शायद दो एक तीर घोड़े को लगा पर आप बेदाग बच गये।

अचम्भे में पड़ कर घुड़सवार चुप हो गये। आपस में कुछ विचार करने लगे। हेमचन्द्र ने उसी मौके पर एक आदमी पर एक तीर छोड़ा। वह निशाना अचूक था। तीर एक घुड़सवार के सिर में घुस गया। वह उसी समय घोड़े की पीठ से फिसल कर भूमि पर गिर पड़ा।

इस के बाद दोनों घुड़सवार घोड़े को चाबुक मार कर दो बरछे उठा कर हेमचन्द्र की तरफ दौड़े। और बरछा फेंकने के लायक पास आकर उन ने बरछे फेंके। यदि वे दोनों हेमचन्द्र को निशाना बना कर बरछे को फेंकते, तो हेमचन्द्र अपनी विचित्र शिक्षा से उन को हटा देते। पर उन लोगों ने यह न कर के हेमचन्द्र के घोड़े को निशाना बना कर बरछे फेंके थे। उतनी दूर नीचे तक ले जाने में हेमचन्द्र को देर हो गई। एक का बरछा हटाया, पर दूसरे का बरछा घोड़े को लग गया। बरछा घोड़े की गरदन के नीचे तक घुस गया। उस चोट के लगते ही वह सुन्दर घोड़ा मरने के लिये ज़मीन पर गिर पड़ा।

खूब सीखे हुए सिपाही के समान उस गिरते हुए घोड़े से कूद कर हेमचन्द्र भूमि पर खड़े हो गये। और एक ही पलक में अपने हाथ [illegible] तलवार पर [illegible] को उठा कर मारी "[illegible] पिता का दिया हुआ बरछा [illegible] खून बिना पीये कभी नहीं जाएगा।" [illegible] को इस [illegible] समाप्त होते ही होंठ चबा कर एक घुड़सवार ज़मीन पर गिर पड़ा।

यह देख कर तीसरा घुड़सवार घोड़े का मुंह फेर कर बड़े ज़ोर से भागा।

हेमचन्द्र ने थोड़ा सा समय पा कर अपने कंधे से तीर निकाल लिया। तीर कुछ अधिक मांस के भीतर तक घुस गया था। इस लिये तीर के खींचते ही बहुत खून बहने लगा। हेमचन्द्र अपने कपड़े से बांध कर खून रोकने लगे, पर वह बेफायदा हुआ। धीरे धीरे हेमचन्द्र खून के निकलने से निर्बल होने लगे। उस समय समझ गये कि "आज मुसलमानों की पलटन में जाना नहीं हो सकता। घोड़ा घायल हो गया है। अपना बल घट गया है। इसी लिये उदास हो कर धीरे धीरे नगर की ओर लौटने लगे।

हेमचन्द्र उस चकले के पार हो गये। उस समय शरीर अपने बस में न रहा। खून की धार से सारा शरीर भीग गया, चलने की शक्ति घट गई। बड़े दुःख से नगर में पहुंचे और चल न सके। एक झोंपड़ी के पास बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गये। उस समय रात बीत रही थी। भोर हो रहा था। रात को जागना, सारी रात मेहनत करना और खून के गिरने से कमज़ोरी, इन सब

कारणों से हेमचन्द्र की आंखों में पृथिवी घूमने लगी। उन ने पेड़ को जड़ में पीठ लगा दी। आंखें मुंद गईं। नींद की प्रबलता हुई। बेहोशी बढ़ गई। नींद के झोंके में सोने पर उन ने सुना कि, कोई गा रहा है।

" निठुर विधाता ने मृणाल को कांटों से छिदवाया है। "

—:o:—

## तृतीय खण्ड।

—o—

# प्रथम परिच्छेद।

### वे तुम्हारे कौन हैं ?

जिस झोपड़ी के पास पेड़ के नीचे बैठ कर हेमचन्द्र विश्राम करते थे उसी झोपड़ी में एक मल्लाह रहता था। उस झोपड़ी में तीन घर थे। एक घर में मल्लाह की रसोई बनती थी। दूसरे घर में उस की स्त्री अपने सब बच्चे बच्चियों को ले कर सोती थी। तीसरे घर में मल्लाह की युवती कन्या रत्नमयी और दूसरी दो स्त्रियां सोती थीं। वे दोनों स्त्रियां पाठकों की पहचानी हुई हैं। मृणालिनी और गिरिजाया नवद्वीप में ठहरने के लिये दूसरी जगह न पा कर यहां ही ठहरी थीं।

भोर होते ही बारी बारी से तीनों स्त्रियां जगीं। पहले रत्नमयी जगी। उस ने गिरिजाया को पुकारा "सखी!"

गि०। "क्या सखी?"

र०। तुम कहां हो सखी?

गि०। बिछौने पर, सखी!

र०। उठो न सखी!

गि०। नहीं सखी!

र०। बदन पर पानी डालंगी, सखी!

गि० । जाओ सखी ! अच्छा सखी ! वही सही ।

र० । नहीं तो क्यों छोड़ूँगी ?

गि० । छोड़ोगी क्यों ? तुम मेरे प्राणों की प्यारी सखी हो। तुम्हारे बराबर कोई है ? तुम ऊँचे दर्जे की रसमयी हो। यदि तुम्हीं न कराओगी तो दूसरा कौन करेगा ?

र० । सखी ! तुम बातें बनाने में बड़ा जीतनेवाली हो । मैं तुम्हारे सामने लड़की हूं, और बातें नहीं मिला सकती ।

गि० । और मिलाना चाहिये ।

र० । " तुम्हारे मुंह में धूल । और बातें बनाने वा मिलाने की जरूरत नहीं है । मैं अपने काम में जाती हूं । "

'यह कह कर रसमयी घर का कामकाज करने के लिये चली गई । मृणालिनी ने अब तक कुछ नहीं कहा । अब गिरिजाया ने मृणालिनी को पुकार कर कहा " ठकुरानी ! जगी हो ? "

मृणालिनी ने कहा—"जगी ही हूं, और जगी ही रहती हूं ।'

गि० । क्या सोच रही हो ?

मृ० । जो ही सोचूं ।

तब गिरिजाया ने गंभीर भाव से कहा " क्या करूं ? मेरा दोष नहीं है । मैं ने सुना है कि वे इसी नगर में हैं । अब तक उन की सुधि न मिली । हम लोग तो सब दो ही तीन दिन रहेंगी । इस से अब बहुत जल्दी ढूंढूंगी ।

मृ । गिरिजाया ! यदि इस नगर में उन का पता न लगेगा तो इसी के घर में मरने तक रहना होगा, क्योंकि मेरे जाने के लिये कोई दूसरा स्थान नहीं है ।

मृणालिनी ने तकिये मे मुह लुका लिया। गिरिजाया के गालों पर भी धीरे धीर आंसू बहने लगे।

इसी समय रत्नमयी ने बड़ी घबड़ाहट के साथ घर में आकर कहा "सखी! सखी! देखजाओ। मेरे बरगद के पेड़ के नीचे कौन सोया है। वह एक बिचित्र ही पुरुष है।"

गिरिजाया झोपड़ी के दरवाज़े पर निकल कर देखने आई। मृणालिनी ने झोपड़ी के दरवाज़े ही तक आकर देखा। दोनों ही ने देखते ही पहचान लिया।

समुद्र अचानक ही उछल उठा। मृणालिनी गिरिजाया के गले में लिपट गई गिरिजाया गाने लगी।

"निठुर विधाता ने मृणाल को कांटों से छिदवाया है" वह ध्वनि हेमचन्द्र के कानों में स्वप्न के समान जाकर पड़ी। मृणालिनी ने गिरिजाया के गले की खुजाल (गाने की प्रबल इच्छा) देख कर कहा "चुप राक्षसी! हम लोगों को दिखलाई न देनी ही अच्छी है। देख वह जग रहे हैं। इस ओर खड़ी हो कर देख, वे क्या करते हैं। वे जहां जावें वहां छिप कर दूर ही दूर उन के साथ जा। यह क्या? उन का शरीर खून में क्यों भींग गया है? चल! तब मैं भी साथ चलूंगी।"

हेमचन्द्र की नींद खुल गई। भोर होते देख वे बरछे के सहारे किसी तरह उठे और धीरे धीरे घर की ओर चले।

हेमचन्द्र के कुछ दूर चले जाने पर मृणालिनी और गिरिजाया उन का पता लगाने के लिये घर से निकलीं। उस समय रत्नमयी ने पूछा "ठकुरानी! ये तुम्हारे कौन हैं?"

मृणालिनी ने कहा "परमेश्वर जाने।"

---

# द्वितीय परिच्छेद ।

---

## प्रतिज्ञा-पर्वतो बन्हिमान ।

हेमचन्द्र विश्राम करने के बाद कुछ सवल हो गये थे। खून का गिरना भी कुछ कम हो गया था। बरछे के सहारे हेमचन्द्र आप ही घर लौट आये। घर आकर उन ने देखा कि मनोरमा दरवाज़े पर खड़ी है।

मृणालिनी और गिरिजाया ने ओट में खड़ी हो कर मनोरमा को देखा।

मनोरमा चित्रित चित्र के समान खड़ी थी। देख कर मृणालिनी ने मन ही मन सोचा "यदि मेरे स्वामी रूप पर मोहित हो गये हैं" तो मेरी सुख रात्रि का प्रभात हो गया (मेरे सुख का अन्त हो गया) गिरजाया ने सोचा "यदि राजपुत्र रूप पर मोहित हैं तो मेरी ठाकुरानी का भाग्य फूट गया।"

हेमचन्द्र ने मनोरमा के पास आ कर कहा "मनोरमा! इस प्रकार क्यों खड़ी हो?"

मनोरमा ने कुछ भी न कहा हेमचन्द्र ने फिर पुकारा "मनोरमा! क्या हुआ है?"

तब मनोरमा ने धीरे २ आकाश की ओर से अपनी नजर हटा कर हेमचन्द्र के मुहं की ओर देखा, और कुछ देर तक टकटकी लगा कर उन्हीं की ओर देखने लगी। पीछे हेमचन्द्र के खून से

भागे हुए कपड़ों पर उस की नज़र पड़ी। उस समय मनोरमा अचम्भे में आ कर बोली "यह क्या हेमचन्द्र ? खून क्यों? तुम्हारा मुंह क्यों सूख गया है ?, क्या तुम घायल हो गये हो ?

हेमचन्द्र ने अंगुली के इशारे से कंधे की चोट दिखला दी।

तब मनोरमा हेमचन्द्र का हाथ पकड़ कर घर के भीतर पलंग पर ले गई; और थोड़ी देर में जल से भरी हुई एक झारी ला कर एक २ कर के कपड़े उतरवा कर शरीर का सब खून धो दिया। फिर गायों को लुभाने वाली हरी हरी दूबों को जमीन से काट कर, कुंदों की निन्दा करने वाले दांतों से कुचल डाला। फिर उस को जख्म पर रख कर कांखासूती कपड़े से बांध दिया। तब बोली "अब क्या करूं ? तुम सारी रात जगे हो सोओगे ?"

हेमचन्द्र ने कहा—"नींद न आने से बहुत ही दुखी हो गया हूं।"

मृणालिनी, मनोरमा का काम देख हृदय में चिन्तित हो कर गिरिजाया से बोली "यह कौन है ? गिरिजाया !"

गि०। इस का नाम मैं ने सुना है "मनोरमा।"

मृ०। क्या यह हेमचन्द्र की मनोरमा है ?

गि०। तुम क्या सोचती हो ?

मृ०। मैं समझती हूं मनोरमा ही भाग्यवती है। हेमचन्द्र की जो सेवा मैं न कर सकी, वह उस ने की। जिस काम के करने के लिये मेरा हृदय जल रहा है वह काम उस ने पूरा किया। देवता लोग इसे बहुत दिनों तक जिलावें। गिरिजाया ! मैं घर

चलती हूं। मेरा अधिक ठहरना उचित नहीं है। तुम इसी गोशाला के पास खड़ी रहो। "हेमचन्द्र कैसे रहते हैं" इस का समाचार ले कर आना। मनोरमा कोई हो। हेमचन्द्र मेरे ही हैं।

—:o:—

## तृतीय परिच्छेद।

—:o:—

### हेतुः धूमात्

मनोरमा और हेमचन्द्र जब घर में चले गये तब मृणालिनी को बिदा कर के गिरिजाया उपवनवाले घर की चारों ओर घूमने लगी। जहां जहां उस ने खिड़की खुली देखी वहां वहां सचेती के साथ सिर उठा कर घर के भीतर देखने लगी। एक कमरे में हेमचन्द्र को उस ने सोते हुए देखा। उस ने देखा कि उन के बिछौने पर मनोरमा बैठी है। गिरिजाया उसी खिड़की के नीचे बैठ गई। पहली रात को उसी खिड़की के रास्ते वह मुसलमान हेमचन्द्र को दिखलाई पड़ा था।

गिरिजाया का खिड़की के नीचे बैठने का मतलब यह था कि "हेमचन्द्र और मनोरमा से क्या बातें हो रही हैं। वह एकान्त में चुप चाप बैठ कर सुनूं।" पर हेमचन्द्र नींद में थे इस से कुछ भी बात चीत नहीं हुई। इस लिये अकेले चुपचाप उस खिड़की के नीचे बैठने में गिरिजाया को बड़ा दुःख हुआ। बात नहीं बोल

सकती थी, हंस नहीं सकती थी, और ताना भी नहीं दे सकती थी, इस से उसे बड़ा दुःख जान पड़ा। उस स्त्री की जीभ खुजला उठी। मनही मन सोचने लगी "वह पापी दिग्विजय भी न जाने कहां है? चला गया उस के मिलजाने से भी तो मुंह खुलता।" पर दिग्विजय तो स्वामी के काम में लगा हुआ था। उस से भी भेंट न हुई। तब दूसरे आदमी को न पा कर गिरिजाया ने आप ही आप बातें करना आरम्भ कर दिया। उसे सुनने के लिये पाठकों की इच्छा अवश्य बढ़ी होगी। इस लिये प्रश्न उत्तर के बहाने हम उसे बता सकते हैं। गिरिजाया ही प्रश्न करनेवाली और वही उत्तर देनेवाली थी?

प्र०। अरे! यह कौन बैठी है?

उ०। गिरिजाया।

प्र०। अजी तुम यहां क्यों बैठी हो?

उ०। मृणालिनी के लिये।

प्र०। अरी! मृणालिनी तुम्हारी कौन है?

उ०। कोई नहीं।

प्र०। तब उस के लिये तुम इतनी माथापच्ची क्यों करती हो?

उ०। मेरा और काम ही क्या है? बेकाम बैठी बैठी क्या करूं?

प्र०। मृणालिनी के लिये यहां क्यों आई?

उ०। यहां उस का एक तोता उड़ आया है।

प्र०। क्या तोते को पकड़ कर ले जाओगी?

उ०। यदि उस ने सीकली काट दी होगी तो पकड़ कर क्या करूंगी? या पकड़ूंगी ही कैसे?

प्र० । तब क्यों बैठी हो ?

उ० । देखती हूं कि उस ने सीकली काट दी है वा नहीं ?

प्र० । " काट दी है कि नहीं ? " यह जान कर क्या होगा ?

उ० । इस तोते के लिये मृणालिनी रोज़ रात को छिप २ कर रोती है न मालूम आज कितना रोएगी ? यदि अच्छा समाचार लेकर जाऊंगी तो उस की बहुत कुछ रक्षा हो सकेगी ।

प्र० । यदि सीकली कट गई होगी ?

उ० । तो मृणालिनी से कह दूंगी कि—चिड़िया हाथ से निकल गई । राधाकृष्ण का नाम सुनना चाहो तो अब बन की एक चिड़िया पकड़ कर ले आओ । पढ़ी पढ़ाई चिड़िये की आशा छोड़ दो। पींजरा खाली मत रखो ।

प्र० । मर ! भिखारिन की लड़की । तू अपने मन के लायक बात कहती है । यदि मृणालिनी क्रोध कर के पींजड़ा तोड़ कर फेंक दे तो ?

उ० । ठीक कहती है सखी ! यह तो वह कर सकती है । यह बात कहने की ज़रूरत नहीं है ।

प्र० । तब यहां बैठी बैठी धूप में पक कर क्यों मरती है ?

उ० । सिर में बहुत दर्द है इसी से । यह लड़की जो घर के भीतर बैठी है वह गूंगी है । नहीं तो अब तक भी क्यों नहीं बातें करती ? आदमी की लड़की का मुंह कभी बंद रह सकता है ?

कुछ देर के बाद गिरिजाया का मनोरथ सिद्ध हुआ । हेमचन्द्र की नींद खुली तब मनोरमा ने उन से पूछा " तुम को नींद कैसी आई ? "

हे० । खूब नींद आई ।

म० । "अब बताओ, कैसे तुम्हें चोट लगी ?" तब हेमचन्द्र ने रात की सारी बातें बहुत थोड़े में कह सुनाईं । सुन कर मनोरमा सोचने लगी ।

हेमचन्द्र ने कहा "जो तुम को पूछना था वह खतम हुआ । अब मेरी बातों का जवाब दो । कल रात को जब से तुम मेरा साथ छोड़ कर चली गईं तब से जो जो बातें हुईं वह सब कहो ।"

मनोरमा ने धीरे धीरे क्या कहा, उस को गिरिजाया न सुन सकी । उस ने समझा कि "चुप के से कोई बात हुई है ।"

गिरिजाया और कोई बात न सुन सकी इस से उठ खड़ी हुई । तब फिर उस के मन में प्रश्न और उत्तर होने लगे ।

प्र० । क्या समझा ?

उ० । सिर्फ दो चार बातें ।

प्र० । कौन कौन सी बातें ?

गिरिजाया अंगुलियों पर गिनने लगी । पहली बात लड़की अद्भुत सुन्दरी है । आग के पास क्या घी गाढ़ा रह सकता है ? दूसरी मनोरमा तो हेमचन्द्र को प्यार करती है नहीं तो इतना यत्न क्यों करती ? तीसरी—एक जगह रहना । चौथी—एक ही साथ रात को घूमना । पांचवीं—चुपके २ बातें करना ।

प्र० । मनोरमा प्यार करती है । इस में हेमचन्द्र का क्या ?

उ० । क्या हवा के न रहने पर जल में लहरें उठती हैं ? यदि मुझ को कोई प्यार करे, तो मैं भी उसे प्यार जरूर करूंगी । इस में सन्देह नहीं ।

प्र०। पर मृणालिनी भी तो हेमचन्द्र का प्यार करती है तब तो हेमचन्द्र भी मृणालिनी को प्यार करते होंगे।

उ०। ठीक है। पर मृणालिनी यहां मौजूद नहीं है और मनोरमा यहां मौजूद है।

यह सोच कर गिरजाया धीरे धीरे उस घर के दरवाजे पर आ कर खड़ी हो गई। फिर एक गीत आरम्भ कर के बोली "भीख दो मा!"

---

## चतुर्थ परिच्छेद।

---

### उपनय—वन्हि व्याप्यो धूमवान्।

---

गिरिजाया गीत गाने लगी—

"सखी किमि जिवन मरन को है विधान। व्रज किशोर कहँ भगे सखीरी, व्रजजन को निकरत है प्रान॥"

गाने की आवाज़ हेमचन्द्र के कानों में पड़ी। वह स्वप्न में सुने हुए शब्द के समान सुन पड़ा।

गिरिजाया ने फिर गाया—

"व्रजकिशोर कहँ भगे सखीरी, व्रजनारिन को निकरत है प्रान।"

हेमचन्द्र सिर उठा कर सुनने लगे।

गिरिजाया ने फिर गाया—

मिलि गई नारी भूल्यो मोहन, रूप विहीन गोप की कांरी।
को जाने सखि, रसमय प्रेमी, हैं हरिरूप भिखारी॥

हेमचन्द्र ने कहा—"यह क्या? मनोरमा! क्या यह गिरिजाया का स्वर है? मैं जाता हूं।" यह कह कर, कूद कर, हेमचन्द्र पलंग से उतर खड़े हो गये।

गिरिजाया गाने लगी—

प्रथम न जानी, देखि भुलानी, युग पद हिय महं धारी।
सखि यमुना में अब डूबूंगी, पी विष प्रान निकारी॥

हेमचन्द्र गिरिजाया के पास आ कर खड़े हो गये, और घबड़ा कर बोले "गिरिजाया! यह क्या गिरजाया? तुम यहां? तुम यहां कैसे आई? तुम इस देश में कब आ गई?"

गिरिजाया ने कहा "मैं यहां बहुत दिनों से रहती हूं।" यह कह कर फिर गिरिजाया गाने लगी—

वन की बेली, गले डाल कर, नव तमाल में डरिहों फांसी।

हेमचन्द्र ने कहा "तुम इस देश में क्यों आई?"

गिरिजाया ने कहा—"भीख ही मेरी जीविका है। राजधानी में अधिक भीख पाऊंगी यही सोच कर यहां आई हूं।"

वन की बेली, गले डाल कर, नव तमाल में देहों फांसी।

हेमचन्द्र ने गीत की ओर कान न दे कर कहा—"मृणालिनी कैसी है? तुम देख कर आई हो?"

गिरिजाया गाने लगी—

श्याम श्याम कहि श्याम श्याम जपि, तब जारौं करि ३
की रासी ॥

हेमचन्द्र ने कहा "तुम अपना गीत बंद करो। मेरी बात
जवाब दो। मृणालिनी कैसी है, उसे देख कर आई हो?"

गिरिजाया ने कहा " मैं मृणालिनी को देख कर नहीं आई
यह गीत आप को अच्छी नहीं लगती तो दूसरा गीत गाती हूं

" साध मम इस जन्म में हो, पूर्ण होगी सखि! कहो।
या पुरेगी दूसरे ही जन्म में यह क्या अहो॥ "

हेमचन्द्र ने कहा " गिरिजाया, मैं तुम से प्रार्थना करत
गाना बन्द करो, मृणालिनी का समाचार कहो। "

गि०। क्या कहूं?

हे०। मृणालिनी को देख कर क्यों नहीं आई?

गि०। गौड़नगर में वह नहीं हैं।

हे०। क्यों, कहां चली गई?

गि०। मथुरा।

हे०। मथुरा? मथुरा किस के साथ गईं? कैसे गईं क्यों?

गि०। उन के पिता किसी तरह पता पाकर, आदमी भेज
लिवा ले गये। मैं समझती हूं उन का व्याह हो रहा है।
समझ में व्याह ही कर देने के लिये लिवा ले गये हैं।

हे०। क्या? क्या करने के लिये?

गि०। मृणालिनी का व्याह कर देने के लिये उन के
उन को लिवा ले गये हैं।

हेमचन्द्र ने मुह फेर लिया। गिरिजाया वह मुह न देख सकी। और जो हेमचन्द्र के कंधे पर जख्म का मुंह खुल कर बंधन का कपड़ा खून से भींग रहा था उस को भी न देख सकी। उस ने पहले ही की भांति गाया—

" हे विधे ! सुन साध मेरी, जन्म दो यदि फिर कभी।
जन्म नारीदेह में जो? दो हमारा तुम जभी॥
लाज भय तजि साध अपनी, पूर्ण कर लूंगी भले।
सिंधु सो लै रत्न यह मैं राखिहों निसिदिन गले॥"

हेमचन्द्र ने मुंह फिरा कर कहा—" गिरिजाया ! तुम्हारा यह समाचार बड़ा शुभ है, उत्तम है।

फिर यह कह कर हेमचन्द्र घर में घुस गये। गिरिजाया के सिर पर आकाश टूट पड़ा। गिरिजाया ने मन में सोचा कि मृणालिनी के ब्याह की झूठी बात कह कर हेमचन्द्र की परीक्षा कर के देखूंगी। मन में सोचा था कि मृणालिनी के ब्याह की बात सुनकर हेमचन्द्र बहुत घबड़ायंगे और बहुत क्रोध करेंगे। यह तो कुछ भी नहीं हुआ। उस समय गिरिजाया ने सिर पीट कर सोचा " हाय ! क्या किया? क्यों बेफायदा यह झूठी बात कही? हेमचन्द्र को तो दुखी देखती हूं। वह " यह शुभ समाचार है " कह कर चले गये। अब ठकुरानी की क्या दशा होगी ? हेमचन्द्र ने गिरिजाया से " क्यों यह शुभ समाचार है " ऐसा कहा है, इस बात को भिखारिन गिरिजाया क्या समझ सकेगी ? जिस हेमचन्द्र ने क्रोध से भर कर इसी मृणालिनी के लिये गुरुदेव के ऊपर तीर ताना था ! वही दुर्जय क्रोध पैदा हो गया। अभिमान की अधिकता

से उस असह्य क्रोध के वेग में हेमचन्द्र ने गिरिजाया से कहा " तुम्हारा यह समाचार शुभ है। "

गिरिजाया उस को न समझ सकी। मन में सोचा कि यह छठां लक्षण है। किसी ने उस को भीख न दी। उस ने भी भीख की राह न देखी। " लोतें की सीकली काट दी गई है ?" निश्चय करके घर की ओर चली।

—o—

## पञ्चम परिच्छेद।

—:o:—

### और एक समाचार।

—:o:—

उसी दिन माधवाचार्य का घूमना समाप्त हुआ। वे नवद्वीप में आ पहुंचे और उन ने अपने प्रिय शिष्य हेमचन्द्र को अपना दर्शन दे कर कृतकृत्य किया। फिर आशीर्वाद दे कर, छाती से लगा कर, कुशल समाचार पूछने के बाद, एकान्त में दोनों चले गये। वहां अपना मतलब पूरा करने के लिये आपस में बातचीत होने लगी।

अपने घूमने का समाचार कहने के बाद माधवाचार्य ने कहा— "इतना घूम कर अपना कितना काम साधा ?" इस देश के अधीन राजाओं में बहुत से राजाओं ने लड़ाई के मैदान में सेना के साथ

आ कर सेनराजा की सहायता करनी स्वीकार कर ली है। बहुत ही जल्द सब लोग आ कर नवद्वीप में इकट्ठे हो जायँगे।

हेमचन्द्र ने कहा—"वे लोग यदि आज ही न आ जायँगे, तो सब व्यर्थ हो जायगा। यवनसेना आ गई है और महावन में ठहरी हुई है। वह आज कल ही में शहर पर हमला करेगी।

माधवाचार्य सुन कर कांप उठे। फिर बोले—"गौड़ेश्वर की ओर से क्या सामान हुआ है?"

हे०। कुछ भी नहीं। जान पड़ता है कि राजा के पास यह समाचार अब तक पहुंचा ही नहीं। मुझे संयोगवश यह समाचार मिल गया है।

मा०। यह बात राजा से कह कर तुम ने कोई अच्छी राय क्यों न दी?

हे०। समाचार पाते ही रास्ते में डाकुओं से चोट खा कर प्रधान सड़क पर गिर गया। इसी हालत में घर आ कर कुछ विश्राम किया है। निर्बलता से राजा के पास नहीं जा सकता। अभी जाता हूं।

मा०। "तुम इस समय विश्राम करो। मैं राजा के पास जाता हूं। पीछे जैसा होगा, तुम से कह दूंगा।" यह कह क माधवाचार्य उठ खड़े हुए।

तब हेमचन्द्र ने कहा "प्रभो! आप गौड़ तक गये थे? सुना है—माधवाचार्य ने उन का मतलब समझ कर कहा—"मैं गया था। तुम मृणालिनी का समाचार जानना चाहते हो? मृणालिनी वहां नहीं है।"

हे० । कहां चली गई है ?

मा० । यह मैं नहीं जानता । कोई समाचार न दे सका ।

हे० । क्यों चली गई ?

मा० । बेटा ! ये सब बातें युद्ध के बाद कहूंगा ।

हेमचन्द्र ने भौंहें टेढ़ी कर के कहा " ठीक समाचार बता देने से मैं दुःख से घबड़ा जाऊंगा, यह शंका मत कीजिये । मैं ने भी कुछ सुना है । जो आप को मालूम है, उस को संकोच छोड़ कर मुझ से कहिये । "

जब माधवाचार्य गौड़नगर में गये थे, तब हृषीकेश ने अपने विचार के अनुसार मृणालिनी का चरित्र जैसा समझा था वह सब कह सुनाया । माधवाचार्य ने भी उसे ही सच्च समाचार समझ लिया था । माधवाचार्य ने कभी स्त्री से प्रेम नहीं किया था। इस लिये वे स्त्री का चरित्र नहीं समझते थे । इस समय हेमचन्द्र की बात सुन कर उन ने समझा कि हेमचन्द्र ने सही समाचार थोड़ा बहुत सुन कर मृणालिनी की चाह छोड़ दी है । इसी कारण मन में कोई नया दुःख होने की आशा नहीं है यही समझ कर आसन पर बैठ कर वह हृषीकेश की कही हुई सब बातें खुलासा कर के हेमचन्द्र को सुनाने लगे ।

हेमचन्द्र ने भौंहें टेढ़ी कर के, सिर झुका कर, माथा हथेली पर रख कर चुपचाप सब समाचार सुन लिया । माधवाचार्य की कथा के समाप्त हो जाने पर भी हेमचन्द्र ने कुछ नहीं कहा— उसी हालत में बैठे रहे । माधवाचार्य ने पुकारा " हेमचन्द्र ! " पर उन ने कुछ जवाब नहीं पाया । फिर भी पुकारा "हेमचन्द्र !" तो भी कुछ जवाब नहीं मिला ।

तब माधवाचार्य ने खड़े हो कर हेमचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बड़े कोमल तथा स्नेहभरे स्वर से कहा—" बेटा ! हेम ! सिर उठाओ। मेरे साथ बातचीत करो। "

हेमचन्द्र ने सिर उठाया। मुंह देख कर माधवाचार्य डर गये। माधवाचार्य ने कहा—" मुझ से बोलो, क्यों क्रोध हुआ है वह भी तो कहो।

हेमचन्द्र ने कहा—" किस की बात पर विश्वास करूं ? " हृषीकेश ऐसा कहते हैं और भिखारिन दूसरी ही बात कहती है।

माधवाचार्य ने कहा—"कौन भिखारिन ? उस ने क्या कहा है ?'

हेमचन्द्र ने बहुत ही थोड़े में जवाब दिया।

माधवाचार्य ने संकोचभरे स्वर से कहा—" हृषीकेश ही की बात झूठी मालूम पड़ती है। "

हेमचन्द्र ने कहा—" हृषीकेश ही की बात सच्ची जान पड़ती है। " वे उठ कर खड़े हो गये। उन ने पिता का दिया हुआ बरछा हाथ में ले लिया। उन का शरीर कांप रहा था। वे चुपचाप उस घर में टहलने लगे।

आचार्य ने पूछा—" क्या सोचते हो ? "

हेमचन्द्र ने हाथ का बरछा दिखा कर कहा—" मृणालिनी को इसी बरछे से घायल करूंगा। "

माधवाचार्य उन का मुंह देखते ही डर कर वहां से हट गये।

भोर को मृणालिनी यह कह कर चली गई थी कि " हेमचन्द्र मेरे ही हैं। "

---

## षष्ठ परिच्छेद।

---

## मैं तो पगली हूं

---

तीसरे पहर को माधवाचार्य लौटे। वे यह समाचार लाये कि धर्माधिकारी ने प्रगट किया है कि—यवनों की सेना आ गई है पर पहले के जीते हुए राज्य में विद्रोह की संभावना सुन कर यवनसेनापति संधि करने की इच्छा करते हैं। कल वे दूत भेजेंगे, दूत के आने की इन्तज़ार से कोई लड़ाई की तैयारी नहीं होती है। यह समाचार सुन कर माधवाचार्य ने कहा—"यह कुलाङ्गार राजा धर्माधिकारी की बुद्धि से नष्ट होगा।"

हेमचन्द्र के कानों में यह बात पड़ी कि नहीं सन्देह है। उन को उदास देख कर माधवाचार्य चले गये।

सांझ होने के पहले ही मनोरमा हेमचन्द्र के घर आई। हेमचन्द्र को देख कर मनोरमा ने कहा—"भाई! आज तुम ऐसे क्यों हुए हो?"

हे०। मैं कैसा हूं?

मनो०। तुम्हारा मुंह सावन के आकाश के समान अंधेरे से घिरा हुआ है और भादो की गंगा के समान क्रोध से भरा है। भौंहें इतनी टेढ़ी क्यों हैं? आंखों की पलकें क्यों नहीं गिरतीं? और देखती हूं कि आंखों में आंसू भरे हैं। क्या तुम रो रहे हो?

हेमचन्द्र मनोरमा का मुंह देखने लगे। फिर उन ने आंखें नीची कर लीं। अनन्तर आंखें उठा कर खिड़की की ओर देखा, फिर मनोरमा का मुंह टकटकी लगा कर देखने लगे। मनोरमा ने समझा कि आंखों की इस हालत का कोई मतलब नहीं जान पड़ता। जब कंठ में आई हुई बात न कहने को इच्छा होती है तभी आंखों की यह गति होती है। मनोरमा ने कहा "हेमचन्द्र! तुम क्यों दुखी हुए हो? क्या हुआ है? हेमचन्द्र ने कहा "कुछ नहीं।"

मनोरमा पहले कुछ न बोली, फिर आपही आप धीरे २ कहने लगी। "कुछ नहीं! मत कहो! छि! छि! हृदय के भीतर बिच्छू रखते हो?" कहते २ मनोरमा की आंखों से एक बूंद आंसू टपक पड़ा। फिर अचानक ही हेमचन्द्र के मुंह की ओर देख कर बोली "क्या मुझ से नहीं बोलोगे? मैं तो तुम्हारी बहिन हूं।

मनोरमा के मुख के भावों में और स्थिर आंखों से इतना यत्न, इतनी कोमलता और इतनी प्रीति प्रगट हुई कि हेमचन्द्र का हृदय पिघल गया। उन ने कहा "मुझे जो दुःख है वह बहिन से कहने के योग्य नहीं है।"

मनोरमा ने कहा "तब मैं तुम्हारी बहिन ही नहीं हूं।"

हेमचन्द्र ने कुछ भी जवाब नहीं दिया, तो भी आशायुक्त हो कर मनोरमा उन के मुंह की ओर देखने लगी। और बोली "मैं तुम्हारी कोई नहीं।"

हे०—"मेरा दुःख बहिन के सुनने के योग्य नहीं है और दूसरे के सुनने के योग्य भी नहीं है।"

हेमचन्द्र के कंठ का स्वर करुणा से भरा था और बहुत हं हृदय की वेदना प्रगट करने वाला था। वह मनोरमा के हृदय के भीतर जाकर टकरा गया और उसी समय वह स्वर पलट भी गया। आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। ओठों को काट कर हेमचन्द्र ने कहा "मुझे क्या दुःख है? दुःख कुछ भी नहीं है। मैं ने मणि के धोखे से काल सर्प को अपने गले में लिपटा लिया था। इस समय उस को निकाल कर फेंक दिया है।"

मनोरमा अब भी पहले ही की भांति हेमचन्द्र की ओर टक-टकी लगाये देख रही थी। धीरे २ उस के मुंह पर अतिमधुर और अतिकरुणा पूर्ण हंसी प्रगटित हुई। लड़कपन की ढिठाई आ पहुंची। सूर्य की किरणों से बढ़ कर दूसरी कौन किरण चमकीली है, जिस के ऊपर पड़ कर प्रतिमादेवी ने दिखाई दी? मनोरमा ने कहा "समझती हूं। तुम बिना समझे ही प्रेम करते हो, उसी का यह फल हुआ है।"

हे०—प्रेम करता था। ( हेमचन्द्र ने वर्त्तमान के बदले भूतकाल का प्रयोग किया ) इसी समय उन का मुख चुपचाप बहते हुए आंसुओं के जल में सराबोर हो गया।

मनोरमा ने उदासीनता के साथ कहा—"छिः! छिः! यह ठगी? जो दूसरे को ठगता है वही ठग कहलाता है। जो आत्मा को ठगता है उस का सर्वनाश हो जाता है। मनोरमा उदासीनता से अपने बिखरे बालों को चमरा के समान गोरी गोरी अपनी अंगुलियों से हटाने लगी।

हेमचन्द्र अचम्भे में पड़ गये और कहने लगे "मैं ने कौन सी कमी की है ?"

मनोरमा ने कहा "क्या तुम पहले प्रेम करते थे ? नहीं, अब भी तुम प्रेम करते हो। नहीं तो रोते क्यों हो? क्या आज तुम्हारी प्रेमिका अपराधिनी हुई है, यह समझ कर तुम्हारा प्रेम बढ़ गया है ? किस ने तुम को ऐसा ज्ञान दिया है ?" बोलते बोलते मनोरमा का मुंह युवती स्त्री के समान हो गया और उस मुंह की शोभा खिले हुए कमल के समान अचानक ही अधिक भाव से भरपूर होने लगी। आंखों से ज्योति अधिक हो कर निकलने लगी। गले की आवाज़ और भी साफ होने लगी और आग्रह बढ़ने लगा। मनोरमा बोलने लगी कि "यह केवल वीरता का अहंकार करने वाले पुरुषों का अहंकार है। अहंकार कर के आग बुझ जाती है। तुम बालू का बांध देकर दोनों किनारों को डुबाने वाली गंगा का वेग रोक सकते हो ? तोभी तुम प्रेमिका को अपने मन में पापिनी समझ कर कभी प्रेम के वेग को रोक नहीं सकते ? हा कृष्ण ! सभी मनुष्य ठग हैं।"

हेमचन्द्र अचंभे में आकर सोचने लगे "मैं ने एक दिन इस को बालिका समझा था।"

मनोरमा कहने लगी—तुम ने पुराण सुने हैं ? मैं ने पण्डितों से उन को कुछ कथाओं के साथ सुना है। लिखा है—भगीरथ गंगा को लाये थे। एक घमंडी मतवाला हाथी उन का वेग रोकने के लिये आ कर उसी में डूब गया। इस का अर्थ क्या है ? गंगा प्रेमप्रवाह स्वरूप हैं, वह जगदीश्वर के चरणकमलों से निकली हैं। वह जगत

में पवित्र हैं, जो इन में स्नान करता है वह पुण्य से भरपूर ह जाता है। ये मृत्युञ्जय ( शिवजी ) की जटा में विहार करने वाली हैं। जो मृत्यु ( मौत ) को जीत सके वही प्रेम को सिर पर धारण कर सके। मैं ने जैसा सुना है ठीक वैसा ही कहा है। वह घमंडी हाथी घमंड का अवतार स्वरूप है। वह प्रेम के वेग में डूब जाता है। पहले प्रेम स्वभाव सिद्ध होने पर सैकड़ों पापों में रक्खा जा सकता है। अंत में सागर के संगम में मिल जाता है। संसार के सब जीव विलीन हो जाते हैं।

हे०—तुम्हारे उपदेशक ने क्या कहा था? प्रेम के लिये योग्य अयोग्य नहीं है? क्या पापी से भी प्रेम करना चाहिये?

म०—पापी से भी प्रेम करना होगा। प्रेम के लिये योग्य अयोग्य कुछ नहीं है। सभी से प्रेम करना होगा। प्रेम के उत्पन्न हो जाने पर उस को उचित स्थान बड़े यत्न के साथ देना होगा। क्योंकि प्रेम अमूल्य है। भाई! जो अच्छा है उस को कौन प्यार नहीं करता? जो नीच है, उस को जो भूल कर भी प्रेम करता है मैं उसी को बहुत प्यार करता हूं। पर मैं तो पगली हूं।

हेमचन्द्र ने अचम्भे में आ कर कहा—"मनोरमा! यह सब तुम को किस ने सिखलाया है? तुम्हारे उपदेशक अलौकिक मनुष्य जान पड़ते हैं।"

मनोरमा ने सिर झुका कर कहा "वे सर्वज्ञ हैं पर—"

हे०—"पर" क्या?

म०—वे अग्निस्वरूप हैं। वे प्रकाश करते हैं और जलाते भी हैं। मनोरमा सिर झुका कर कुछ देर तक चुप रही।

हेमचन्द्र बोले "मनोरमा ! तुम्हारा मुंह देख कर और तुम्हारी बात सुन कर मुझ को ज्ञान पड़ता है कि तुम भी प्रेम करती हो। ज्ञान पड़ता है, जिस को तुम अग्नि के समान बताती हो उसे ही प्यार करती हो।"

मनोरमा अब भी कुछ न बोली। हेमचन्द्र फिर कहने लगे "यदि यह सच है तो मेरी एक बात सुनो। स्त्रियों का सतीत्व पातिव्रत्य ) से बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिस स्त्री को पातिव्रत्य नहीं है वह शूकरी से भी अधिक अधम है। सतीत्व की हानि केवल काम ही करने से नहीं होती बरन पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष को चिन्ता करने से भी होती है। तुम विधवा हो। यदि पति को छोड़ कर दूसरे को मन से भी याद करो तो तुम इस लोक और परलोक में भी स्त्रियों में अधम हो कर रहोगी। इसी लिये सावधान हो जाओ। यदि किसी पर तुम्हारा चित्त लगा हो तो उस को भूल जाओ।

मनोरमा बड़े जोर से हंसने लगी। फिर मुंह पर आंचल रख कर हंसने लगी। हंसी बंद नहीं हुई। हेमचन्द्र ने कुछ अप्रसन्न हो कर कहा 'क्यों हंसती हो ?"

मनोरमा ने कहा—भाई ! इस गंगा के तीर पर जा कर खड़े हो जाओ और गङ्गा को पुकार कहो "गङ्गा ! तुम पर्वत पर लौट जाओ।"

हे०—क्यों ?

म०—याद क्या अपने अधीन है ? राजपुत्र ! कालसर्प को याद करने में क्या सुख है ? पर तुम उस को क्यों नहीं भूल जाते ?

हे०—उस के काटने की ज्वाला के डर से।

म०—और यदि वह न काटे तो उस को भूल जाओगे ?

हेमचन्द्र ने जवाब नहीं दिया। मनोरमा कहने लगी "यदि तुम्हारी फूल की माला सांपिन हो गई तो भी तुम उसे भूल नहीं सकते। और मैं ! मैं तो पगली हूं। मैं अपनी पुष्पमाला क्यों छोड़ूंगी ?

हेमचन्द्र ने कहा "तुम एक तरह अनुचित भी नहीं कहती हो। भूलजाना अपनी इच्छा के अधीन नहीं है। सब लोग अपने पक्षपात से अंधे हो कर दूसरों को जो उपदेश करते हैं उन में 'भूल जाओ' इस उपदेश से बढ़ कर हंसी की दूसरी कोई बात नहीं है। जब कोई किसी से नहीं कहता कि "अर्थ की चिन्ता छोड़ो, यश की इच्छा छोड़ो, ज्ञान की पिपासा छोड़ो, भूख मिटाने की इच्छा छोड़ो, प्यास बुझाने की इच्छा छोड़ो और नींद छोड़ो, तब कोई यह क्यों कहेगा कि प्रेम छोड़ो ? क्या प्रेम इन सभी इच्छाओं से छोटा है ? प्रेम इन सब कामनाओं से कम नहीं है। किन्तु धर्म से अवश्य छोटा है। धर्म के लिये प्रेम का संहार करूंगा। स्त्री का बड़ा धर्म सतीत्व ही है। इसी लिये तुम से कहता हूं कि यदि कर सको तो प्रेम का संहार करो।"

म०—मै अबला, ज्ञानहीना और निबला हूं। मैं "धर्म वा अधर्म किस को कहते हैं ?" यह नहीं जानती। मैं इतना ही जानती हूं कि धर्म के बिना प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

हे०—सचेत हो जाओ मनोरमा ! इच्छा से भ्रम उत्पन्न होता है और भ्रम से अधर्म। तुम्हारा भ्रम पूरा हो गया है। तुम विचार

करो। देखो, यदि तुम धर्म से एक की पत्नी हो और मन से दूसरे की पत्नी बनो तो तुम व्यभिचारिणी हुई कि नहीं ?

घर में हेमचन्द्र की ढाल और तलवार लटक रही थी। मनोरमा ने हाथ में ढाल ले कर कहा "भाई हेमचन्द्र ! तुम्हारी यह ढाल किस का चमड़ा है ?'

हेमचन्द्र हंसने लगे। मनोरमा की ओर प्यार से देख कर सोचने लगे कि यह "बालिका" है।

---

# सप्तम परिच्छेद।

## गिरिजाया का समाचार।

गिरिजाया जिस समय मल्लाह के घर लौटी उसी समय उस ने "प्राणान्त होने पर भी हेमचन्द्र के नये प्रेम होने की कहानी मृणालिनी से न कहूँगी" यह स्थिर कर लिया था। मृणालिनी उस के आने की इंतज़ारी में पिंजड़े में फंसी हुई चिड़िये के समान चञ्चल हो रही थी। गिरिजाया को देखते ही बोली "कहो गिरिजाया ! क्या देखा ? हेमचन्द्र कैसे हैं ?"

गिरिजाया ने कहा "अच्छे हैं।"

मृ०—क्यों ? ऐसा मुंह बना कर क्यों कहती हो ? तुम्हारी बातों में उत्साह क्यों नहीं है कि जिस से ऐसी दुःखिनी हो कर बोलती हो ?

गि०—वह क्या ?

मृ०—गिरिजाया ! मुझे मत ठगो। क्या हेमचन्द्र अच्छे नहीं हैं ? यदि यह बात हो तो मुझ से साफ कहो। संदेह से अच्छा दृढ़ विश्वास ही है।

अब गिरिजाया हंस कर बोली—तुम व्यर्थ क्यों घबड़ाती हो ? मैं ठीक कहती हूं उन के शरीर में कुछ क्लेश नहीं है। वे उठ कर टहलते थे।

मृणालिनी कुछ देर सोच कर बोली "मनोरमा के साथ उन की कोई बातचीत सुनी ?"

गि०—सुनी।

मृ०—क्या सुनी ?

गिरिजाया ने उस समय हेमचन्द्र ने जो जो बातें कही थीं, सो सब कहीं, सिर्फ जो मनोरमा हेमचन्द्र के साथ रात को घूमी थी और जो उस ने हेमचन्द्र के कानों में कही थी, इन्हीं दोनों बातों को छिपाया। मृणालिनी ने पूछा "तुम ने हेमचन्द्र से मुलाकात की है ?"

गिरिजाया कुछ इधर उधर करने के बाद बोली "की है।"

मृ०—उन ने क्या कहा ?

गि०—तुम्हारी बात पूछी।

मृ०—तुम ने क्या कहा ?

गि०—मैं ने कहा "तुम अच्छी हो ?"

मृ०—"मैं यहां आई हूं" यह बात भी तुम ने कही ?

गि०—नहीं।

मृ०—" गिरिजाया ! तुम इधर उधर कर के जवाब देती हो। तुम्हारा मुंह सूखा हुआ है। तुम मेरी ओर अच्छी तरह देख नहीं सकती हो। इस से मैं निश्चय जानती हूं कि " तुम कोई अमंगल समाचार मुझ से छिपाती हो। " मैं तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं कर सकती। भाग्य में जो होना है सो हो। मैं आप ही हेमचन्द्र को देखने जाऊँगी। हो सके तो मेरे साथ तुम भी चलना। नहीं तो मैं अकेली जाऊँगी।" यह कह कर मृणालिनी घूँघट से मुंह छिपा कर तुरत ही वेग के साथ राजपथ पार कर के चली।

गिरिजाया उस के पीछे २ दौड़ी। कुछ दूर आकर उस का हाथ पकड़ कर बोली " ठकुरानी ! लौटो। मैं ने जो छिपाया था उसे कह देती हूं।

मृणालिनी गिरिजाया के साथ २ घर लौट आई। तब गिरिजाया ने जो छिपाया था उसे विस्तार के साथ कह दिया।

गिरिजाया ने हेमचन्द्र को ठग दिया था पर वह मृणालिनी को न ठग सकी।

—:*:—

## अष्टम परिच्छेद।

---

### मृणालिनी की चिट्ठी।

---

मृणालिनी ने कहा " गिरिजाया ! उस ने क्रोध कर के कहा है " अच्छा हुआ है। " यह सुन कर वे क्यों न क्रोध करेंगे ? "

गिरिजाया को भी उस समय संदेह हुआ। उस ने कहा " यह हो सकता है। "

तब मृणालिनी ने कहा " तुम ने यह बात कह कर अच्छा नहीं किया। इस का उपाय करना चाहिये। तुम भोजन करने जाओ, तब तक चिट्ठी लिख रखती हूं। तुम भोजन करने के बाद उस को लेकर उन के पास जाओ। "

गिरिजाया उस की बात मान कर भोजन करने के लिये चली गई। मृणालिनी ने एक छोटा सा पत्र लिखा। उस में लिखा—

" गिरिजाया झूठी है। जिस कारण उस ने तुम से मेरे बारे में झूठी बात कही है पूछने पर उस का कारण वह खुद बता देगी। मैं मथुरा नहीं गई। जिस रात को तुम्हारी अँगूठी देखकर यमुना के किनारे आई उसी रात से मेरे लिये मथुरा की राह बंद हो गई। मैं मथुरा न जाकर तुम को देखने के लिये नवद्वीप में आई हूँ। नवद्वीप में आकर भी आज तक मैं तुम से न मिली। उस का कारण यही है कि तुम से देखा देखी करने से तुम्हारी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी। मैं तुम को देखना चाहती हूं। क्या उस प्रतिज्ञा के सिद्ध हो जाने पर तुम से देखा देखी करने की ज़रूरत है? "

गिरिजाया यह चिट्ठी लेकर फिर हेमचन्द्र के घर की ओर चली। सांझ के समय मनोरमा के साथ बात चीत समाप्त होने के बाद हेमचन्द्र गंगाजी का दर्शन करने के लिये जा रहे थे। रास्ते ही में गिरिजाया से भेंट हो गई। गिरिजाया ने उन के हाथ में चिट्ठी दे दी।

हेमचन्द्र ने कहा " अब तुम क्यों आई?

गि०—चिट्ठी लेकर आई हूँ।

हे०—किस की चिट्ठी ?

गि०—मृणालिनी की चिट्ठी।

हेमचन्द्र अचंभे से बोले "यह चिट्ठी तुम्हारे पास कैसे आई ?"

गि०—मृणालिनी नवद्वीप में है। मैं ने मथुरा को बात आप से झूठी कही थी।

हे०—यह चिट्ठी उसी की है ?

गि०—हाँ ! उस के खुद हाथ की लिखी है।

हेमचन्द्र ने चिट्ठी न पढ़ कर उस को टुकड़े २ कर के चीर फाड़ डाला। सब टुकड़ों को वन में फेंक कर कहा "तुम जो झूठी हो सो इस से पहले ही सुन चुका हूँ। तुम जिस दुष्टा की चिट्ठी लेकर आई हो वह यदि विवाह करने के लिये नहीं गई तो हृषीकेश ने जो उस को घर से निकाल दिया उस को मैं पहले ही सुन चुका हूँ। मैं कुलटा की चिट्ठी नहीं पढ़ूँगा। तुम मेरे सामने से दूर हो जाओ।

गिरजाया कुछ न जवाब देकर हेमचन्द्र के मुंह की तरफ देखने लगी।

हेमचन्द्र रास्ते के किनारे लगे हुए एक छोटे पेड़ की पतली डाल तोड़ कर उसे हाथ में लेकर बोले "दूर हो, नहीं तो बेत से मारूँगा।"

गिरिजाया से अब न सहा गया। वह धीरे धीरे बोली "वीर पुरुष हो। ऐसी ही वीरता प्रकाश करने के लिये नवद्वीप में

आये हो ? यहां आने की कोई ज़रूरत न थी। यह वीरता मगध में भी बैठ कर दिखला सकते। मुसलमानों का जूता ढोते और गरीब की लड़कियों को बेत मारते।"

हेमचन्द्र ने अचंभे में आकर वह पतली डाल फेंक दी। तो भी गिरिजाया का क्रोध नहीं गया। उस ने कहा। "तुम मृणालिनी के साथ ब्याह करोगे? मृणालिनी तो अलग रहे। तुम मेरे वर होने के योग्य भी नहीं हो।"

यह कह कर गिरिजाया घमंड से मतवाले हाथी के समान चली गई। हेमचन्द्र भिखारिनी का घमंड देख कर चुप हो गये।

गिरिजाया ने लौट आकर हेमचन्द्र की सभी बातें मृणालिनी से विस्तार के साथ कहीं। अब की बार उस ने कुछ भी न छिपाया। मृणालिनी ने सुन कर कुछ भी जवाब नहीं दिया। रोई भी नहीं। जिस हालत में उस ने यह बात सुनी ठीक उसी हालत में ज्यों की त्यों वैसी ही रह गई। यह देख कर गिरिजाया को बड़ी शंका हुई। वह उस समय "मृणालिनी से बातचीत करने का यह समय नहीं है" ऐसा समझ कर वहां से टल गई।

मल्लाह के घर के पास ही जो सीढ़ियों से घिरी हुई एक पोखरी थी वहीं आ कर गिरिजाया एक सीढ़ी पर बैठ गई।

शरत्काल की पूर्णिमा की चमकीली चाँदनी में पोखरी का निर्मल नीला जल और भी उजला होकर चमक रहा है। उस पर खड़ी फूलों की कतार अधखिली हो रही है। उस की छाया उस नीले जल में पड़ रही है। चारो ओर वृक्षों की मालाएँ आपस में मिली हुई हैं। वे इस समय हिलती डुलती भी नहीं हैं। उन से

आकाश की सीमा जान पड़ती है। कहीं कहीं दो एक लम्बी शाखाएँ ऊपर को उठ कर आकाशपटल पर चित्रित हो रही हैं। नीचे के अंधकार की ढेरी के भीतर से नये खिले हुए फूलों की सुगंधि आ रही है। ऐसे समय गिरिजाया सीढ़ी पर बैठ गई है।

गिरिजाया ने पहले धीरे २ मीठे २ गीत गाना आरंभ किया, जैसे नई सिखलाई चिड़िया पहले साफ २ नहीं बोल सकती। धीरे धीरे गिरिजाया का स्वर साफ होने लगा; धीरे २ ऊँचा भी होने लगा। अंत में सर्वाङ्ग पूर्ण होकर तानलय के साथ उस की वह कंठध्वनि पोखरी, उपवन और आकाश में फैल कर स्वर्ग से गिरी हुई स्वर की नदी के तरंग के समान मृणालिनी की कानों में जा कर पड़ने लगी।

गिरिजाया ने गाया—( गजल रेषता )

" काहे न प्रान तन से मेरे निकल गया। जमुना के तीर जिस दिन हरि छुवि दिखा गया॥ धीरे से गाना नाचना उस का निहार कर। जमुना के नीले जल में तन क्यों न बह गया॥ अपने भवन में आई, कुछ ना कहा किसी से। आँचल को आँसुओं से आधी भिँगा दिया॥ मेरी सखी! बतादे रो रो के उस के दुख से। प्रान यह उसी दम क्यों न चला गया॥ बंसी की तान मीठी कानों में पड़ गई। राधे का नाम ले वह एक राग गा गया॥ सुनने लगी सखी मैं बन में वह मीठी बोली। क्यों ना उसी पहर में यह तन बिला गया॥ दौड़ी उसी किनारे प्यारे के पास रोकर। चरनों में उस के जीवन अपना लुटा दिया॥ उस के चरन के नीचे

रोकर हमारा सुख से। काहे न प्राण तन से अब तक निकल गया ॥

---

गिरिजाया ने गाते २ देखा कि, "मेरे सामने चन्द्रमा की किरणों पर मनुष्य की छाया पड़ी हुई है।" उस ने पीछे फिर कर देखा तो मृणालिनी खड़ी थी। उस के मुंह की ओर निहारा। अच्छी तरह देखा तो मृणालिनी रो रही थी।

गिरिजाया देख कर प्रसन्न हुई। वह समझ सकी कि "जब मृणालिनी की आँखों में आंसू आया है तब उस का क्लेश कुछ कम हुआ है। यह गूढ़ बात सब नहीं समझते, सब सोचते हैं कि "कभी इस की आंखों में तो जल नहीं देखा तो इसे किस बात का दुःख है?" यदि यह बात सब समझते तो नहीं जानते कि संसार की कितनी मर्मपीड़ा छूट जाती।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं। मृणालिनी कुछ न बोल सकी। गिरिजाया भी कुछ न पूछ सकी। फिर मृणालिनी बोली "गिरिजाया! एक बार और तुम को जाना होगा।"

गि०—अब उस अधम के पास क्यों जाऊंगी?

मृ०—अधम मत कहो। हेमचन्द्र को भ्रम हो गया है। इस संसार में भ्रम किस को नहीं होता? किन्तु हेमचन्द्र अधम नहीं है। मैं इसी समय उन के पास खुद जाऊंगी। तुम साथ चलो, तुम मुझे बहिन के समान अधिक प्यार करती हो। तुम मेरे लिये क्या नहीं करती? तुम कभी अकारण मेरे मन में दुःख नहीं पहुंचाती। मुझ से तुम ने उन की ये सब बातें झूठी नहीं कहीं

९

है, यह मैं ठीक जानता हूं। पर इसी कारण हेमचन्द्र ने मुझे बिना अपराध ही छोड़ दिया है," यह बात बिना उन के मुंह से सुने कैसे हृदय में ठहराऊं? यदि उन के मुंह से सुनूँगी कि उन ने मृणालिनी को कुलटा समझ कर छोड़ दिया तब यह प्राण छोड़ सकूंगी।

गि०—सत्य त्याग! यह क्यों मृणालिनी?

मृणालिनी ने कुछ जवाब नहीं दिया। गिरिजाया के कंधे पर बांह रख कर रोने लगी। गिरिजाया भी रोने लगी।

---

## नवम परिच्छेद।

---

### अमृत में गरल—गरलामृत।

---

हेमचन्द्र ने आचार्य की बात पर विश्वास कर के मृणालिनी को कुचरित्रा समझ लिया था। मृणालिनी का पत्र न पढ़ कर उस को टुकड़े २ कर डाला था। उस की दूती को बेत मारने के लिये तैयार हो गये थे। पर इस से "वे मृणालिनी को प्यार नहीं करते थे" यह बात नहीं थी। मृणालिनी के लिये वे राज्य छोड़ कर मथुरावासी हुए थे। इसी मृणालिनी के लिये वे गुरु पर तीर चलाने के लिये तैयार हुये थे। और इसी के लिये भिखारिनी गिरिजाया को सन्तुष्ट रखते थे। किन्तु इस समय हेमचन्द्र ने माधवाचार्य को बदला दिखला कर कहा था कि "मृणालिनी को

इसी बरछे से घायल करूंगा।" पर क्या इसी से इस समय उन का प्रेम एकदम नष्ट हो गया है ? पर्वत का पानी बहुत दिनों तक पृथ्वी पर घूम कर अपने घूमने के रास्ते पर गढ़ा बना देता है। क्या एक दिन की धूप से वह नदी सूख जाती है ? जल के जिस रास्ते पर गढ़ा बना रहता है उसी रास्ते जल बहेगा। वह रास्ता रोक दो तो पृथिवी डूब जाय। हेमचन्द्र उसी रात को अपने सोने के कमरे में बिछौने पर सोकर उसी खुली हुई खिड़की के पास सिर रख कर खिड़की के सामने देख रहे थे। क्या वे रात की शोभा देखते थे ? यदि उस समय उस से कोई पूछता कि रात अंधेरी है वा चांदनी ? तो वे उस बात को जल्दी न कह सकते। उन के हृदय के भीतर जो रात हुई है उसे वे ही देख रहे हैं। वह रात तो उस समय भी चांदनी है। नहीं तो उन की तकिया गीली क्यों है ? सिर्फ बादल घिरे हैं। जिस के हृदय रूपी आकाश में अंधेरा छाया हुआ है वह कभी नहीं रोता।—

जो कभी नहीं रोता वह मनुष्यों में अधम है। उस का कभी विश्वास न करना चाहिये। निश्चय जानो उस ने पृथिवी का सुख कभी नहीं भोगा। दूसरे का सुख उस को कभी नहीं सुहाता। ऐसा हो सकता है कि कोई २ अपने चित्त को जीतने वाले महात्मा बिना आंसू गिराये ही बहुत बड़ी २ मन की पीड़ा को सहन करते हैं और कर चुके हैं। किन्तु यदि उन ने किसी समय एक दिन एकान्त में एक बूंद आंसू से पृथिवी को नहीं सींचा है तो वे 'चित्तजयी' महात्मा हो सकते हैं। पर, मैं चोरों के साथ प्रीति करूंगा तो भी उन के साथ प्रीति नहीं करूंगा।

हेमचन्द्र रो रहे थे। जिस को पापिनी समझ कर हृदय में रखने के अयोग्य समझते थे उसी के लिये रोते थे। क्या वे मृणालिनी का दोष याद करते थे ? नहीं, केवल उस का दोष ही याद नहीं करते थे। वरन एक एक कर के, मृणालिनी का प्रेम से भरा हुआ मुखमण्डल, प्रेम से भरी हुई बातें और प्रेम से भरे हुए सभी काम भी याद कर रोते थे। वही मृणालिनी क्या विश्वास के योग्य नहीं है ? एक दिन मथुरा में हेमचन्द्र मृणालिनी के पास एक पत्र भेजने के लिये घबड़ा रहे थे, पर योग्य दूत उन को न मिला। उस समय वे मृणालिनी को खिड़की के रास्ते किसी तरह देख सके। उस समय हेमचन्द्र ने एक आम के फल पर जरूरी बात लिख कर मृणालिनी के गोद को निशाना बना कर खिड़की के रास्ते फेंका। आम पकड़ने के लिये मृणालिनी कुछ आगे को झुकी। आम मृणालिनी के गोद में न पड़ कर उस के कान में लगा। उस समय उस की चोट से कान में हरकने वाला रत्न का कुण्डल, कान को काट कर गिर पड़ा। कान से टपकनेवाले खून से उस का गला डूब गया। मृणालिनी ने भौंह भी टेढ़ी न की और कान पर हाथ भी न रखा। हँसकर, आम उठा कर, उसे पढ़ कर उसी समय उस की पीठ पर जबाब लिख कर आम लौटा दिया। और जब तक हेमचन्द्र आँखों के सामने रहे तब तक खिड़की पर खड़ी हो कर हँसती हुई देखती रही। हेमचन्द्र को वह बात भी याद आई। वही मृणालिनी क्या दुश्चरित्रा है ? यह हो नहीं सकता। और एक दिन मृणालिनी को बिच्छू ने डंक मारी थी। उस की पीड़ा से मृणालिनी मरने २ हो गई थी। उस की

एक दासी उस की अच्छी दवा जानती थी। उस के लगाते ही पीड़ा एकदम छूट जाती थी। दासी जल्दी से दवा लेने गई। इसी समय हेमचन्द्र की दूती ने कहा कि "हेमचन्द्र उपवन में तुम्हारी राह देख रहे हैं।" एक ही पल में दवा आ जाती। पर मृणालिनी ने उस की राह न देखी। उसी समय मरन से भी अधिक पीड़ा को भूल कर वह उपवन में पहुँची। फिर दवा न लगी। हेमचन्द्र को वह बात भी याद आई। वही मृणालिनी, ब्राह्मण कुल को कलंकित करने वाले व्योमकेश के लिये हेमचन्द्र से छल करेगी? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। और हेमचन्द्र एक दिन गुरु का दर्शन करने के लिये मथुरा से चले। एक पहर का रास्ता चलने के बाद हेमचन्द्र को पीड़ा पैदा हुई। वे एक धर्मशाला में पड़ रहे। किसी प्रकार यह समाचार रनिवास में मृणालिनी के कानों तक पहुँचा। मृणालिनी उसी रात को सिर्फ एक ही धाय को साथ लेकर रात के समय उस एक योजन रास्ते को पैदल पार कर के हेमचन्द्र को देखने के लिये जा पहुँची। जब मृणालिनी धर्मशाला में पहुँची तब वह थकावट से मरी सी हो रही थी और उस के पैर ऐसे कट गये थे कि खून बह रहा था। उसी रात को मृणालिनी पिता के डर से लौटी। घर आकर वह खुद बीमार पड़ी। हेमचन्द्र को यह भी याद आया। वही मृणालिनी अधम नर व्योमकेश के लिये हेमचन्द्र को त्याग देगी? क्या वह अविश्वासिनी हो सकती है? जो ऐसी बात पर विश्वास करे वह महा मूर्ख है। वही अविश्वासी है। वही अधम मनुष्य है। वही महा मूर्ख है। हेमचन्द्र ने सैकड़ों बार सोचा "मैं ने

मृणालिनी का पत्र क्यों नहीं पढ़ लिया? " नवद्वीप में क्यों आई है? यह भी क्यों न जान लिया? "मैं ने जिस पत्र को टुकड़े टुकड़े कर के बन में फेंक दिया वे टुकड़े यदि वहां मिल जायं, तो उन्हें जोड़ कर जहाँ तक हो सके उतनी दूर तक का समाचार जान जाऊं।" ऐसी आशा कर के एक बार वह उस बन में गये थे पर वहां बन के नीचे अंधकार में कुछ भी न देख सके। हवा उन सब टुकड़ों को उड़ा ले गई थी। हेमचन्द्र यदि उस समय अपने दहने हाथ के काट देने से भी उन टुकड़ों को पा जाते, तो हेमचन्द्र उसे भी काट डालते।

अब सोचने लगे " आचार्य झूठी बात क्यों कहेंगे? आचार्य बड़े ही सच्चे हैं। वे कभी झूठी बात न बोलेंगे। मुझ को पुत्र से भी अधिक प्यार करते हैं। और जानते हैं कि इस समाचार से मुझ को मरण से भी अधिक दुःख होगा। वे क्यों झूठी बात कह कर मुझ को इतना दुःख देंगे? और उन ने भी अपनी इच्छा से यह बात नहीं कही है। मैं ने घमंड से इस बात को उन के सामने उभाड़ा है। जब मैं ने कहा कि " मैं सभी बातें जानता हूं तभी उन ने यह बात कही। यदि झूठी बात कहने की ज़रूरत होती तो वे ऐसी उदासीनता से बिना इच्छा के क्यों कहते? तब हो सकता है कि हृषीकेश ही ने उन से झूठी बात कह दी हो। पर हृषीकेश बिना कारण ही गुरु से झूठी बात क्यों कहेंगे? और मृणालिनी उन का घर छोड़ कर नवद्वीप में क्यों आई? "

जब हेमचन्द्र ऐसा सोचते थे तब उन का मुंह काला हो जाता था। ललाट पर पसीना छा जाता था। वे बिछौना छोड़ उठ बैठते

थे और दांतों से ओठ काटने लगते थे आखें लम्बी और बड़ी हो जाती थीं। बदला उठाने के लिये हाथ में मुट्ठी बंध जाती थी। जब मृणालिनी का प्रेम भरा मुंह याद आ जाता था तब जड़ से कटे हुए पेड़ के समान बिछौने पर गिर जाते थे और तकिये में मुंह छिपा कर बालक के समान रोने लगते थे। हेमचन्द्र इसी प्रकार रो ही रहे थे कि उसी समय उन के शयन-गृह का दरवाज़ा खोल कर गिरिजाया घुस आई।

हेमचन्द्र ने पहले समझा कि मनोरमा है। उस समय उन ने देखा कि वह फूलों से भरी मूर्ति नहीं है। पीछे पहचाना कि गिरिजाया है। पहले अचम्भे में आ गये, पर पीछे प्रसन्न हुए। अन्त में बड़े कौतूहल से भर गये। फिर बोले "अब तुम क्यों आई?"

गिरिजाया बोली "मैं मृणालिनी की दासी हूं। आप ने मृणालिनी का त्याग कर दिया है, पर मृणालिनी ने आप का त्याग नहीं किया है। इस लिये मुझ को इस समय आना पड़ा है। मुझ को बेत मारने की इच्छा हो, तो मारिये ठकुरानी के लिये इस समय उसे सहूंगी। मैं ने अपने मन में यही निश्चय कर लिया है।"

इस अनादर से हेमचन्द्र बहुत ही संकुचित हुए। फिर बोले "तुम को कोई डर नहीं है। स्त्री को मैं नहीं मारूँगा। तुम क्यों आई हो? मृणालिनी कहां है? शाम को तुम ने कहा था "वे नवद्वीप में आई हैं।" क्यों नवद्वीप में आई हैं? मैं ने पत्र न पढ़ कर अच्छा नहीं किया

गि०—मृणालिनी नवद्वीप में आप को देखने के लिये आई है।

हेमचन्द्र के शरीर के रोएँ खड़े हो गये। जिन ने मृणालिनी को कुलटा कह कर निरादर किया था उन्हीं ने फिर गिरिजाया से पूछा "मृणालिनी कहां है ?"

गि०—"वे आप के पास जन्मभर के लिये अन्तिम बिदा लेने के लिये आई हैं। सरोवर के तीर पर खड़ी हैं। आप आइये।"

यह कह कर गिरिजाया चली गई। हेमचन्द्र उस के पीछे २ दौड़े।

गिरिजाया बावली के तीर पर जहां सीढ़ियों पर बैठी हुई थीं वहां आ पहुंची। हेमचन्द्र भी वहीं आ गये। गिरिजाया ने कहा "ठकुरानी ! उठो, राजपुत्र आये हैं।"

मृणालिनी उठ कर खड़ी हो गई। दोनों ने दोनों का मुंह देखा। मृणालिनी की नज़र झिप गई। आंसुओं से आंखें भर गईं। अवलम्बन की शाखा के टूट जाने से जैसे शाखा पर लिपटी हुई लता ज़मीन पर गिर जाती है वैसे ही मृणालिनी हेमचन्द्र के पैरों पर गिर पड़ी। गिरिजाया दूसरी जगह चली गई।

---

# दसम परिच्छेद।

## इतने दिनों के बाद।

हेमचन्द्र ने मृणालिनी को हाथ से पकड़ कर उठाया। दोनों आमने सामने खड़े हुए। इतने दिनों के बाद दोनों की आपस में देखादेखी हुई। जिस दिन शाम को यमुना के किनारे ग्रीष्म काल की हवा से हिलाये हुए "मौलिश्री" के पेड़ के नीचे खड़े हो कर नीले जल से भरी हुई यमुना की तरंग पर नक्षत्रों की किरणे परछाईं देखते २ दोनों आंखों में आंसू भर कर परस्पर बिदा हुए थे, उस के बाद आज ही भेंट हुई है। गर्मी के बाद वर्षा ऋतु बीत गई है। वर्षा के बाद शरद आ आयेगी। किन्तु इन के हृदय में कितनी ऋतुएं बीत गई हैं उन की गणना क्या हो सकती है?

उसी आधी रात को निर्मल जल भरी बावली के तीर पर दोनों आदमी आमने सामने हो कर खड़े हुए। चारों तरफ वही सघन बन था। सघन लगी हुई बेलों से लिपटे हुए बड़े २ सब वृक्ष आंखों के रास्ते रोक कर खड़े थे। सामने नीले मेघ के टुकड़े के समान बावली सेवार, कुमुद, कमलों के साथ फैल रही थी। सिर के ऊपर चन्द्रमा, तारा और बादलों के साथ आकाश उस चांदनी में हँस रहा था। वह चांदनी आकाश में, पेड़ों की चोटियों पर, लता के पत्तों पर, बावली की

सीढ़ियों पर और नीले जल पर सभी जगह हँस रही थी। प्रकृति शब्दरहित और धीर थी। उसी धीर प्रकृति की अटारी पर मृणालिनी और हेमचन्द्र आमने सामने खड़े हुए।

क्या बोलने के लिए कोई शब्द नहीं था? उन दोनों के मन में कोई बात कहने के लायक न थी? यदि मन में बोलने की बात थी और बोलने के लिए शब्द था, तो क्यों नहीं बातें करते? उस समय आंखों से देखते ही मन मतवाला बन गया। तो बात बोलेंगे कैसे? इस समय केवल प्रेमी के पास रहने ही से इतना सुख है कि हृदय में दूसरे सुख के रहने का स्थान ही नहीं है; जो उस सुख का भोग करता है वह दूसरी बातों के सुख की इच्छा नहीं करता।

उस समय इतनी बातें कहने के लिए मन में रखी है कि—कौन बात आगे कहें इस का निश्चय कोई न कर सका। मनुष्य की भाषा का ऐसा कौन शब्द है जो उस समय बोला जा सकता है?

दोनों परस्पर मुंह देखने लगे। हेमचन्द्र ने मृणालिनी का वही प्रेम-पूर्ण मुख देखा। हृषीकेश की बात का विश्वास दूर होने लगा। वह पवित्रता ग्रन्थ के स्थान स्थान में लिखी हुई है। हेमचन्द्र उस की आंखें देखने लगे। वे आंखें विचित्र और बड़ी हैं। नीले कमलों की निन्दा करनेवाले और हृदय के दर्पण के समान उज्ज्वल हैं। इन्हें देखने लगे। उन आंखों से केवल प्रेम के आंसू बहते थे। जिस की ऐसी आंखें हैं वह क्या अविश्वास योग्य है?

हेमचन्द्र पहले बोले। उन ने पूछा " मृणालिनी कैसी हो?"

मृणालिनी जवाब न दे सकी। अब उस का चित्त शान्त नहीं है। उस ने जवाब देना चाहा, पर आंखें आंसुओं से डूब गईं। गला फँस गया और मुंह से बातें न निकलीं।

हेमचन्द्र ने फिर पूछा—" तुम कैसी हो?"

मृणालिनी तो भी जवाब न दे सकी। हेमचन्द्र ने उस का हाथ पकड़ कर सीढ़ी पर बैठाया। खुद उस के पास बैठे। मृणालिनी के चित्त में जो कुछ स्थिरता थी वह भी इस आदर से नष्ट हो गई। धीरे धीरे उस का सिर आप ही आप हेमचन्द्र के कंधे पर आ लगा। मृणालिनी जान कर भी उसे न जान सकी। अब मृणालिनी रोने लगी। उस के आंसुओं से हेमचन्द्र का कंधा और छाती डूब गई। इस संसार में मृणालिनी ने जितने सुख किये हैं उन में कोई सुख इस रोने के सुख के समान नहीं है।

अब हेमचन्द्र ने कहा " मृणालिनी! मैं ने तुम से बहुत बड़ा अपराध किया है वह अपराध अब क्षमा करो। मैं ने तुम्हारे नाम कलङ्क की बात सुन कर विश्वास कर लिया था। विश्वास करने के कई कारण भी थे, उन्हें तुम दूर कर सकती हो। जो मैं पूछता हूं उस का ठीक जवाब दो।

मृणालिनी हेमचन्द्र के कन्धे से अपना सिर न उठा कर बोली " क्या?"

हेमचन्द्र ने कहा " तुम ने हृषीकेश का घर क्यों छोड़ा?"
इस नाम को सुनते ही क्रोधित साँपिन के समान मृणालिनी ने

अपना सिर उठाया और कहा " हृषीकेश ने मुझ को अपने घर से निकाल दिया था।"

हेमचन्द्र दुखी हुए। मन में कुछ संदेह भी हुआ। कुछ चिन्ता भी हुई। इसी अवसर में मृणालिनी ने फिर अपना सिर हेमचन्द्र के कंधे पर रख दिया। उस सुख के आसन पर सिर रखने से उसे इतना सुख मिलता था कि मृणालिनी उसे छोड़ नहीं सकती थी।

हेमचन्द्र ने पूछा " हृषीकेश ने तुम को घर से क्यों निकाल दिया?" मृणालिनी ने हेमचन्द्र की छाती में अपना मुंह छिपा लिया। और बड़े ही धीरे से कहा " तुम से क्या कहूं? हृषीकेश ने मुझे कुलटा कह कर घर से निकाल दिया।"

सुनते ही हेमचन्द्र तीर के समान खड़े हो गये। मृणालिनी का सिर उन की छाती से फिसल कर सीढ़ी पर टकरा गया।

" पापिनी! तुम ने अपने मुंह से अपना पाप स्वीकार कर लिया।" यह बात दांत पीस कर कहते हुए हेमचन्द्र वेग के साथ चले गये। रास्ते में गिरिजाया को देखा। गिरिजाया उन की जल सहित मेघ के समान भयावनी मूर्ति देख कर डर कर खड़ी हो गई। " लिखने लज्जा आती है। पर बिना लिखे काम भी नहीं चलता" हेमचन्द्र ने लात मार कर गिरिजाया को रास्ते से हटाया। और कहा—"तैं जिस की दूती है उस को लात मारने से मेरा पैर कलंकित हो जायगा।" यह कह कर हेमचन्द्र चले गये।

जिस को धैर्य्य नहीं है वह जन्म ही का अन्धा है। उस को संसार का कोई सुख नहीं मिलता। कवि लोग कल्पना करते हैं कि केवल अधैर्य्य ही के कारण वीरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य्य निहत हुए।

——ना हत। यही शब्द सुन कर उन ने धनुष और बाण रख दिया। फिर पूछ कर उन ने उस का ठीक ठीक पता नहीं लगाया। हेमचन्द्र को केवल अधैर्य ही नहीं है, वरन अधैर्य अभिमान और क्रोध भी है।

ठंढी हवा चलने लगी। प्रातःकाल की पीली छाया बावली के तीर पर उदित हुई। उस समय भी मृणालिनी घायल सिर लिये सीढ़ी पर बैठी हुई है। गिरिजाया ने पूछा "ठकुरानी ! क्या चोट गहरी मालूम पड़ती है ?"

मृणालिनी ने कहा—"किस की चोट ?"

गि०—सिर की।

मृ०—सिर की चोट ? मुझ को याद नहीं है।

---

## चतुर्थ खण्ड।

---

# प्रथम परिच्छेद।

---

## ऊर्णनाभ ( मकड़ी )।

---

जिस समय मृणालिनी के सुख का तारा डूब रहा था उसी समय गौड़ देश का सौभाग्य चन्द्रमा भी उसी रास्ते आ रहा था। जिस मनुष्य को साथ रखने से गौड़ देश की रक्षा हो सकती थी

वहीं मकड़ी की तरह अलग बैठ कर अभागी जन्मभूमि को बांधने के लिये जाल फैला रहा था। आधीरात को अकेले में बैठ कर धर्माधिकारी पशुपति अपने दाहने हाथ के समान परम सहायक शान्तशील को दपट रहे थे। "शान्तशील ! भोर को जो तुम ने समाचार दिया था वह केवल तुम्हारी ही भूल थी। तुम पर और किसी काम का भार देने का जी नहीं चाहता।

शान्तशील ने कहा " जो मुझ से असाध्य है मैं उसे नहीं कर सकता। दूसरे काज में मेरी परीक्षा कीजिये।

प०—सेना के लोगों को क्या सिखलाना होगा ?

शा०—हां, यही कि—"हमलोगों की आज्ञा के बिना कोई लड़ाई की तैयारी न करे।

प०—सीमा की रक्षा करनेवाले और वनों की रक्षा करनेवालों को भी क्या कुछ सिखलाना होगा ?

शा०—यही कह दिया है कि "बहुत ही जल्दी मुसलमान बादशाह के पास से कर लेकर दो चार मुसलमान दूत आवेंगे उन को मत रोकना।

प०—दामोदर शर्मा ने हमलोगों के कथनानुसार कार्य किया है कि नहीं ?

शा०—वे बड़े चतुर के समान कार्य का निर्वाह करते हैं।

प०—सो कैसे ?

शा०—उन ने एक पुरानी पुस्तक का एक पत्रा बदल कर उस में आप की बनाई कविता को रख दिया था। उस को लेकर आज सांझ को राजा को सुनाया है। और माधवाचार्य की बहुत निन्दा की है।

प० कविता में गौड़देश के जीतनेवाले राजा के रूप का वर्णन बड़े विस्तार के साथ लिखा गया है क्या उस विषय में महाराज ने आप से पूछताछ की थी ?

शा०—की थी। "मदनसेन इस समय काशीधाम से आये हुए हैं" यह समाचार महाराज ने सुन लिया था। महाराज ने कविता में गौड़ का विजय करनेवाले राजा के रूप का वर्णन सुन कर उन को पूछने के लिये बुलाया था। जब मदनसेन आ गये तब महाराज ने पूछा "क्यों तुम मगध में जाकर यवनराज के प्रतिनिधि को देख आये हो? उस ने कहा—"हां! देख आया हूं।" तब महाराज ने पूछा कि वह देखने में कैसा है? बताओ तो सही। उस समय, मदनसेन ने जो "बख़्तियार ख़िलजी का रूप देखा था" उसी को विस्तार के साथ कहा। कविता में भी उसी रूप का वर्णन लिखा था। इस लिये गौड़ की पराजय और राज्य का नाश सच ही समझ लिया।

प०—इस के बाद ?

शा०—तब राजा रोने लगे, और बोले "मैं इस बुढ़ापे में क्या करूँगा। परिवार के सहित मेरा प्राण नष्ट होगा, यही जान पड़ती है।" तब दामोदर ने उपदेश के समान यह कहा "महाराज! इस का उत्तम उपाय यही है कि समय आने के पहले ही आप परिवार के साथ तीर्थयात्रा करें और राजकाज का भार धर्माधिकारी पर छोड़ जायँ। यही करने से आप के शरीर की रक्षा होगी। यदि शास्त्र झूठा है, तो फिर आप को राज्य मिल जायगा।" राजा ने इस राय से प्रसन्न होकर नाव सजने की आज्ञा दी है। वे तुरन्त ही परिवार के साथ तीर्थयात्रा करेंगे।

प० दामोदर भला आदमी है। तुम भी भले ही हो। इस समय मेरे मनोरथ के पूर्ण होने की आशा देख पड़ती है। इतना तो निश्चय ही है कि "यदि मैं स्वाधीन राजा न होऊँगा, तो मुसलमान राजा का प्रतिनिधि तो जरूर ही हो जाऊँगा। कार्य सिद्ध हो जाने के बाद तुमलोगों को यथाशक्ति पुरस्कार देने में कमी भी न करूंगा" यह तो तुम जानते ही हो। इस समय जाओ। कल भोर होते ही तीर्थयात्रा के लिये नाव तैयार रखना।

शान्तशील विदा हुआ।

## द्वितीय परिच्छेद।

—*:o:*—

### बिना सूत की माला।

---

पशुपति ऊंची अटारी पर अनेक सेवकों के साथ रहते हैं, पर उन की अटारी, सघनवन से भी अधिक अंधेरी है। घर में जिन से प्रकाश होता है वह—स्त्री, पुत्र और परिवार—कोई नहीं है।

आज शान्तशील से बातचीत करने के बाद पशुपति को ये सभी बातें याद पड़ीं। उन ने मन में सोचा "इतने दिनों के बाद जान पड़ता है कि यह अंधेरी अटारी प्रकाशित हुई। यदि जगदम्बा प्रसन्न होंगी, तो मनोरमा इस अंधकार को मिटा देगी।"

इसी प्रकार विचार करते २ पशुपति शयन करने के पहले ही अष्टभुजा को नियमित "दंड प्रणाम" करने के लिये देवी के मंदिर में गये। जाते ही उन ने देखा कि उस जगह मनोरमा बैठी हुई है।

पशुपति ने कहा "मनोरमा! कब आई?"

मनोरमा पूजा से बचे हुए फूलों को ले कर बिना सूत की माला गूथ रही थी। उस ने बात का कोई जवाब नहीं दिया। पशुपति ने कहा " मेरे साथ बातचीत करो। जब तक तुम हो तब तक सब दुःख भूल गया हूं।

मनोरमा ने सिर उठा कर देखा। वह पशुपति के मुख की ओर टकटकी लगाये देखने लगी। थोड़ी देर के बाद बोली "मैं तुम से कया कहने आई हूं? सो याद नहीं है।

पशुपति ने कहा "तुम याद करो। मैं तुम्हारी राह देखता हूं।" पशुपति चुपचाप बैठ गये। मनोरमा माला गूंथने लगी। बहुत देर के बाद पशुपति बोले "मुझे भी कुछ कहना है। मन दे कर सुनो। मैं ने इस अवस्था तक केवल विद्याही पढ़ी है। बहुत सी बातों का विचार किया है। धन भी इकट्ठा किया है, किन्तु आज तक विवाह नहीं किया है। जिस काम में प्रेम है वही काम करता हूं। विवाह करने की इच्छा नहीं थी इस लिये आज तक विवाह नहीं किया। पर जब से मैं ने तुम्हें देखा है तभी से तुम को ( मनोरमा को ) पाने की इच्छा ही में मेरा मन लगा रहता है। उसी को पाने के लिये इस कठिन व्रत में लगा हुआ हूं। यदि जगदीश्वरी कृपा करेंगी, तो दो चार ही दिनों में राज्य पा जाऊंगा और तुम से

विवाह करूंगा। इस से "तुम विधवा हो" यह जो विघ्न है उस को शास्त्रों के प्रमाणों से खण्डन कर सकूंगा। किन्तु इस के बाद दूसरा विघ्न यह है कि "तुम कुलीन की लड़की हो। जनार्दन शर्म्मा अच्छे कुलीन हैं और मैं श्रोत्रिय हूं।"

मनोरमा इन सब बातों पर कान देती थी कि नहीं, सन्देह है। पशुपति ने सोचा कि मनोरमा का चित्त दूसरी ओर लगा है। पशुपति, भोली भाली, विकार रहित बालिका मनोरमा को प्यार करते थे, किन्तु युवती तथा तीखी बुद्धिवाली मनोरमा से डरते थे। आज उस के इस दूसरे भाव से प्रसन्न न हुए। तो भी फिर यत्न कर के पशुपति ने कहा "पर कुल रीति तो शास्त्र से नहीं निकली है। कुल के नष्ट होने पर धर्म वा जाति का नाश नहीं होता। तुम्हारे दादा के बिना जाने ही यदि तुम से विवाह कर सकूं, तो हानि क्या है? तुम्हारी राय होते ही मैं विवाह कर सकता हूं। फिर यदि तुम्हारे दादा जान भी जायंगे, तो बिवाह तो नहीं फिरेगा?

मनोरमा ने कुछ जवाब नहीं दिया। वे सबी बातें उस ने सुनी कि नहीं, सन्देह है। उस के पास एक काला बिलाव बैठा था। उस बिना सूत की माला को उस बिलाव के गले में पहरा रही थी। पहराते ही माला खुल पड़ी। तब मनोरमा अपने सिर का जूड़ा खोल कर उसी के सूत से माला गूंथने लगी।

पशुपति उत्तर न पा कर चुपचाप माला के फूलों में मनोरमा की अंगुलियों की सुन्दरगति प्रेम भरी आंखों से देखने लगी।

# तृतीय परिच्छेद ।

—:o:—

## पींजरे में चिड़िया ।

—:o:—

पशुपति मनोरमा की बुद्धिरूपी दीप को प्रकाशित करने का अनेक उपाय करने लगे, पर उस का फल होना महा कठिन हो गया। अन्त में बोले—" मनोरमा ! रात बहुत बीत गई, मैं सोने के लिये जाता हूं। "

मनोरमा ने प्रसन्नता के साथ कह दिया—"जाओ।"

पशुपति सोने के लिये नहीं गये। बैठ कर माला गूंथना देखने लगे। अब वे दूसरा उपाय सोचने लगे। " मनोरमा को डरा देने से काम पूरा हो जायगा " यह सोच कर मनोरमा को डराने के लिये पशुपति ने कहा—" मनोरमा ! यदि इसी समय मुसलमान आ जायं, तो तुम कहां जाओगी ? "

मनोरमा माला ही की ओर देखती हुई बोली—" घर में रहूंगी। "

पशुपति ने कहा—" घर में तुम्हारी रखवाली कौन करेगा ?"

मनोरमा ने पहले ही के समान उदासीन भाव से कहा—"मैं नहीं जानती, कोई उपाय नहीं है। "

पशुपति ने फिर पूछा—" तुम मुझ से क्या कहने के लिये इस घर में आई हो ? "

मनो०। " देवता को प्रणाम करने के लिये। "

पशुपति कुछ उदास हो कर बोले ' मनोरमा ! तुम से प्रार्थना करता हू कि, ' जो मै कहता हू उसे मन दे कर सुनो तुम अब भी बोलो मेरे साथ व्याह करोगी या नहीं ?

मनोरमा की माला बन कर पूरी हो चुकी थी। वह उस माला को एक काले बिलाव के गले में पहरा रही थी। पशुपति की बात उस के कानों तक न पहुंची। बिलाव माला पहरना नहीं चाहता था। मनोरमा जै वार उस के गले में माला पहराती थी, वह बिलाव तै वार अपना सिर उस माला से बाहर निकाल लेता था। मनोरमा कुन्दों की निन्दा करनेवाले दांतों से अधर दबा कर थोड़ा थोड़ा हंस रही थी और फिर उस के गले में पहरा रही थी। पशुपति ने बहुत ही क्रोध कर के उस बिलाव को एक थप्पड़ मार दिया। बिलाव पूंछ उठा कर दूर भाग गया। मनोरमा ने उसी प्रकार दांतों से अधर दबा कर हंसती २ हाथ की माला पशुपति ही के गले में पहरा दी।

बिलाव का प्रसाद गले में पहर कर राजा का प्रसाद भोगने-वाले पशुपति की बुद्धि हत हो गई। थोड़ा सा क्रोध हुआ, पर दांतों से अधर दबानेवाली और हंसी से भरी हुई मनोरमा की उस समय की उपमारहित रूपमाधुरी देख कर उन का सिर घूम गया। उन ने मनोरमा को छाती से लगाने के लिये दोनों बांहें फैलाईं। उस समय मनोरमा कूद कर दूर भाग खड़ी हुई। रास्ते के बीच फन फैलाये हुए कालसर्प को देख कर, जैसे राहगीर भाग कर अलग खड़ा हो जाता है, वैसे ही मनोरमा भाग कर खड़ी हो गई।

पशुपति अचंभे में पड़ गये थोड़ी देर भी मनोरमा की ओर देख न सके। फिर उन ने चाह से देखा कि मनोरमा युवती है, उस का मुंह जवानी के कारण खिल उठा है और वह महिमा से भरी पूरी अद्भुत बड़ी सुन्दरी है।

पशुपति ने कहा—"यह अपराध मन में न रखना। तुम मेरी स्त्री हो। मेरे साथ व्याह करो।"

मनोरमा पशुपति के मुंह की ओर कड़ी नज़र से देख कर बोली "पशुपति! केशव की लड़की कहां है?"

पशुपति ने कहा—"केशव की लड़की कहां है" सो मैं नहीं जानता और जानना भी नहीं चाहता। केवल एक तुम्हीं मेरी स्त्री हो।

म०। मैं जानती हूं "केशव की लड़की कहां है?" बताऊं?

पशुपति चुप हो कर मनोरमा के मुंह की ओर देखने लगे। मनोरमा कहने लगी—"एक ज्योतिषी ने गणना कर के कहा था कि, "केशव की लड़की थोड़ी ही उमर में विधवा हो कर सती हो जायगी।" केशव इस बात को सुन कर थोड़े ही समय में लड़की के मर जाने के डर से बहुत ही दुखी हुए। उन ने धर्म-नाश के डर से लड़की का विवाह कर दिया, पर विधि लिखित लेख को मिटाने की आशा से व्याह ही की रात को ले कर वे 'प्रयाग' भाग गये। उन का मतलब यही था कि "मेरी लड़की स्वामी के मरने का समाचार कभी न सुनने पावे।" दैववश कुछ दिनों के बाद केशव की मृत्यु हो गई। उन की लड़की की माता पहले ही मर चुकी थी। मरने के समय केशव "हेमवती" को आचार्य के हाथ में दे गये। और यह कह गये कि, "इस

अनाथा बालिका का अपने घर में रख कर पालन कीजियेगा इस का पति 'पशुपति' है। पर ज्योतिषियों ने कहा है कि 'यह थोड़ी ही उमर में स्वामी के मरने के बाद तुरत ही मर जायगी।' इस लिये आप मेरे सामने प्रतिज्ञा कीजिये कि "इस लड़की से कभी न कहेंगे कि पशुपति तुम्हारा पति है या पशुपति से भी नहीं कहेंगे कि यह तुम्हारी स्त्री है।"

"आचार्य ने वैसी ही प्रतिज्ञा की। उसी दिन से उन ने उस को अपने परिवार के बीच रख कर परिपालन किया है और तुम से ब्याह की बात छिपा रक्खी है।"

प०—इस समय वह लड़की कहां है?

म०—मैं ही केशव की लड़की हू, और जनार्दन शर्मा उन के आचार्य हैं।

पशुपति अचंभे में पड़ गये। उन का सिर घूमने लगा। वे कुछ न बोले। उन ने अष्टभुजा की मूर्त्ति के पास जा कर प्रणाम किया। फिर उठ कर मनोरमा को छाती से लगाने चले। मनोरमा पहले ही के समान हट कर खड़ी हो गई। और बोली "अभी नहीं। और भी कुछ कहना है।"

प०—मनोरमा! राक्षसी! इतने दिनों तक तुम ने मुझ को इस अंधेरे में क्यों रखा था?

म०—क्यों? तुम मेरी बात पर विश्वास करते?

प०—मनोरमा! तुम्हारी बात पर मैं ने कब विश्वास नहीं किया है? और यदि मुझ को विश्वास न होता, तो मैं जनार्दन शर्मा से भी पूछ सकता था।

म०—क्या जनार्दन इस बात को प्रकट करते शिष्य व सामने प्रतिज्ञा से बद्ध हो चुके हैं ?

प०—तब तुम से उन ने क्यों कहा ?

म०—उन ने मुझ से नहीं कहा। वे एक दिन ब्राह्मणी से अकेले में कह रहे थे। दैववश मैं ने छिप कर सुन लिया। और मुझे सब लोग विधवा ही समझते हैं। तुम मेरी बात पर विश्वास कर भी लेते, तो संसार के लोग क्यों विश्वास करते? तुम लोक में निंदनीय हो कर कैसे मुझे अपने घर में रख लेते?

प०—मैं सब लोगों को इकट्ठा कर के समझा कर कह देता।

म०—अच्छा! यही सही। फिर ज्योतिषी की गणना?

प०—मैं ग्रहशान्ति कराता। अच्छा! जो होना था सो हुआ। इस समय यदि मैं ने रत्न पा लिया है, तो अब उस को गले से नहीं उतारूंगा। तुम अब मेरा घर छोड़ कर नहीं जा सकती।

मनोरमा ने कहा "यह घर छोड़ देना होगा। पशुपति! मैं आज जो कहने के लिये आई हूं सो कहती हूं, सुनो। तुम यह घर छोड़ दो। राज्य पाने की नीच आशा छोड़ दो; स्वामी के अहित करने की इच्छा छोड़ दो, और यह देश छोड़ कर चल दो, हमलोग काशीधाम चलें। वहीं मैं तुम्हारे चरणों की सेवा कर के जन्म सफल करूंगी। जिस दिन हम दोनों की आयु पूरी हो जायगी उसी दिन एक ही साथ दोनों परलोकयात्रा करेंगे। यदि यह बात मान लो तब मेरी भक्ति अचल होगी। नहीं तो—"

प०—नहीं तो—क्या?

मनोरमा तब सिर उठा कर आंखों में आंसू भर कर देवी को

मूर्त्ति के सामने खड़ी हो कर, हाथ जोड़ गद् गद् कंठ कर के बोली "नहीं तो देवी के सामने शपथ करती हूं कि तुम से और हम से यही देखा देखी है। इस जन्म में फिर भेंट न होगी।"

पशुपति भी देवी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और बोले "मनोरमा ! मैं भी शपथ करता हूं कि—मेरा प्राण रहते तुम मेरा घर छोड़ कर नहीं जा सकती हो। मनोरमा ! मैं ने जिस रास्ते में पैर रक्खा है उस रास्ते लौटने का उपाय रहने पर मैं लौट जाता। तुम को ले कर, सब छोड़ कर, काशी यात्रा करता। पर मैं बहुत दूर आगे निकल आया हूं। अब फिरने का कुछ उपाय नहीं है। जो गांठ बांध दी है, उसे अब खोल नहीं सकता। धारा में पड़ी हुई वस्तु फिर नहीं सकती। जो होना है सो होगा। इसी से क्या मैं अपना यह बहुत बड़ा सुख छोड़ दूंगा ? तुम मेरी स्त्री हो। मेरे भाग्य में जो हो, मैं तुम को अपनी घरनी बनाऊंगा। तुम थोड़ी देर ठहरो। मैं तुरत ही आया हूं।" यह कह कर पशुपति मन्दिर से बाहर निकल गये। मनोरमा के चित्त में सन्देह हुआ। वह सोचती हुई कुछ देर तक मन्दिर में खड़ी रही, और एक बार पशुपति से बिना विदा लिये नहीं जा सकी।

थोड़ी ही देर के बाद पशुपति लौट आये। फिर बोले "प्राणाधिके ! आज, फिर तुम मुझ को छोड़ कर नहीं जा सकती। मैं सब दरवाज़ा बंद कर आया हूं।"

मनोरमा—चिड़िया पिंजरे में बन्द हो गई।

—*:o:*—

# चतुर्थ परिच्छेद ।

—*:०:*—

## यवनदूत कि यमदूत ।

—*:०:*—

एक पहर रात बीतने पर नगरनिवासियों ने अचम्भे से आ कर देखा कि किसी बेपहचानी हुई जाति के सतरह घुड़सवार आम रास्ते से राजभवन की ओर जा रहे हैं। उन लोगों की चाल ढाल देख कर नवद्वीपनिवासी जन धन्यवाद देने लगे। उन लोगों के शरीर लम्बे, चौड़े और बलवान थे। उन का रंग तपाये सोने के समान गोरा था। उन लोगों के मुंह चौड़े और काली तथा सघन दाढ़ियों से सुशोभित थे। आंखें बड़ी और तेज थीं। उन लोगों के वस्त्र नकली चमकदमक से खाली थे। उन लोगों का पहरावा योद्धाओं के समान था। सारा शरीर हथियारों से सुसज्जित था। आंखों में दृढ़ प्रतिज्ञा झलकती थी। और वे सभी जिन समुद्री घोड़ों की पीठ पर चढ़े जाते थे वे घोड़े भी बड़े मनोहर थे। उन के पर्वत की चट्टान के समान लम्बा कद, स्वच्छ देह और टेढ़ी गरदन थी। बाग रोकना उन घोड़ों को पसन्द न था। तेजी के घमण्ड से नाचना उन का स्वभाव ही था। घुड़सवार भी उन के चलाने में बड़े चतुर थे। खेल की चाल ले से सवार रुके हुए पवन के समान उन तेज घोड़ों को अपनी मुट्ठी से रोक रहे हैं। यह देख कर सब गौड़वासियों ने बड़ी प्रशंसा की।

२

सतरहों घुड़सवार दृढ़ प्रतिज्ञा से ओठ बन्द करके चुपचाप राजभवन की ओर चले। कौतूहल से यदि कोई नगरनिवासी पूछता था, तो उन में से एक आदमी 'जो नगरनिवासियों की भाषा समझता था', कह देता था कि "ये लोग मुसलमान बादशाह के दूत हैं।" यही कह कर उन लोगों ने सीमा की रखवाली करनेवाले और किले की रखवाली करनेवाले से अपनी पहचान बताई। और पशुपति की आज्ञानुसार इसी पहचान से बिना रोक टोक, वे लोग नगर में घुस गये।

सतरहों घुड़सवार राजा के दरवाज़े पर पहुंचे। बूढ़े राजा के ढीलेपन और पशुपति की चतुरता से राजपुरी में कोई रखवाला नहीं था। राजा की सभा विसर्जित हो चुकी थी। पुरी में केवल पुरनिवासी थे। थोड़े से दरवान द्वार की रक्षा कर रहे थे। एक दरवान ने पूछा "तुम लोग किस काम के लिये आये हो?"

मुसलमानों ने जवाब दिया "हमलोग मुसलमान बादशाह के चकलेदार के दूत हैं। गौड़राज से भेंट करेंगे।"

दरवान ने कहा "महाराजाधिराज गौड़ेश्वर इस समय रनिवास में चले गये हैं, अभी भेंट नहीं होगी।"

मुसलमान लोग मना करना न सुन खुले दरवाज़े से घुसने के लिये तैयार हो गये। सब के आगे एक आदमी, नाटा, लम्बी बांहवाला, कुरूप मुसलमान था। दुर्भाग्यवश, दरवान उस को रोकने के लिये हाथ में बरछा लेकर खड़ा हो गया और बोला "फिरो नहीं तो इसी समय मार डालूंगा।"

'तब तूही मर' यह कह कर उस नाटे मुसलमान ने दरवान को अपनी तलवार से काट डाला। दरवान मर गया। तब उस मुसलमान ने अपने साथियों की ओर देख कर कहा "अब अपना २ काम करो।" इसी समय उन सोलहों चुप घुड़सवारों के बीच भयानक जयध्वनि होने लगी। तब सोलहों मुसलमानों की कमर से सोलह तलवारें निकलीं और बिजली गिरने के समान उन लोगों ने दरवानों पर हमला किया। दरवान लड़ने के लिये तैय्यार न थे। अचानक बिना उपाय हो पीटे जा कर अपने बचने का कोई उपाय न कर सके। एक ही पल में सभी मारे गये।

नाटे मुसलमान ने कहा "इस समय जहां जिस को पाओ, मार डालो, राजपुरी और भवन में कोई रखवाला नहीं है। बूढे राजा को मारो।"

जिस समय मुसलमान नगर में बिजली के समान बाल, वृद्ध, वनिता आदि सब नगरनिवासियों को जहां जिस को पाते थे वहीं उस का सिर काट रहे थे वा बरछे से घायल कर रहे थे उस समय नगरनिवासी आर्तनाद कर के इधर उधर भागने लगे। वह घोर आर्तनाद कर के बूढ़े राजा के कानों में जा पड़ा। राजा उस समय भोजन करते थे। सुन कर उन का मुंह सूख गया। उन ने पूछा "क्या हुआ? क्या मुसलमान आ गये हैं?"

भागने के लिये व्यग्र पुरजनों ने कहा "मुसलमान सब नगर-निवासियों को मार कर आप को मारने के लिये आ गये हैं।"

मुंह में रखा हुआ अन्न का ग्रास राजा के मुँह से गिर पड़ा। उन का सूखा शरीर, जल की धारा से ताडित बेत के समान

कांपने लगा। पास ही रानी थी। "राजा भोजन की थाली ही पर गिर जायंगे" यह देख कर रानी ने उन का हाथ पकड़ लिया। और कहा—"कुछ चिन्ता नहीं है, आप उठिये" यह कह कर उन का हाथ पकड़ कर उठा लिया। राजा काठ की पुतली के समान उठ खड़े हुए।

रानी ने कहा "चिन्ता क्या है? नाव पर सब चीजें चली गई हैं। चलिये, हमलोग खिड़की के रास्ते "सोनगावं" चल चलें।

यह कह कर रानी ने राजा का जूठा हाथ पकड़ कर खिड़की के रास्ते "सोनगावं" की यात्रा की। उसी राजकुल-कलङ्क, असमर्थ राजा के साथ गौड़राज्य की राजलक्ष्मी भी चली गईं।

सोलह साथी ले कर बंदर के समान स्वरूप वाले बख्तियार खिलजी ने गौड़ेश्वर की राजधानी पर अपना अधिकार कर लिया।

एक बरस के बाद मुसलमानों का इतिहास जाननेवाले "मिनहाज़ उद्दीन" ने ऐसा ही लिखा था। इस में कितना सच है, और कितना झूठ है इसे कौन जानता है? "जब मनुष्य के लिखे चित्र में सिंह की हार और सिंह का निरादर के साथ मनुष्य की जीत लिखी गई तब सिंह के हाथ में लिखने के लिये चित्र का तख्ता दे देने पर कैसा चित्र लिखा जाता। उस चित्र के तख्ते पर आदमी चूहे के समान जान पड़ता इस में सन्देह नहीं। मंदभागिनी बङ्गभूमि सहज ही दुर्बला हुई। अब उस के चित्र का तख्ता शत्रु के हाथ में चला गया है।

# पञ्चम परिच्छेद ।

## जाल टूट गया ।

गौड़ेश्वर के नगर में आते ही बख्तियार खिलजी ने धर्माधिकारी पशुपति के पास दूत भेज कर उन से मिलने की इच्छा प्रगट की। उन के साथ मुसलमानों की सन्धि हुई थी। उस को पूरा करने का समय आ पहुंचा।

पशुपति ने इष्ट देवी को प्रणाम कर के, कुपिता मनोरमा से बिदा लेकर कभी प्रसन्न और कभी डरते हुए चित्त से उस मुसलमान के पास पहुंचे। बख्तियार खिलजी ने खड़े हो कर उन को प्रणाम किया और कुशल पूछा। पशुपति राज्यसेवकों के खून की नदी में पैर धोकर आये थे, इस से तुरत कोई उत्तर न दे सके। बख्तियार खिलजी ने उन के चित्त का भाव समझ कर कहा "पण्डितवर! राजसिंहासन पर बैठने के रास्ते में फूल नहीं बिछे हुए हैं। इस रास्ते से चलने पर भाई बन्धुओं की खोपड़ियां पैर में चुभेंगी।"

पशुपति ने कहा "सच है। पर जो विरोधी हैं उन्हीं को मारना ज़रूरी है। वे लोग विरोधी नहीं हैं।"

बख्तियार ने कहा "क्या आप खून की धारा देख कर अपनी मंजूरी याद कर दुखी हुए हैं?"

पशुपति ने कहा " जो मञ्जूर कर लिया है उसे ज़रूर करूंगा। आप भी वैसा ही करेंगे। इस में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है।"

बख्ति०—कुछ संदेह नहीं है। केवल एक मेरी प्रार्थना है।

पशु०—आज्ञा दीजिये।

बख्ति०—कुतुबउद्दीन ने गौड़ पर हुकूमत करने का बोझा आप पर रख दिया। आज से आप बंगाल में राजा के प्रतिनिधि (बादशाह के कायम मुकाम) हुए। पर मुसलमान बादशाह का यही विचार है कि इसलाम धर्मियों के सिवा दूसरा कोई राजकाज में नहीं घुस सकता। इस से आप को इसलाम धर्म ले लेना होगा।

पशुपति का मुंह सूख गया। उन ने कहा " संधि के समय ऐसी कोई बात नहीं हुई थी। "

बख्ति०—यदि यह बात न हुई, तो भूल हुई। और यह बात आप से नहीं कही गई; तो भी आप सरीखे बुद्धिमान् को बिना कहे ही समझ जाना चाहिये। क्योंकि ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि मुसलमान लोग बंगाल को जीत कर अब हिन्दू को दे दें।

प०—मैं आप के सामने बुद्धिमान् नहीं समझा जा सकता।

बख्ति०—नहीं समझे गये थे, पर अब समझे गये। आप मुसलमानी धर्म लेने के लिये अपना विचार स्थिर कर लीजिये।

प०—( अहंकार से ) मैं ने स्थिर संकल्प कर लिया है कि मुसलमान बादशाह की सारी बादशाही मिल जाने पर भी सनातन धर्म छोड़ कर नरकगामी न बनूंगा।

बख्ति० यह आप की भूल है जिस को आप सनातन धर्म कहते हैं वह केवल भूतों की पूजा है। कुरान में लिखा हुआ धर्म ही सत्य धर्म है। महम्मद का भजन कर के इस लोक और परलोक में भी मंगलसाधन कीजिये।

पशुपति मुसलमानों की दुष्टता समझ गये कि 'छल से न हो सकेगा, तो बल से करेंगे।' इस लिये कपटी के साथ कपट न कर के अहंकार करना ठीक नहीं है। उन ने थोड़ी देर सोच कर कहा "जो आज्ञा। मैं आप की आज्ञा मानूंगा।"

बख्तियार ने भी उन के मन का भाव समझ लिया। बख्तियार यदि पशुपति से अधिक चतुर न होता, तो इतने सहज में गौड़ को न जीत सकता। बंगभूमि के भाग्य में यही था कि "यह भूमि युद्ध से न जीती जायगी वरन् चतुरता ही से जीती जायगी।" चतुर क्लाइव साहेब इस के दूसरे उदाहरण हैं।

बख्तियार ने कहा "अच्छा ! अच्छा !" आज हमलोगों का शुभ दिन है। ऐसे कामों में देर करना ठीक नहीं। हमलोगों के पुरोहित आ गये हैं। इसी समय आप को इसलाम धर्म की दीक्षा देंगे।"

पशुपति ने सोचा कि "सर्वनाश ही हुआ।" फिर कहा 'थोड़ा सा समय दीजिये। परिवार के लोगों को ले आऊँ। सब परिवार के साथ ही मुसलमानी धर्म लूंगा।"

बख्तियार ने कहा "मैं उन लोगों को बुलाने के लिये अपना आदमी भेज देता हूँ। आप इसी पहरेदार के साथ जाकर ठहरिये।"

पहरेदार ने आकर पशुपति को पकड़ लिया पशुपति ने क्रोध कर के कहा ' यह क्या ? क्या मैं कैदी हुआ ? "

बख्तियार ने कहा " इस समय यही सही। "

पशुपति राजभवन में कैदी हुए।

मकरी का जाल फैल गया। उस में केवल आप ही बँध गये। हम पशुपति को पाठकों के सामने बुद्धिमान् कहते हैं। पाठक महाशय कहें कि " जिस मनुष्य ने शत्रु का इतना विश्वास किया कि अकेले उन के जीते हुए मकान में प्रवेश किया, उस की चतुरता कितनी है ? " पर विश्वास न कर के क्या करें। यह विश्वास न करने से युद्ध करना पड़ता। मकरी जाल में पड़ने पर लड़ाई नहीं कर सकती।

उसी दिन रात को महावन से बीस हज़ार मुसलमानों ने आ कर नवद्वीप को उथल पुथल कर दिया। नवद्वीप जीत लिया गया। जो सूर्य उस दिन अस्त हो गये उन का उदय फिर नहीं हुआ। अब क्या उदय न होगा ? उदय और अस्त दोनों ही स्वाभाविक नियम है।

---

## षष्ठ परिच्छेद।

### पिञ्जरा टूट गया।

—*:o:*—

जितने समयों तक पशुपति घर रहते थे उतने दिनों तक मनोरमा को सदा अपनी आँखों के सामने रखा करते थे। पर

जब वे मुसलमान से मिलने के लिये गये तब घर के सब दरवाजे बन्द कर के शान्तशील को घर की रखवाली के लिये छोड़ कर चले गये।

पशुपति के जाते ही मनोरमा भागने का उद्योग करने लगी। उस घर के चौक चौक में पता लगाने लगी। भागने के लायक कोई रास्ता खुला हुआ न देख पड़ा। बहुत ऊंचे पर दो चार खिड़कियां थीं, पर उस पर चढ़ना कठिन था। उन के भीतर से मनुष्य के शरीर का पार होना अनहोनी बात थी। और वे खिड़कियां इतनी ऊंची थीं कि उस पर से कूद कर जमीन पर आ जाने पर हड्डियों के चकनाचूर हो जाने की पूरी सम्भावना थी। मनोरमा पगली थी, इस कारण उस ने उसी खिड़की के रास्ते निकलने की इच्छा की।

इसी लिये पशुपति के जाने के बादही मनोरमा पशुपति के शयनगृह में पलंग पर चढ़ गई। पलंग पर चढ़ जाने से खिड़की पर चढ़ना आसान हो गया। पलंग पर चढ़ने के बाद खिड़की पकड़ कर मनोरमा ने खिड़की के छेद से पहले दोनों हाथ, पीछे सिर, इस के बाद छाती तक बाहर कर दिया। खिड़की के पास बाग में एक आम के पेड़ की पतली डाल देख पड़ी। मनोरमा ने उस को पकड़ लिया, तब पिछले शरीर को खिड़की से बाहर कर के डाल पकड़ कर वह झूलने लगी। कोमल शाखा उस के बोझ से झुक गई, तब भूमि उस के पैरों के पास आ गई। मनोरमा शाखा छोड़ कर खेल ही में जमीन पर उतर पड़ी और एक पल भी न ठहर कर जनार्दन के घर की ओर चली।

# सप्तम परिच्छेद ।

## मुसलमानों का उपद्रव ।

—*:o:*—

उसी आधीरात को नवद्वीप नगर जीतने से मतवाले मुसलमानों की सेना के हमले से आंधी के झोंके से उछाले हुए तरंगों को उठाने वाले समुद्र के समान उथल पुथल हो उठा। सर्कारी सड़कें, अगणित घुड़सवार, अगणित पैदल और अगणित तलवार, धनुष तथा बरछे धारण करने वाले सिपाहियों से भर गईं।

राजधानी के रहने वाले सेनारहित थे इस कारण अपने २ घरों में घुस गये। दरवाज़ा बंद कर के अपने २ इष्ट देवता का नाम लेने लगे।

मुसलमानों ने सर्कारी सड़क पर जो दो एक अनाथ हतभागों को पाया उन को वे बरछे से बेध कर उन मकानों पर हमला करने लगे जिन के दरवाज़े बंद थे। कहीं दरवाज़ा तोड़ कर, कहीं दीवार फांद कर, कहीं नीचता से गृहस्थों को जीने की आशा दे कर घर में घुसने लगे। घर में घुस कर सब धन ले कर पीछे स्त्री, पुरुष, बूढ़े और लड़के सभी का सिर काटने लगे। किसी को न छोड़ा। केवल युवती स्त्रियों के लिये दूसरा नियम था।

गृहस्थों के घर खून में डूबने लगे। खून से सर्कारी सड़कों पर कीच हो गया। खून से मुसलमान सेना के सब कपड़े लाल बन गये। लूटे हुए धनों के बोझ से घोड़ों की पीठ और नौकरों

के काथ दुखने लगे। बरछों से छेदे हुए सिर भयानक देख पड़ने लगे। ब्राह्मणों के जनेऊ घोड़ों के गले में लटकने लगे। सिंहासन के सब शालग्राम मुसलमानों के पैरों के धक्के से लुढ़कने लगे।

उस रात को आकाश भयंकर शब्दों से भरने लगा। घोड़ों की टाप, सैनिकों के कोलाहल, हाथियों की चिक्कार, मुसलमानों के जय शब्द और उस पर दुःखियों के रोने के शब्द थे। माताओं का रोना, लड़कों का रोना, बूढ़ों का करुणा से विलाप और युवतियों की चिल्लाहट हो रही थी।

जिस वीर पुरुष को माधवाचार्य इतने यत्न से मुसलमानों को दबाने के लिये नवद्वीप में लेकर आये थे इस समय वह कहां है?

इस भयंकर मुसलमानों के प्रलय करने के समय हेमचन्द्र लड़ाई में नहीं हैं। अकेले लड़ाई में आकर क्या करेंगे?

उस समय हेमचन्द्र अपने घर के शयनगृह में बिछौने पर सो रहे थे। शहर में हमला होने की आवाज़ उन के कानों तक पहुंची। उन ने दिग्विजय से पूछा "यह कैसा हल्ला है?"

दिग्विजय ने कहा "मुसलमानों की सेना ने शहर पर हमला किया है।"

हेमचन्द्र अचम्भे में आ गये। उन ने अब तक, बख्तियार खिलजी का शहर ले लेना और शहर के लोगों के भाग जाने का समाचार नहीं सुना था। दिग्विजय ने हेमचन्द्र को सब समाचार सुनाया।

हेमचन्द्र ने कहा "शहरवाले क्या करते हैं?"

दि०—जो कर सकते हैं, भाग रहे हैं। जो नहीं कर सकते हैं वे अपना प्राण गवांते हैं।"

हे०—और गौड़ की सेना?

दि०—किसके लिये लड़ेंगे? राजा तो भाग गये इस लिये सब लोग अपनी २ राह देख रहे हैं।

हे०—मेरा घोड़ा कसो।

दिग्विजय घबड़ा गया। उस ने पूछा "कहां जाइयेगा?"

हे०—शहर में।

दि०—अकेले?

हेमचन्द्र ने भौंहें टेढ़ी कर लीं। भौंहें देखते ही डर कर दिग्विजय घोड़ा कसने चला गया।

हेमचन्द्र बड़े बड़े कीमती गहने और कपड़े पहन कर सुन्दर घोड़े की पीठ पर चढ़ गये और भयानक बरछा हाथ में ले कर नदी के प्रबल प्रवाह के समान उस अथाह मुसलमानों की सेना-समुद्र में कूद पड़े।

हेमचन्द्र ने देखा "मुसलमान लोग लड़ते नहीं हैं केवल लूट रहे हैं। लड़ने के लिये कोई उन के सामने खड़ा नहीं है। इस लिये उन मुसलमानों का मन लड़ने में था भी नहीं; जिन को लूट रहे थे उन्हीं को बिना लड़े ही लूटने के समय मार रहे थे। इस कारण मुसलमानों ने दल बाँध कर हेमचन्द्र को मारने के लिये उद्योग नहीं किया। यदि कोई मुसलमान हेमचन्द्र से ललकारा जाता, तो वह अकेला लड़ने को तैयार हो जाता पर वह उसी समय इन के हाथ से मारा जाता।

हेमचन्द्र उदास हुए। वे लड़ने के लिये आये थे। पर मुसलमानों ने पहले ही जीत पा ली थी। अब लूटना छोड़ कर उन के साथ कायदे के साथ किसी ने लड़ाई नहीं की। उन ने मन ही

मन सोचा ' एक एक कर के पेड़ के पत्तों के काटने से क्या वन को पत्तों से शून्य कर सकता हूं ?' मुसलमानों को मार कर क्या करूँगा। यदि मुसलमान मुझ से लड़ते नहीं हैं, तो मुसलमानों के मारने से क्या सुख है ? वरन अब तो गृहस्थों की रक्षा में सहायता देना ही अच्छा है।" हेमचन्द्र वही करने लगे। पर इस में भी पूरी सफलता न हुई। दो मुसलमान उन के साथ लड़ते थे और दूसरे मुसलमान उसी मौके पर गृहस्थों का धन लूट कर चल देते थे। जो हो, हेमचन्द्र यथा शक्ति दुःखियों का उपकार करने लगे। रास्ते के बगल में एक झोपड़ी के बीच से रोने की आवाज़ सुन पड़ी। मुसलमान के सताये हुए मनुष्य का आर्तनाद समझ कर हेमचन्द्र घर में घुस गये।

उन ने देखा घर में मुसलमान नहीं है। पर घर में मुसलमान के किये हुए आक्रमण के सब चिन्ह हैं। रुपये पैसे कुछ नहीं है, फिर जो चीज़ें हैं सब टूटी फूटी, और एक ब्राह्मण घायल होकर पृथिवी पर पड़ा २ रो रहा है। वह ऐसा घायल हो गया था कि उस की मृत्यु निकट आ गई थी। वह हेमचन्द्र को देख उन्हें मुसलमान समझ कर कहने लगा "आया—मारो, जल्द मरूंगा। मारो—मेरा सिर लेकर उसी राक्षसी को देदेना। ओह ! प्राण जा रहा है। पानी ! पानी ! कौन पानी देगा ?"

हेमचन्द्र ने कहा "तुम्हारे घर में पानी है ?"

ब्राह्मण दीन वचन कहने लगा "नहीं जानता, याद नहीं है, पानी ! पानी ! पिशाची ! इसी पिशाची के लिये प्राण गया।"

b

हेमचन्द्र ने झोपड़ी में ढूढ़ कर देखा "एक घड़े में जल है" बरतन नहीं था इस कारण पत्ते का दोना बना कर उसी में पानी दे दिया। ब्राह्मण ने कहा "नहीं, नहीं, पानी नहीं पीऊंगा। मुसलमान के हाथ का पानी नहीं पीऊंगा।" हेमचन्द्र ने कहा "मैं मुसलमान नहीं हूं, मैं हिन्दू हूं, मेरे हाथ का पानी पी सकते हो, मेरी बात नहीं समझते ?"

ब्राह्मण ने जल पी लिया। हेमचन्द्र ने कहा "तुम्हारा और उपकार क्या करूं ?"

ब्राह्मण ने कहा "और क्या करोगे ? और क्या ? मैं मरता हूं, जो मर रहा है उस का क्या करोगे ?"

हेमचन्द्र ने कहा "तुम्हारा कोई है ? उस को तुम्हारे पास छोड़ जाऊंगा।"

ब्राह्मण ने कहा "और कौन ? कौन हैं ? बहुत हैं। उन में वही राक्षसी ! वही राक्षसी है। उस से कहना—कहना मेरे अपराध का बदला हो गया।

हे०—"वह कौन है ? किस से कहूंगा ?"

ब्राह्मण कहने लगा—"कौन ? वही पिशाची ! पिशाची को नहीं पहचानते ? पिशाची मृणालिनी। मृणालिनी ! मृणालिनी-पिशाची।"

ब्राह्मण और भी अधिक रोने लगा। हेमचन्द्र मृणालिनी का नाम सुनते ही अचम्भे में पड़ गये। फिर पूछा—"मृणालिनी तुम्हारी कौन है ?"

ब्राह्मण ने कहा "मृणालिनी कौन है ? कोई नहीं। मेरा यम है।"

हे०—मृणालिनी ने तुम्हारा क्या किया है ?

ब्रा०—क्या किया है ? कुछ नहीं। मै—मैं ने उस की दुर्दशा की थी। उस का बदला हो गया।

हे०—" क्या दुर्दशा की थी ?"

ब्रा०—अब नहीं बोल सकता। पानी दो।

हेमचन्द्र ने फिर उस को पानी पिलाया। ब्राह्मण पानी पीकर होश में आ गया। हेमचन्द्र ने उस से पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ? "

ब्रा०—व्योमकेश।

हेमचन्द्र की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। दांतों से ओंठ काटने लगे। हाथ का बरछा अच्छी तरह पकड़ लिया। फिर उसी समय शान्त हो कर बोले "तुम कहां रहते हो ? "

ब्रा०—गौड़, गौड़, नहीं जानते ? मृणालिनी मेरे घर में रहती थी।

हे०—उस के बाद ?

ब्रा०—उस के बाद, उस के बाद और क्या ? उस के बाद यहीं मेरी दशा हुई। मृणालिनी पापिनी है, बड़ी निर्दयी है। मेरी ओर फिर कर भी उस ने न देखा। क्रोध कर के मैं ने अपने पिता से उस के नाम में व्यर्थ ही कलंक लगाया। पिता ने बिना अपराध ही उस को अपने घर से मार भगाया। राक्षसी—राक्षसी मुझ को छोड़ गई ?

हे तब तुम उस को गाली क्यों देते ?

ब्या० क्यों? क्यों? गाला? गाली? देता हू? मृणालिनी मेरी ओर फिर कर भी कभी न देखती थी, और मैं- मैं उस को देखकर प्राण- प्राण धारण करता था। वह चली गई, उसी—उसी दिन से मैं ने सब कुछ छोड़ दिया। उस के लिये मैं किन २ देशों में नहीं गया? कहां २ उस पिशाची को न ढूंढ़ा? गिरिजाया भिखारिनी की लड़की है। उस ने आकर कहा "मृणालिनी नवद्वीप में है।" मैं नवद्वीप में आया, पर उस का पता न पाया। मुसलमान—मुसलमान के हाथों मर रहा हू। राक्षसी के लिये मरता हू। भेट होने पर कहना। मेरे पाप का फल मिला।

व्योमकेश और बोल न सका। उस परिश्रम से वह बहुत ही निर्जीव हो गया। बुझनेवाला दीप बुझ गया। एक क्षण के बाद भयानक मुंह बनाकर व्योमकेश मर गया।

हेमचन्द्र फिर खड़े न हुए। और मुसलमानों को न मारा। किसी प्रकार रास्ता बनाकर घर की ओर चले।

## अष्टम परिच्छेद।

### मृणालिनी को सुख क्या है?

—:०:—

जिस जगह हेमचन्द्र मृणालिनी को सीढ़ी के पत्थर के आघात से दुःखिनी करके छोड़ गये वह अब भी उसी स्थान पर है। इस पृथ्वी पर जाने के लिये और कोई स्थान नहीं था। सभी स्थान बराबर ही हो रहे थे। रात बीत गई। भोर हो

आया। गिरिजाया ने जो कुछ कहा उस का कोई जवाब मृणालिनी ने नहीं दिया। सिर झुकाये बैठी रही। स्नान और भोजन का समय हुआ। गिरिजाया ने उस को पानी में लेजा कर स्नान कराया। स्नान करके मृणालिनी वही गीला कपड़ा पहिने जल में बैठी रही। गिरिजाया को खुद भूख लगी। पर वह मृणालिनी को न उठा सकी। साहस करके बार बार बोल भी न सकी, अंत में पासवाले बन में जाकर कुछ फल मूल लाकर खाने के लिये मृणालिनी को दिया। मृणालिनी ने केवल उन्हें छू दिया। गिरिजाया ने प्रसाद खाया। भूख के कारण मृणालिनी को न छोड़ा।

इसी प्रकार पूर्वाचल का सूर्य मध्य आकाश में और मध्य आकाश का सूर्य पश्चिम चला गया। शाम हुई। गिरिजाया ने देखा कि मृणालिनी उस समय भी घर आने का लक्षण नहीं दिखलाती। गिरिजाया बहुत घबड़ाई। पहिली रात जगने ही में बीती। आज की रात को भी जगने का ढंग दिखाई दे रहा है। गिरिजाया कुछ न बोली। पेड़ों के पत्ते चुनकर सीढ़ी पर अपने लिये बिछौना बनाया। मृणालिनी उस का मतलब समझ कर बोली "तुम घर जाकर सो रहो।"

गिरिजाया मृणालिनी की बात सुन कर प्रसन्न हुई। और बोली "साथ ही चलूंगी।"

मृणालिनी बोली "मैं भी चलती हूं।"

गि०—मैं तब तक ठहरती हूं। भिखारिनी को दो दण्ड पत्ते बिछा कर सोने में हानि क्या है? पर साहस पाऊं तो कहूं।

स जन्म के लिये राजपुत्र से सम्बन्ध छूट गया तब अब कातिक के पाला में हमलोग क्यों दुःख सहेंगी ?

मृ०—" गिरिजाया ! हेमचन्द्र के साथ मेरा सम्बन्ध इस जन्म में न छूटेगा। मैं कल भी हेमचन्द्र की दासी थी। आज भी उन की दासी हूँ।"

गिरिजाया को बड़ा क्रोध हुआ। वह उठ बैठी। फिर बोली " क्यों ठकुरानी ! तुम अब भी यही कहती हो। तुम उस धूर्त की दासी हो। तब मैं जाती हूं। यहां अब मेरी ज़रूरत नहीं है।

मृ० —गिरिजाया। यदि हेमचन्द्र ने तुम को दुःख दिया है, तो तुम दूसरी जगह उन की निन्दा करना। हेमचन्द्र ने मुझ पर कोई अत्याचार नहीं किया है। मैं क्यों उन की निन्दा सहूंगी ? वह राजपुत्र मेरे स्वामी हैं। मैं उन से फिर बोलूंगी।

गिरिजाया ने और भी क्रोध किया। बड़े परिश्रम से बनाये हुए पत्तों के बिछौने को ताड़ फोड़ कर फेंकने लगी। फिर बोली " उन को अधम नहीं कहूंगी ? एक बार कहूंगी।" (कहती कहती बहुत से पत्तों को घमंड से पानी में फेंक दिया ) " एक ही बार कहूंगी ? नहीं, दश बार कहूंगी।" ( फिर पत्ते फेंकने लगी ) सौ बार कहूंगी फिर पत्ते फेंकने लगी ) हजार बार कहूंगी। इसी प्रकार सब पत्ते चले गये। गिरिजाया कहने लगी—"पाखण्डी नहीं कहूंगी ? किस अपराध से उन ने तुम्हारा इतना निरादर किया ?"

मृ०—वह मेरा ही दोष है। मैं समझा कर उन से सब बातें न कह सकी। क्या कहना चाहिये और क्या कह दिया ?

गि० —ठकुरानी ! अपना सिर टटोल कर देखो।

मृणालिनी ने अपना सिर टटोला।

गि०—क्या देखा?

मृ०—चोट लगी है।

गि०—क्यों चोट लगी?

मृ०—याद नहीं है।

गि०—तुम ने हेमचन्द्र की छाती पर सिर रक्खा था। वे फेंक कर चले गये। पत्थर पर गिर जाने से तुम्हारे सिर में चोट लग गई है। मृणालिनी ने कुछ देर तक सोचा—कुछ याद नहीं आया। फिर बोली "याद नहीं है। जान पड़ता है आप ही गिर गई होऊँगी।"

गिरिजाया अचम्भे में आ कर बोली "ठकुरानी! इस संसार में तुम्हीं सुखी हो।"

मृ०—क्यों?

गि०—तुम क्रोध नहीं करती।

मृ०—मैं ही सुखी हूं। पर उनके लिये नहीं हैं।

गि०—तब क्यों सुखी हो?

मृ०—मैं ने हेमचन्द्र को देखा है, इस लिये।

# नवम परिच्छेद ।

## स्वप्न ।

गिरिजाया ने कहा " घर चलो । "

मृणालिनी ने कहा " शहर में यह क्यों हल्ला हो रहा है ? " (उस समय मुसलमानों की सेना नगर को लूट मार कर रही थी)

भयानक शब्द सुन कर दोनों को डर हो गया। गिरिजाया बोली " चलो इस समय सवेरी से चलें । " दोनों ने प्रधान सड़क के पास तक जाकर देखा, जाने का कोई उपाय नहीं है। लाचार लौट कर उसी तालाब की सीढ़ी के पास दोनों लौट आईं । गिरिजाया बोली " यदि वे सब यहां आ जायँ ? "

मृणालिनी चुप रही। गिरिजाया आप ही बोली " बन की छाया में ऐसी छिपूंगी कि कोई देख न सकेगा । "

दोनों आ कर सीढ़ियों पर बैठ गईं ।

मृणालिनी का मुंह कुम्हला गया। उस ने गिरिजाया से कहा " गिरिजाया ! जान पड़ता है मेरा सच्चा ही सर्वनाश हो जायगा । "

गि०—यह क्यों ?

मृ०—अभी एक घुड़सवार गया है। वह हेमचन्द्र ही हैं। सखी ! नगर में भयंकर युद्ध हो रहा है। यदि मेरे प्रभु अकेले युद्ध में गये हैं, तो नहीं जानती कि कौन सी विपत्ति आ पड़ेगी '

गिरिजाया कोई उत्तर न दे सकी। उसे नींद आ रही थी। कुछ देर के बाद मृणालिनी ने देखा कि गिरिजाया सो रही है। मृणालिनी ने भी कुछ भोजन नहीं किया। वह सोई भी न थी इस से कमज़ोर हो रही थी। और सारे रात दिन हृदय की पीड़ा से भोग कर रही थी, नींद के बिना अब शरीर चल भी नहीं सकता था। उसे भी आलस्य आ गया। नींद में वह स्वप्न देखने लगी। उस ने देखा कि "हेमचन्द्र ने अकेले ही सारी सेना जीत ली है। और मृणालिनी उस वीर बिजली को देखने के लिये सरकारी सड़क पर खड़ी है। सरकारी सड़क पर हेमचन्द्र के आगे पीछे कितने ही हाथी, कितने ही घोड़े और कितने ही पैदल सिपाही जा रहे हैं। मानो वही सेना समूह मृणालिनी को पटक कर पैरों से कुचलती चली गई। उस समय हेमचन्द्र ने अपनी समुद्री घोड़ी से उतर कर उस का हाथ पकड़ कर उठा लिया। मानो मृणालिनी ने हेमचन्द्र से कहा, "प्रभु ! बहुत दुःख पा रही हूं। दासी को अब मत छोड़ो।" मानो हेमचन्द्र ने कहा "अब कभी तुम को न छोड़ूंगा।" मानो उसी कंठ की आवाज़ से उस की नींद खुल गई। "अब कभी तुम को न छोड़ूंगा" यही बात जगने पर भी उस ने सुनी। आंखों को मसल दिया। क्या देखा? जो देखा, उस पर विश्वास नहीं हुआ। फिर उस ने देखा कि सच है। हेमचन्द्र सामने खड़े हैं। हेमचन्द्र ने कहा "और एक बार क्षमा करो। अब कभी तुम्हारा त्याग न करूँगा।

अभिमानरहित भोली भाली, निर्लज्जा मृणालिनी ने उन के गले में लिपट कर उन के कंधे पर अपना सिर रख दिया।

# दशम परिच्छेद ।

---

## प्रेम अनेक प्रकार का होता है ।

---

मृणालिनी की आंखों में आनन्द के आंसू भर आये थे। उस का हाथ पकड़ कर हेमचन्द्र उस उपवनवाले घर की तरफ़ ले चले। हेमचन्द्र ने एक वार मृणालिनी को अनादृत, तिरस्कृत, और दुःखिनी कर के त्याग दिया था। आज उन ने आप ही आकर उस को अपनी छाती से लगा लिया। यह देखकर गिरिजाया अचंभे में पड़ गई। पर मृणालिनी ने कुछ भी न पूछा। न कुछ कहा ही। आनन्द में डूबी हुई अपने आंचल से आंसुओं को रोक कर चली। गिरिजाया को पुकारने की ज़रूरत न पड़ी। वह कुछ दूर का फ़ासिला देकर साथ ही साथ चली।

जब उपवन की वाटिका में मृणालिनी आ गई तब दोनों बहुत दिनों की रखी हुई अपने अपने हृदय की बातें कहने लगे। उस समय हेमचन्द्र ने, जिन २ कारणों से उन के हृदय में मृणालिनी पर क्रोध हुआ था और जिन २ कारणों से उस क्रोध का नाश हुआ वे सभी बातें कह डालीं। तब मृणालिनी ने भी जिस प्रकार हृषीकेश का घर छोड़ा था और जिस प्रकार वह नवद्वीप आई थी वे सभी बातें कहीं। उस समय दोनों ही अपने २ हृदय की पुरानी बातें आपस में कहने लगे। उस समय वे दोनों कई प्रकार की नई २ प्रतिज्ञायें करने लगे। फिर

वे दोनों एकदम बेमतलब की कितनी बातें भी बड़े मतलब की बातों के समान बड़े ही चाव से कहने लगे। उस समय उन दोनों ने बड़े कष्ट से गिरते हुए आंसुओं को कई बार रोका। और एक दूसरे के मुंह की ओर देखकर बिना कारण की मीठी मीठी हंसी हंसने लगे। उस हंसी का अर्थ यही था कि "मैं इस समय कितना सुखी हूं।" इस के बाद जब प्रातःकाल के उदय जनानेवाले पक्षी चहचहाने लगे, तब कईबार दोनों ने अचंभे से सोचा कि "आज अभी रात क्यों बीत गई?" और उसी नगर में मुसल्मानों के हमले से, जो उछलते हुए समुद्र की भयङ्कर लहर के समान कोलाहल हो रहा था वह आज उन दोनों के हृदयसागर की तरंगों के कोलाहल में डूब गया है।

उपवनवाले घर में दूसरी जगह एक और बात हो गई। दिग्विजय स्वामी के आज्ञानुसार रात में जगकर घर की रक्षा कर रहा था। जिस समय मृणालिनी को लेकर हेमचन्द्र आये उस समय उस ने देखकर पहचाना। मृणालिनी को वह जानता नहीं था, पर धीरे २ वह समझने लगा। मृणालिनी को देखकर वह कुछ घबड़ाया, पर पूछ नहीं सकता था। बिचारा क्या करे? थोड़ी देर के बाद गिरिजाया भी आ पहुंची। देखकर दिग्विजय ने मन में सोचा "जान पड़ता है कि ये दोनों अभी गौड़ देश से हम दोनों आदमियों को देखने के लिये आई हैं। ठकुरानी युवराज को देखने आई हैं और यह मुझे देखने के लिये आई हैं। यह विचार कर दिग्विजय ने एक बार अपनी मूछदाढी संवारी और सोचा "क्यों न होगा?"

अब सोचा लेकिन यह बड़ी दुष्ट है एक दिन भी इस ने कभी मुझे मीठी बात न कही। सिर्फ मुझे इस ने गाली दी। तब यह मुझे यह देखने आवेगी? इस की क्या उमीद है? जो हो, परीक्षा करके देखू। रात तो बीत गई। स्वामी भी लौट आये। अब मैं छिपकर सोऊं। देखूं, प्यारी मुझे ढूंढ़ लेती है कि नहीं? यह सोच कर दिग्विजय एक एकान्त स्थान में जाकर सो गया। गिरिजाया ने उसे देखा।

गिरिजाया तब मन ही मन सोचने लगी "मैं तो मृणालिनी की दासी हूं। मृणालिनी इस घर की स्वामिनी बनीं वा बनेंगी, तब तो घर का सब काम काज करने का मेरा ही हक है।" इस प्रकार मन को समझौती देकर गिरिजाया ने एक झाड़ू उठा लिया। और जिस घर में दिग्विजय सो रहा था उसी घर में घुसी। दिग्विजय ने आंखें मूद ली थीं। पैरों की आहट से समझ गया कि, गिरिजाया आ गई। मन में बड़ा आनन्दित हुआ कि, तब तो गिरिजाया मुझे प्यार करती है। देखूं गिरिजाया क्या बोलती है? यह सोच कर दिग्विजय आंखें मूदे ही पड़ा रहा। अचानक उस की पीठ पर झाड़ू की चोट धमाधम पड़ने लगी। गिरिजाया गला फाड़कर बोलने लगी "आः बड़े दुःख की बात है। घर में कूड़े कर्कट बहुत इकट्ठे हो गये हैं। देखो! यह क्या? एक आदमी है? क्या चोर है? आः मरो! राजा के घर चोरी?" यह कह कर झाड़ू से मारने लगी। दिग्विजय की पीठ फट गई।

"ऐ गिरिजाया मैं हूं मैं हूं"

में ? हां तुम्ही को जानकर तो झाड़ू से पीट रही हू ।' यह कहने के बाद अब उस पर बयासी सिक्के की तौल से झाड़ू पड़ने लगे ।

"दुहाई ! दुहाई ! गिरिजाया मैं दिग्विजय हूं ।"

"इस समय चोरी करने आया है— मैं दिग्विजय हूं, दिग्विजय कौन आदमी है रे ?" झाड़ू का वेग अब नहीं रुकता।

अबकी बार दिग्विजय ने रो कर कहा—"गिरिजाया ! मुझे भूल गई ?"

गिरिजाया बोली "तुझ मरदुआ से कौन सी बातचीत हुई है ?"

दिग्विजय ने देखा कि अब मेरा बचना कठिन है। इस लड़ाई को खतम ही कर देना अच्छा है । दिग्विजय उस समय कोई उपाय न देख कर हांपता २ घर से निकल भागा। गिरिजाया हाथ में झाड़ू लिये ही उस के पीछे २ दौड़ी।

---

## एकादश परिच्छेद ।

### पूर्व परिचय ।

भोर होते ही हेमचन्द्र माधवाचार्य को ढूंढने के लिये निकले । गिरिजाया आकर मृणालिनी के पास बैठ गई। गिरिजाया, मृणालिनी की दुःखभागिनी बनी थी। मृणालिनी

का हृदय बनकर गिरिजाया ने दु:ख के समय उस की दु:ख की कहानी सुनी थी। आज सुख के समय वह सुख की भागिनी क्यों न बनेगी? आज इस हार्दिक प्रीति के साथ सुख की कथा क्यों न सुनेगी? गिरिजाया भिखारिनी है और मृणालिनी एक बड़े धनी की लड़की है। इन दोनों में सामाजिक भेद बहुत बड़ा था। पर दुःख के दिनों में गिरिजाया मृणालिनी की एक ही प्यारी सखी थी। उस समय भिखारिनी और राजबधू में कुछ भेद नहीं था। आज उसी बल पर गिरिजाया मृणालिनी के हृदय के सुख की हिस्सेदार बनी।

जो बातें हो रही थीं उन से गिरिजाया विस्मित और आनन्दित होती थी। उस ने मृणालिनी से पूछा "तो इतने दिनों तक तुम ने ऐसी बात किस लिये छिपा रखी थी?"

मृ०—इतने दिनों तक राजपुत्र ने मना कर दिया था, इसलिये ज़ाहिर नहीं किया। इस समय उन ने ज़ाहिर कर देने की राय दे दी है इसलिये ज़ाहिर करती हूं।

गि०—ठकुरानी! सब बातें कहो न? सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

तब मृणालिनी ने कहना आरम्भ किया। "मेरे पिता एक बौद्ध धर्मावलम्बी सेठ थे। वे बड़े धनी और मथुरा के राजा के बड़े प्रिय थे। मथुरा की राजकन्या मेरी सखी थी।"

"मैं एक दिन मथुरा में राजकन्या के साथ नाव पर चढ़कर यमुना में जलविहार करने के लिये गई थी। इसी समय अचानक बड़ी भारी आंधी पानी के आने से नाव पानी में

डूब गई राजकन्या अनेक रखवाले तथा मल्लाहों की मदद से बच गई मैं डूब चली। संयोग वश एक राजपुत्र उस समय नाव में बैठकर सैर कर रहे थे। उस समय मैं उन्हें नहीं पहचानती थी। वही हेमचन्द्र हैं। वे भी हवा के डर से नाव को किनारे पर ला रहे थे। जल में मेरी चोटी उन्हें देख पड़ी। वे देखते ही खुद जल में कूदकर मुझे निकाल लाये। उस समय मैं बेहोश थी। हेमचन्द्र मुझे नहीं पहचानते थे। उस समय वे तीर्थयात्रा करने के लिये मथुरा में आये थे। अपने घर लेजाकर उन ने मेरी बड़ी सेवा की। मुझे होश हुआ। वे मेरा पता पाकर मुझ को मेरे पिता के घर पहंचाने का उपाय करने लगे। पर तीन दिनों तक आंधी और पानी न थम्हा। ऐसा बुरा दिन हुआ कि कोई घर से बाहर न हो सका। इस लिये तीन दिनों तक हम दोनों को एक ही घर में रहना पड़ा। दोनों ने दोनों को अच्छी तरह पहचाना। केवल कुल का परिचय नहीं पाया। दोनों ने दोनों के हृदय का पता भी लिया। उस समय मेरी उम्र पन्द्रह बरस की थी। पर उसी उम्र में मैं उन की दासी बन गई। उस नाज़ुक उम्र में सब बातें नहीं समझती थी। हेमचन्द्र को देवता के समान समझने लगी। जो वे बातें कहते थे मैं उन्हें शास्त्रपुराण समझती थी। उन ने कहा "व्याह करो", इस लिये मुझे भी जान पड़ा कि यह ज़रूर करना चाहिये। चौथे दिन उपद्रव शान्त हुआ। तब मैं ने उपवास किया। दिग्विजय ने सब सामान जुटा दिया। तीर्थयात्रा में राजपुत्र के कुलपुरोहित संगही थे। उन ने हम दोनों का व्याह करा दिया।"

गि०—कन्यादान किस ने किया ?

मृ०—अरुन्धती नाम की एक स्त्री मेरे पुराने कुटुम्ब की थीं। वे नाता में मेरी मा की बहिन लगती थीं। मुझ को उन ने लड़कपनही से पाला पोसा था। वे मुझे बहुत चाहती थीं। मेरी सभी बुराइयां सह लिया करती थीं। मैं ने उन का नाम बताया। दिग्विजय किसी छल से नगर में उन के पास कुछ समाचार भेज कर छल कर के उन्हें हेमचन्द्र के घर ले आया। अरुन्धती समझती थी कि—" मैं ( मृणालिनी ) यमुना में डूब कर मर गई। वे मुझे जीती जागती देख इतनी प्रसन्न हुईं कि और किसी बात पर ध्यान नहीं दिया और उस विवाह से भी अप्रसन्न न हुईं। मैं ने जो कहा उसे ही उन ने मान लिया। उन्हीं ने कन्यादान किया। व्याह के साथ स्वामी के साथ पिता के घर गई। सब बातें मैं ने सखी २ कहीं पर व्याह की बात मैं ने छिपाई। मैं, हेमचन्द्र, दिग्विजय, कुलपुरोहित और अरुन्धती मौसी को छोड़ कर व्याह की बात और कोई नहीं जानता था। आज तुम ने जानी।

गि०—माधवाचार्य भी नहीं जानते ?

मृ०—नहीं, उन के जान जाने पर मेरी सभी बातें ही चौपट हो जातीं। उन के जानने से मगध के राजा भी जरूर सुनते। मेरे बाप बौद्ध हैं और मगध के राजा बौद्धों के कट्टर शत्रु हैं।

गि०—ठीक, यदि तुम्हारे बाप तुम को अब तक क्वाँरी जानते हैं, तो इस उम्र में भी तुम्हें क्यों न व्याह दिया ?

मृ०—पिता का दोष नहीं है। उन ने अनेक उपाय किये पर बौद्ध सुपात्र मिलना कठिन है। क्योंकि बौद्धधर्म इस समय

एक प्रकार मिट सा गया है पिता बौद्ध दामाद चाहते हैं और सुपात्र भी ढूंढ़ते हैं। ऐसा वर एक मिल गया था, वह भी मेरे ब्याह के बाद। ब्याह का दिन भी ठीक हो चुका था, किन्तु उस समय मुझे ज्वर आने लगा। वर ने दूसरी जगह अपना ब्याह कर लिया।

गि०—क्या तुम ने अपनी इच्छा से ज्वर बुला लिया था?

मृ०—हाँ, इच्छा ही से। मेरे बाग़ में एक कुंआ है। उस का जल कोई छूता भी नहीं। उस का जल पीने से या उस में स्नान करने से ज़रूर बुखार आ जाता है। मैं ने रात को चुपके से उसी के पानी से स्नान कर लिया था।

गि०—अब यदि फिर तुम्हारा ब्याह होता, तो तुम ऐसा ही करती?

मृ०—इस में क्या सन्देह है? नहीं तो हेमचन्द्र के पास भाग जाती।

गि०—मथुरा से मगध एक महीने का रास्ता है। किस जान होकर किस के साथ भाग जाती?

मृ०—मुझ से भेंट होने के लिये हेमचन्द्र ने मथुरा में एक दूकान खोलकर अपना नाम "रतनदास" बनिया ज़ाहिर किया था। साल में एक बार वहां व्यापार करने के लिये आ जाते थे। जब वे मथुरा में नहीं रहते थे तब दिग्विजय वहां उन की दूकान में रहता था। दिग्विजय से उन ने कह दिया था कि मैं (मृणालिनी) जिस समय जो बात कहूं उस को वह उसी समय पूरी करे। इस लिये मैं निःसहाय न थी।

बात समाप्त हुई। गिरिजाया ने कहा ठकुरानी! मैं ने एक बहुत बड़ा अपराध किया है उसे क्षमा करना होगा। मैं उस का उचित दण्ड भोगने के लिये तैयार हूं।"

मृ०—कौन सा ऐसा बड़ा अपराध तुम ने किया है?

गि०—दिग्विजय तुम्हारा बहुत बड़ा भलाई करने वाला है उस को मैं नहीं जानती थी। मैं जानती थी कि वह बहुत ही मामूली आदमी है। इस लिये आज भोर को मैं ने उस को झाड़ू से खब मारा है। सो अच्छा नहीं किया है,

मृणालिनी ने हँस कर कहा—"तो क्या सज़ा सहोगी?"

गि०—क्या भिखारिन की लड़की का व्याह होगा?

मृ०—(हंसकर) करनाही होगा।

गि०—तब मैं उस मामूली आदमी से व्याह करूंगी? और नहीं करूंगी, तो क्या करूंगी?

मृणालिनी ने फिर हँस कर कहा "तब तुम्हारे बदन में हल्दी लगाऊंगी।"

—*:o:*—

# द्वादश परिच्छेद।

—*:o:*—

## विचार।

—*:o:*—

हेमचन्द्र ने माधवाचार्य के स्थान पर आकर देखा कि आचार्य जप कर रहे हैं। हेमचन्द्र ने प्रणाम करके कहा

"हमलोगों का सब उद्योग व्यर्थ हो गया इस समय इस दास को क्या आज्ञा देते हैं ? मुसलमानों ने गौड़ पर अपना अधिकार कर लिया । जान पड़ता है कि—विधाता ने भारतभूमि के भाग्य में मुसलमानों की दासता ही लिखी है। नहीं तो बिना युद्ध ही मुसलमान गौड़ को कैसे जीत लेते ? यदि इस समय शरीर नष्ट कर देने पर भी जन्मभूमि एक दिन के लिये भी डाकुओं के हाथ से छूट जाती, तो इस समय वह करने के लिये तैयार हूं। इसी विचार से रात को युद्ध की आशा से नगर में आगे बढ़ गया था, पर युद्ध तो न देखा। सिर्फ यही देखा कि एक झुंड हमला करता था और दूसरा झुंड भागता था।"

माधवाचार्य ने कहा "बेटा ! दुःखी मत हो। ईश्वर की इच्छा कभी टलनेवाली नहीं। मैं ने जब गणना कर के देखा था कि मुसलमान हारेंगे, तब निश्चय ही समझो कि मुसलमान हारेंगे। मुसलमानों ने नवद्वीप को अधिकार कर लिया है, पर नवद्वीप तो गौड़ में नहीं है। प्रधान राजा सिंहासन छोड़ कर भाग गये हैं, पर इसी गौड़ राज्य में अनेक करद राजा हैं। वे लोग तो अब भी हारे नहीं हैं। कौन जानता है कि सब राजा इकट्ठे हो, जान पर बाज़ी खेलकर, मुसलमानों से न हारेंगे ?"

हेमचन्द्र ने कहा "उस की कम आशा है।"

माधवाचार्य ने कहा "ज्योतिषियों की गणना कभी झूठी होने का नहीं। ज़रूर सच्ची होगी। तब मुझ से एक भ्रम हो गया है। "पूर्व देश में मुसलमान हारेंगे" इस से मैं ने, "मुसलमान नवद्वीप ही में जीते जायेंगे, ऐसी आशा की थी।

र गौड़ राज्य तो ठीक पूर्व नहीं है। ठीक पूर्व कामरूप हो। जान पड़ता है वहीं मेरी आशा फलवती होगी।

हे०—पर इस समय तो मुसलमानों के कामरूप आने की कुछ उम्मीद नहीं जान पड़ती।

मा०—ये मुसलमान एक क्षण भी चुपचाप न रहेंगे। गौड़ में अच्छी तरह जम जाने के बाद ही कामरूप पर चढ़ाई करेंगे।

हे०—यह भी मैंने मान लिया। और "ये लोग कामरूप पर हमला करते ही हार जायेंगे" यह भी मान लिया। पर यह होने से मेरे पिता के राज्य को उद्धार होने का उपाय क्या हुआ?

मा०—ये मुसलमान अब तक बारम्बार जीत पाकर "अजय" कहला कर राजाओं में प्रसिद्ध हो गये हैं। डर से कोई उन का विरोधी होना नहीं चाहता। यदि ये मुसलमान एक बार भी हार जायेंगे, तो उन की यह प्रतिष्ठा फिर न रहेगी। तब भारतवर्ष के सभी आर्यवंशी राजा शस्त्र लेकर उठ खड़े होंगे। एक हो कर सब के शस्त्र उठा लेने पर मुसलमान कितने दिन ठहरेंगे?

हे०—गुरुदेव! आप केवल आशा का अवलम्ब करते हैं। मैं भी वही करता हूं। इस समय "मैं क्या करूं" आज्ञा दीजिये।

मा०—मैं भी यही सोचता हूं। अब इस नगर में तुम्हारा रहना ठीक नहीं है। क्योंकि मुसलमानों ने तुम्हें मार डालना निश्चय कर लिया है। मेरी आज्ञा है कि "तुम आज ही इस नगर को छोड़ दो।"

हे०—कहां जाऊं ?

मा०—मेरे साथ कामरूप चलो।

हेमचन्द्र सिर झुका कर सोच में पड़ कर धीरे २ बोले "मृणालिनी को कहां रख कर चलूंगा ?"

माधवाचार्य ने अचम्भे में पड़ कर कहा "यह क्या ? कल्ह की बात से तो मैं समझता था कि तुम ने मृणालिनी को अपने चित्त से दूर कर दिया।"

हेमचन्द्र ने पहले ही की भांति धीमी आवाज़ से कहा "मृणालिनी त्याग करने के योग्य नहीं है। वह मेरी ब्याही स्त्री है।"

माधवाचार्य आश्चर्य में पड़ गये, कुछ रुष्ट भी हुए, और घबड़ा कर बोले "मैं ये सब कुछ नहीं जानता।"

तब हेमचन्द्र ने उस के विवाह का सारा हाल खोल कर कहा। सुनकर माधवाचार्य कुछ देर तक चुप रहे। फिर बोले "जिस स्त्री की चाल ठीक नहीं है, वह शास्त्र के अनुसार त्याग करने के योग्य है।" मृणालिनी के चरित्र के विषय में जो सन्देह था उसे मैं ने कल ही कह दिया।

उस समय हेमचन्द्र ने व्योमकेश का सारा हाल खुलासा कर के सुना दिया। सुन कर माधवाचार्य ने बड़ा आनन्द प्रगट किया। और बोले "बेटा ! मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं ने तुम्हारी प्यारी और गुणवती पत्नी को तुम से अलग करके तुम को बहुत से क्लेश दिये हैं। इस समय आशीर्वाद देता हूं कि तुम दोनों चिरंजीवी हो कर बहुत दिनों तक इकट्ठे रह कर

श्रम करो। " यदि तुम इस समय स्त्री के साथ हो, तो मैं तुम को अपने साथ कामरूप चलने के लिये आग्रह नहीं करता। मैं आगे जाता हूं। जब समय देखूंगा तब तुम्हारे पास कामरूप के राजा अपना दूत भेजेंगे। अब तुम वहू को लेकर मथुरा जाकर अपने इच्छानुसार रहो।

इस प्रकार की बातचीत होने के बाद हेमचन्द्र माधवाचार्य से विदा हुए। माधवाचार्य आशीर्वाद देकर और आंखों में आंसू भर कर हेमचन्द्र को छाती से लगाकर विदा किया।

# त्रयोदश परिच्छेद।

## महम्मद अली के पाप का बदला।

—*:o:*—

जिस रात को राजधानी में मुसलमानों की सेना हमला कर के सब को पीड़ित कर रही थी उसी रात को पशुपति अकेले जेल में कैद थे। भोर के समय फौज का हमला खतम हो गया। तब महम्मद अली उन से मिलने आया। पशुपति ने कहा 'मुसलमान! मीठी बातें करने की अब ज़रूरत नहीं है। एक बार तुम्हारी मीठी बातों पर विश्वास कर के मैं इस हालत में पहुंच गया हूं। विधर्मी मुसलमानों का विश्वास कर के जो फल भोगना चाहिये वह मुझे मिल गया। इस समय मैं ने

मौत को अच्छी समझ कर दूसरी आशाओं को छोड़ दिया है अब तुम लोगों की कोई मीठी बात न सुनूंगा।'

महम्मद अली ने कहा "मैं अपने मालिक का हुक्म मानता हूं। और मालिक का हुक्म पूरा करने के लिये आया हूं। आप को मुसलमानी पहरावा पहरना होगा।"

पशुपति ने कहा "उस के लिये अभी धीरज धरो। मैं ने अब मौत ही को स्थिर कर लिया है। मैं प्राण त्याग करने के लिये तैयार हूं, पर मुसलमानी धर्म नहीं लूंगा।"

म०—इस समय आप को मुसलमानी धर्म लेने के लिये नहीं कहता। सिर्फ राज प्रतिनिधि (राजा के कायममुकाम) को प्रसन्न करने के लिये मुसलमानी पोशाक पहरने के लिये कहता हूं।

प०—मैं ब्राह्मण होकर किस लिये म्लेच्छों का कपड़ा पहरूंगा?

म०—अगर आप अपने मन से नहीं पहरेंगे, तो आप को जबरदस्ती पहराऊंगा। न मानियेगा तो आप की बेइज्जती हासिल होगी।

पशुपति ने जवाब नहीं दिया। महम्मद अली ने अपने हाथों से उन को मुसलमानी पहरावा पहरा दिया। फिर कहा "मेरे साथ आइये।"

प०—कहां चलूं?

म०—आप कैदी हैं। पूछने की ज़रूरत क्या है?

महम्मद अली उन को सिंहद्वार से ले चला। जो आदमी पशुपति की रखवाली के लिये तैनात था वह भी साथ २ चला।

दरवाजे पर पहरेदारों के पूछने पर महम्मद अली ने अपनी पहचान बताई। उस ने एक इशारा किया। पहरेदारों ने उसे जाने दिया। सिंहद्वार से निकल कर तीनों आदमी सदर सड़क पर कुछ दूर निकल गये। उस समय मुसलमानों की फौज शहर का लूटना खतम कर के आराम कर रही थी इस लिये सरकारी सड़क पर कोई गुलगपाड़ा न था। महम्मद अली ने कहा "धर्माधिकारी! आप ने बिना अपराध ही मेरा निरादर किया है। बख्तियार खिलजी का ऐसा मतलब मुझ को मालूम नहीं था। यदि मालूम होता, तो मैं कभी इस झगड़े का दूत बन कर आप के पास नहीं आता। जो हो, आप मेरी बात पर एतमाद कर के इस तकलीफ में पड़े हैं। मुझ से जहां तक हो सकता है, मैं इस का बदला आप को देता हूं। गंगा के किनारे नाव लगी है। आप जहां चाहें, चले जांय। मैं यहीं से बिदा होता हूं।

पशुपति अचम्भे में पड़ कर चुप हो गये। महम्मद अली फिर कहने लगा "आप इसी रात यह शहर छोड़ दीजिये। नहीं तो कल भोर को मुसलमानों से भेंट होते ही बड़ी आफत में पड़ जाइयेगा। खिलजी के हुक्म के बरखिलाफ कर रहा हूं। इस का गवाह यही पहरेदार है। इस लिये अपने बचाव के लिये इस को भी दूसरे मुल्क में भेज देता हूं। इस को भी अपनी नाव में लेते जाइये।"

यही कह कर महम्मद अली बिदा हुआ पशुपति कुछ देर तक अचम्भे में आकर ठहरने के बाद गङ्गा की ओर चले।

—*:o:*—

# चतुर्दश परिच्छेद।

—*:o:*—

## धातु मूर्त्ति का विसर्जन।

—*:o:*—

पशुपति महम्मद अली से विदा होकर सरकारी सड़क पार करके धीरे २ चले। मुसलमान की कैद से छूटने पर भी वेश के साथ चलने की इच्छा उन की न हुई। सरकारी सड़कों पर जो उन ने देखा उस से वे आप ही आप मनही मन मर गये। हरएक कदमों पर मरे हुए नगरनिवासियों की मरी देह पैरों से टकरा जाती थी। हरएक कदमों पर खून से बने हुए कीचड़ में उन के पैर भींगने लगे। रास्ते के दोनों ओर सब घर आदमियों से खाली पड़े हुए थे। बहुत से घर जल गये थे, कहीं २ गरम अङ्गारे अब तक भी जल रहे थे। किसी घर में दरवाजे टूटे थे, खिड़कियां टूटी थीं और छत टूट गये थे और उस पर मुर्दे पड़े थे। अब भी कोई अभागे मरने के दुःख से भयङ्कर कातर शब्द कर रहे थे। इन सभी बातों के मूल कारण वही थे। भयङ्कर लोभ के बश में पड़कर इन्हों ने इस राजधानी को श्मसान-भूमि बना

लिया है पशुपति ने मन ही मन सोचा कि मैं प्राणदण्ड पाने के योग्य हूं। महम्मद अली को कलंकित कर के कंदखाने से क्यों भाग आया? मुसलमान मुझे पकड़ कर मनमाना दण्ड दें। मैं लौट चलूं।" फिर मन ही मन उन ने इष्ट देवी को याद किया; पर किस मनोरथ से? इच्छा के लिये अब तो कोई बात नहीं है। उन ने आकाश की ओर देखा। आकाश की नक्षत्र चन्द्रग्रह समूहों से सुशोभित, हँसती हुई पवित्र शोभा उन की आंखों में सही नहीं गई। उन ने उस की तीखी ज्योति से पीड़ित के समान होकर आंखें बंद कर लीं। अचानक ही अस्वाभाविक भय ने आकर उन के हृदय को घेर लिया। अकारण भय से वे अपने पैर और आगे न बढ़ा सके, एकाएक निर्बल हो गये। विश्राम करने के लिये रास्ते के बीच ही बैठने लगे और देखा कि "मैं एक मुर्दे पर बैठ रहा हूं।" मुर्दे से निकला हुआ खून उन के कपड़ों और शरीरों में लग गया। उन के रोंगटे खड़े हो गये। वे उठ खड़े हुए। वहां फिर न ठहरे। वेग से चले। अचानक उन को एक बात याद आ गई—"क्या अपना घर?" क्या वह मुसलमानों के हाथ से बच गया है? और उस घर में जो फूलों से भरी हुई प्राणपुतली को छिपा रखा था वह क्या हुई? मनोरमा की कौन गति हुई? उन की प्राणप्यारी ने उन को पाप के रास्ते से बार बार हटाया था, जान पड़ता है कि वह भी उन के पापसागर की तरंग में डूब गई। नहीं जान पड़ता कि यवन सेना के प्रवाह में वह कुसुमकली कहां डूब गई।

पशुपति पागल के समान अपने मकान की ओर चले जब अपने घर के सामने पहुंचे तब जो सोचा था वही देखा। जलते हुए पर्वत के समान उन की ऊँची अटारी धधकती हुई जल रही थी। देखते ही अभागे पशुपति ने जान लिया कि 'मुसलमान मेरे घरवालों के साथ मनोरमा को भी मार कर मेरे घर में आग लगा कर चले गये हैं। मनोरमा जो भाग गई थी उस की बात वह कुछ न जान सके।"

घर के पास में कोई था भी नहीं कि वह यह समाचार उन से कहे। अपने विह्वल चित्त के सिद्धान्त ही को उन ने सत्य मान लिया। हलाहल का घड़ा भर गया। हृदय की आखिरी वीणा बज उठी। वे कुछ देर तक आंखें फाड़ फाड़ कर जलती हुई अटारी को देखने लगे। मरने की इच्छा रखनेवाले फतिंगे के समान घबड़ा के थोड़ी देर एक जगह बैठ गये। अंत में बड़े वेग से उसी आग की लहर में कूद पड़े। संग का पहरेदार अचंभे में पड़ गया।

पशुपति बड़े वेग से जलते हुए दरवाजे से घर में घुस गये। उन के पैर जल गये और सारे शरीर जल गये, पर वे न फिरे। अग्नि के गड्ढे को पार कर अपने शयनगृह में पहुंच गये, पर वहां किसी को न देखा। जलते हुए शरीर से कोठरी कोठरी घूमने लगे। उन के हृदय के भीतर जो कठिन आग जल रही थी उस से वे बाहर की आग की ताप के दुःख को न समझ सके।

क्षण क्षण में घर का नया २ हिस्सा आग से जलता जाता था। जलते हुए हिस्से की कठिन धधकती हुई ज्वाला आकाश में उठ

कर भयंकर गर्जन करती थी। क्षण २ में जलते हुए घर के हिस्से बिजली के समान कड़क २ कर ज़मीन पर गिर रहे थे। धूएं और धूल के साथ आग की लाखों चिनगारियों से आकाश आच्छादित होने लगा।

वनाग्नि से घिरे हुए जंगली हाथी के समान पशुपति आग में इधर उधर दास, दासी, अपने परिवार और मनोरमा को ढूंढने के लिये घूमने लगे। कहीं किसी का कोई चिन्ह भी न मिला। इस लिये हताश हो गये। तब देवी के मन्दिर पर उन की नज़र पड़ी, उन ने देखा कि अष्टभुजा देवी का मन्दिर आग से जल रहा है। पशुपति फतिंगे—फनगे—के समान उस में घुस गये। वहां देखा कि आग की लहरों के बीच में पड़ कर भी वह सोने की मूर्त्ति न जल कर विराजित हो रही है। पशुपति ने पागल के समान कहा "मा! जगदम्बा! अब तुम को जगदम्बा नहीं कहूंगा। अब तुम्हारी पूजा नहीं करूंगा। तुम्हें प्रणाम भी न करूंगा। लड़कपन ही से मैं ने तन, मन, वचन से तुम्हारी सेवा की थी। इसी चरण के ध्यान को इस जन्म का प्रधान कर्म समझा था। इस समय मा! एक दिन के पाप से सब खो दिया। तब केस लिये तुम्हारी पजा की थी? अथवा क्यों नहीं तुम ने मेरी पाप बुद्धि को दूर किया?"

मन्दिर जलानेवाली आग अधिक प्रबल होकर धधक उठी। तो भी पशपति उस मूर्त्ति को संबोधन कर के कहने लगे। "यह देखो! धातुमूर्त्ति हैं। तुम केवल धातु की मूर्त्ति ही हो, देवी नहीं हो। वह देखो! आग गरज रही है। जिस रास्ते मेरी प्राण

प्यारी गई है यह अग्नि उसी रास्ते तुम को भी ले जायगी परन्तु आग की यह कीर्ति न रहने दूंगा। मैं ने तुम्हारी स्थापना की थी, मैं ही तुम्हारा विसर्जन भी करूंगा। इष्ट देवी! चलो, तुम को गंगाजल में डुबा दूं।"

यह कहकर पशुपति उस मूर्त्ति को उठाने की इच्छा से दोनों हाथों से पकड़ लिया। उसी समय फिर आग धधक उठी। तब पर्वत फटने के समान बहुत बड़ा शब्द हुआ। जला हुआ मंदिर, आकाश में धूमा धूआं और राखों के सहित आग की चिनगारियों को उड़ा कर आप भी टुकड़े २ हो कर गिर पड़ा। उसी में मूर्त्ति के साथ ही पशुपति की भी, जीवन के साथ ही, समाधि हो गई।

—*:o:*—

## पंचदश परिच्छेद।

—*:o:*—

### अन्तिम काल।

—:o:—

यद्यपि पशुपति अष्टभुजा को अपने हाथों नित्य पूजा करते थे तो भी देवी की नित्य सेवा के लिये उन ने दुर्गादास नामक एक ब्राह्मण को नियुक्त किया था। नगर के लूटे जाने के दूसरे दिन दुर्गादास ने सुना कि "पशुपति का घर जलकर मटियामेट हो गया है।" तब उस ब्राह्मण ने अष्टभुजा की मूर्त्ति को उस राख की ढेरी से निकाल कर अपने घर में स्थापित करने का

विचार किया। जब मुसलमान शहर लूट कर खुश हो गये तब बख्तियार खिलजी ने शहर के लोगों को बेफायदा तकलीफ देना बंद कर दिया। इसलिये बंगाली लोग साहस करके सरकारी सड़क पर बाहर निकलने लगे। यह देखकर दुर्गादास दिन दोपहर बाद अष्टभुजा देवी को उस जलते हुए घर से निकालने के लिये पशुपति के घर की ओर चले। पशुपति के घर जाकर जहां देवी का मंदिर था वहां चले गये। उन ने वहां देखा कि "बहुत से ईंटों को हटाये बिना देवी की मूर्त्ति नहीं निकाली जा सकती।" यह विचार कर अपने पुत्र को बुला लाये। सब ईंटें आधी पिघल कर आपस में मिलगई थीं, और अब भी गर्म थीं। पितापुत्र दोनों ने एक बावली से जल ढोकर गर्म ईंटों को सींच कर ठंढा किया और बड़े कष्ट से उस में अष्ट-भुजा की मूर्त्ति ढूंढने लगे। ईंटों के हटादेने पर वहां से देवी की मूर्त्ति बाहर निकली। पर मूर्त्ति के पैरों के पास यह क्या है? डरते २ पिता और पुत्र दोनों ने देखा कि यह मनुष्य का मृतक शरीर है। तब दोनों ने मृतक को उठाया, तो देखा कि "यह पशुपति ही की मृतक देह है।"

आश्चर्य प्रगट करने के बाद दुर्गादास ने कहा "किसी प्रकार स्वामी की यह दशा क्यों न हुई हो, पर ब्राह्मण तथा प्रतिपालित जन का जो कार्य है वह हमलोगों को जरूर करना चाहिये। चलो, इस देह को गंगातीर पर ले चलकर हमलोग प्रभु का संस्कार करें।"

यह कह कर दोनों आदमी पशुपति की मृतक देह ढोकर गंगातीर पर लेगये। वहां पुत्र को मृतक की रक्षा के लिये छोड़ कर

दुर्गादास लकड़ी आदि दाह की उचित सामग्री लेने के लिये नगर में चले गये, और यथा शक्ति सुगन्धित काठ (चन्दन, धूप आदि सामग्रियां इकट्ठी कर के गंगातीर पर लौट आये।

उस समय दुर्गादास ने पुत्र की राय से शास्त्र के अनुसार दाह के पहले होनेवाले कर्मों को समाप्त कर के चन्दन आदि सामग्रियों से चिता सजा कर उस पर पशुपति का मृतक शरीर रख दिया। फिर आग देने की तैयारी करने लगे।

इसी समय अचानक ही मरघट में "यह कौन आ गई?" दोनों ब्राह्मणों ने आश्चर्य के साथ देखा कि "एक मैला कपड़ा पहरे, रूखे बाल फैलाये, राख और धूल में लिपटी हुई पगली इस मरघट में आ गई है। वह स्त्री ब्राह्मणों के पास खड़ी हुई। दुर्गादास ने डर कर पूछा "आप कौन हैं?"

स्त्री ने पूछा "आपलोग किस का दाह करते हैं?"

दुर्गादास ने कहा "मृतधर्माधिकारी पशुपति का।"

स्त्री ने पूछा "पशुपति कैसे मरे?"

दुर्गादास ने कहा "भोर को नगर में लोगों के मुंह से सुना कि "पशुपति मुसलमानों के कैदी हुए थे पर किसी प्रकार रात को भाग गये थे। आज मैं, उनका मकान जलकर राख हो गया है, यह सोच कर उस में से अष्टभुजा की मूर्त्ति को निकालने की इच्छा से गया था। वहां जा कर प्रभु के मृतक को पाया।

स्त्री ने कुछ जबाव नहीं दिया। गंगातीर में बालू पर बैठ गई। बहुत देर तक चुप रह कर उस ने पूछा "आपलोग कौन हैं?" दुर्गादास ने कहा—"हमलोग ब्राह्मण हैं, और धर्माधिकारी के अन्न से पाले पोसे गये हैं। आप कौन हैं?"

युवती ने कहा "मैं उन की स्त्री हूं ।"

दुर्गादास ने कहा "उन की स्त्री का बहुत दिनों से पता नहीं है । आप उन की स्त्री कैसे हुईं ?"

युवती ने कहा "मैं वही, केशव की कन्या हूं जिस का बहुत दिनों से पता नहीं है । पति के मर जाने के बाद सती होने के डर से पिता ने मुझ को इतने दिनों तक छिपा रखा था । आज मैं समय के पूरे हो जाने से विधाता की रेख को पूरी करने के लिये आई हूं ।"

सुन कर पिता पुत्र दोनों ही कांप गये । उन लोगों को चुप देख कर विधवा कहने लगी "इस समय स्त्री जाति का जो धर्म है वही करूंगी । आप लोग उपाय करें ।"

दुर्गादास ने युवती का विचार समझ लिया । पुत्र की ओर देख कर पूछा "क्या कहते हो ? तुम्हारी क्या राय है ?"

पुत्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया । तब दुर्गादास ने युवती से कहा 'मा ! तुम बालिका हो । यह कठिन कार्य करने के लिये क्यों प्रवृत्त हुई हो ?"

युवती ने भौंहें टेढ़ी कर के कहा "ब्राह्मण हो कर अधर्म करने की राय क्यों देते हो ?" इसी का उद्योग करो ।

तब ब्राह्मण सामग्री लेने के लिये फिर चला । जाने के समय विधवा ने दुर्गादास से कहा "तुम नगर में जाते हो ?" नगर के किनारे राजा के फुलवारी वाले मकान में हेमचन्द्र नामक एक परदेशी राजपुत्र रहते हैं । उन से कहना कि "मनोरमा

गंगातीर पर चितारोहण कर रही है आप आकर एक बा मनोरमा के साथ देखा देखी कर जायँ। अब इस जीवन में आप से मनोरमा की यही एक भिक्षा है।"

हेमचन्द्र ने जब ब्राह्मण के मुंह से सुना कि "मनोरमा पशुपति की स्त्री है और उन के मरने के बाद सती हो रही है।" तब वे कुछ भी न समझ सके। दुर्गादास के साथ ही गंगातीर पर आये। वहां आकर मनोरमा की अति मलिना उन्मादिनी मूर्त्ति तथा स्थिरता, गंभीरता और निन्दारहित सुन्दर मुखकान्ति, देखते ही उन की आंखों से आंसू आप ही आप बहने लगा। उन ने कहा "बहिन! मनोरमा! यह क्या?"

उस समय मनोरमा ने चांदनी से चमकते हुए सरोवर के समान स्थिर मूर्त्ति हो कर मीठे और गंभीर स्वर से कहा "भाई! जिस के लिये मेरा जीना था आज उस की अंतिम सीमा हो गई। आज मैं अपने स्वामी के साथ जाऊंगी।"

मनोरमा ने थोड़े में दूसरों से छिपाकर धीरे से अपनी पहली कहानी कहने के बाद कहा "मेरे स्वामी अथाह धन इकट्ठा कर रख गये हैं। इस समय उस धन की स्वामिनी मैं ही हूं। मैं वह सब धन तुम्हें देती हूं। उस को तुम ले लेना। नहीं तो पापी मुसलमान उस को लेकर उपभोग करेंगे। उस का थोड़ा सा हिस्सा खर्च कर के जनार्दन शर्मा को काशीवास करा देना। जनार्दन को बहुत धन मत देना, नहीं तो मुसलमान छीन लेंगे। मेरा दाह हो जाने के बाद तुम मेरे स्वामी के घर आकर धन ढूंढ़ना। मैं जो जगह बता देती हूं, उसी जगह ढूंढ़ते

ही वह धन मिल जायगा। मुझ को छोड़ कर वह जगह कोई नहीं जानता।" यह कह कर मनोरमा ने जहां धन था वह स्थान बता दिया।

तब मनोरमा हेमचन्द्र से बिदा हुई। हेमचन्द्र के द्वारा जनार्दन और उन की स्त्री को प्रणाम कर के उन दोनों के पास कितनी ही प्रकार की प्रेम प्रगट करने वाली बातें कहला भेजीं।

इस के बाद ब्राह्मणों ने मनोरमा को शास्त्र के अनुसार इस भयंकर व्रत के लिये व्रतिनी बनाया। और शास्त्रीय कर्मकाण्ड हो जाने के बाद ब्राह्मण के लाये हुए वस्त्रों को उस ने पहन लिया। नया वस्त्र पहन कर दिव्य फूलों की माला गले में डाल कर पशुपति की जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा कर के उस पर चढ़ गई और हंसती २ उस धधकती हुई आग की ढेरी में बैठ कर धूप से कुम्हलाई हुई फूलों की कली के समान आग की ज्वाला से उस ने अपना प्राण त्याग किया।

---

## परिशिष्ट।

हेमचन्द्र ने मनोरमा के दिये हुए धन को निकाल कर उस का कुछ हिस्सा जनार्दन को देकर उन को काशी भेज दिया। "ऐसा हुआ धन लेना ठीक है कि नहीं" यह बात उन ने माधवाचार्य से पूछी। माधवाचार्य ने कहा "इसी धन के बल से पशुपति का विनाश करनेवाले बख्तियार खिलजी को बदला देना उचित है, और इसी मतलब से उस का लेना भी

ठीक है दक्षिण में समुद्र के किनारे बहुत से स्थान जनहीन हो कर पड़े हुए हैं। मेरी राय है कि इसी धन से वहां तुम नया राज्य स्थापन करो और वहां मुसलमानों को ध्वंस करनेवाली सेना इकट्ठी करो। उस की सहायता से पशुपति के शत्रुओं का पतन पूरा करो।

यह विचार स्थिर कर के माधवाचार्य ने उसी रात को हेमचन्द्र को नवद्वीप से दक्षिण की ओर यात्रा कराई। पशुपति के धन की राशि उन ने गुप्तरूप से अपने साथ ले ली। मृणालिनी, गिरिजाया और दिग्विजय उन के साथ गये। माधवाचार्य भी उन का नया राज्य स्थापन कराने के लिये उन के साथ ही चले। राज्य का स्थापन बहुत सहज में हो गया। क्योंकि मुसलमानों के धर्मद्वेष से पीड़ित तथा उन के भय से डर कर बहुत से लोग उन के जीते हुए राज्यों को छोड़ कर हेमचन्द्र के स्थापित नये राज्य में रहने लगे।

माधवाचार्य की राय से भी बहुत से प्रधान २ धनी लोग वहां रहने लगे। इस प्रकार वह छोटा राज्य बहुत ही जल्दी सुन्दर बन गया। धीरे २ सेना भी इकट्ठी होने लगी। थोड़े ही दिनों में वह बड़ी सुन्दर राजधानी बन गई। किला भी बहुत सुन्दर बन गया। उस में मृणालिनी रानी बन कर उस को सुशोभित करने लगी।

गिरिजाया के साथ दिग्विजय का व्याह हो गया। गिरिजाया मृणालिनी की सेवा में नियुक्त की गई। दिग्विजय हेमचन्द्र के सब काम पहले ही की तरह निबाहने लगा लोग कहते हैं कि व्याह

दिन तक ऐसा कोई दिन नहीं हुआ कि जिस दिन गिर
ाया ने दिग्विजय के शरीर को झाड़ की दो एक चोट से
विद्ध न किया हो। "इस मार से दिग्विजय बड़ा दुःखी रहता
था" यह बात ऐसी नहीं है। वरन एक दिन किसी दैव
संयोगवश गिरिजाया झाड़ू मारना भूल गई। इस से दिग्विजय
ने उदास होकर गिरिजाया के पास जाकर पूछा "गिरि!
क्या तुम आज मुझ पर नाराज़ हो?" सच बात यह है कि
इन दोनों ने अपने सारे जीवन का समय बड़े सुख से
बिताया।

हेमचन्द्र का नया राज्य स्थापन कर के माधवाचार्य काम-
रूप चले गये। उसी समय हेमचन्द्र दक्षिण में मुसलमानों
का विरोध करने लगे। बख्तियार खिलजी हराकर कामरूप से
दूर भगा दिया गया और लौटने के समय अनादर और कष्ट
से उस का प्राण छूटा। पर इन सब घटनाओं का वर्णन
करना इस ग्रन्थ का प्रयोजन नहीं है।

रत्नमयी एक धनी मल्लाह के साथ व्याह कर के हेमचन्द्र
के नये राज्य में जा कर रहने लगी। वहां मृणालिनी की कृपा
से उस के स्वामी को विशेष सुख मिला। गिरिजाया और
रत्नमयी बहुत दिनों तक "सखी" "सखी" बनी रहीं।

मृणालिनी ने माधवाचार्य के द्वारा हृषीकेश से आग्रह करा
कर मृणालिनी को अपनी राजधानी में बुलवाया। मृणालिनी
राजमहल में मृणालिनी की सखी के समान रहने लगी।
स्वामी राजभवन में पुरोहित बनाये गये।

शान्तशील ने जब देखा कि अब हिन्दुओं को राज्य मिलने की सम्भावना नहीं है तब वह अपनी चतुरता और कार्य-कुशलता दिखला कर मुसलमानों का प्यारा बनने की चेष्टा करने लगा। हिन्दुओं के प्रति अत्याचार और विश्वासघातकता से बहुत ही शीघ्र अपना मनोरथ सिद्ध कर के अपनी अभिलाषा के अनुसार कार्य में नियुक्त हुआ।

# प्राइमरी कोष ।

वा

# लड़कों के लिये मास्टर

दाम ।।।)

पता—मैनेजर खड्गविलास प्रेस
बांकीपुर ।

मूल्य १॥

# कृष्णकान्त का दानपत्र

राय बहादुर बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रणीत.

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय द्वारा अनूदित.

राय साहिब रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित।

पटना—'खड्गविलास' प्रेस—बांकीपुर.

बाबू रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

विक्रमाब्द १९७५ ] खृष्टाब्द १९१८ [ हरिश्चन्द्राब्द ३५.

दूसरी बार २०००

मूल्य ।॥)

# कृष्णकान्त का दानपत्र ।

## प्रथम खण्ड ।

### प्रथम परिच्छेद ।

हरिद्रा ग्राम में एक घर बड़े ज़मींदार थे, ज़मींदार बाबू का नाम कृष्णकान्त राय था, कृष्णकान्त राय बड़े धनी थे, उन की ज़मींदारी का मुनाफ़ा दो लाख रुपये के लगभग था। यह ऐश्वर्य उन का और उन के भाई रामकान्त राय का उपार्जित था। दोनों भाई इकट्ठा हो कर धन कमाते थे। दोनों भाइयों में बड़ी प्रीति थी, एक के मन में इस प्रकार का सन्देह कभी नहीं होता कि वह दूसरे से छला जावेगा। कुल ज़मींदारी बड़े कृष्णकान्त के नाम ली गई थी, दोनों एक साथ खाते पीते थे। रामकान्त राय को एक बेटा जनमा था, नाम उस का गोविन्द लाल था। बेटे के जनम से ही रामकान्त राय के मनही मन विचार हुआ कि दोनों का कमाया ऐश्वर्य एक के नाम है, इस लिये पुत्र के मंगल के लिये उस की उचित लिखापढ़ी कर लेना कर्तव्य है। क्योंकि यद्यपि उन के मन में निश्चय था कि कृष्णकान्त राय का कभी धोखा देना उन के साथ आचरण करना संभव

नहीं है। तिस पर भी कृष्णकान्त के मरने पर उन के लड़के क्या करें, यह कुछ निश्चित न था। किन्तु लिखापढ़ी की बात सहजही वह न कह सके, आज कहेंगे, कल कहेंगे, यही करते गये। एक बार किसी प्रयोजन से इलाके पर जाकर अचानक वहीं पर उन की मृत्यु हुई।

यदि कृष्णकान्त ऐसी इच्छा करते कि भतीजे को छल कर कुल सम्पत्ति को अकले भोग करें, तो इस बात के पूरा करने में इस घड़ी और कोई विघ्न नहीं था। किन्तु कृष्णकान्त का ऐसा बुरा विचार नहीं था, वह गोविन्दलाल को अपने चलते में अपने बेटों के साथ समान भाव से पालने लगे और दानपत्र लिख कर अपने सांगों की कमाई सम्पत्ति में से जो न्याय पूर्वक आधा रामकान्त राय का प्राप्य था उस को गोविन्द लाल को दे जाने की इच्छा की।

कृष्णकान्त के दो लड़के और एक कन्या थी। बड़े बेटे का नाम हरलाल, छोटे का नाम विनोदलाल, कन्या का नाम शैलवती। कृष्णकान्त ने इस प्रकार दानपत्र लिखा, कि उन के मरने पीछे, गोविन्द लाल आठ आना, हरलाल और विनोदलाल तीन तीन आना, गृहिणी एक आना, और शैलवती एक आना सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

हरलाल बड़ा बेकहा, पिता को न माननेवाला और मुंहफट था। बंगालों का दानपत्र बहुधा छिपा नहीं रहता, दानपत्र की बात हरलाल ने जानी, हरलाल ने देख सुन क्रोध से आंखें लाल करके पिता से कहा

'यह क्या हुआ ? गोविन्दलाल ने आधा हिस्सा पाया और ...म ने तीन आना ? '

कृष्णकान्त ने कहा, "यह ठीक हुआ है, गोविन्द लाल के बाप ...ा प्राप्य जो आधा था वह उस को दिया गया है"

हर० । गोविन्दलाल के बाप का प्राप्य क्या ? हम लोगों के ...प की सम्पत्ति लेनेवाला वह कौन ? और मा बहिन को हम ...ग पालन करेंगे, उन लोगों का एक एक आना कैसा ? वरन उन ...ोगों को केवल खाने पहिरने की अधिकारिणी आप लिख जावें।

कृष्णकान्त कुछ रुष्ट होकर बोले:

"बाबू हरलाल ! ऐश्वर्य हमारा है तुम्हारा नहीं । मेरी जिस ...ो इच्छा होगी उस को देजाऊंगा "

हर० । आप की बुद्धि बिलकुल लोप हो गई है—आप को जो ...च्छा होगी वह न करने दूंगा ।

कृष्णकान्त ने क्रोध से आंखें लाल करके कहा,

" हरलाल ! तुम जो बालक होते, तो आज तुम को गुरु जी ...ो बुला कर छड़ी लगवाता "

हर० । हमने लड़कपन में गुरु जी की मूंछ जलादी थी, अब ...स दानपत्र को भी उसी तरह जलाऊंगा।

कृष्णकान्त राय फिर कुछ न बोले । अपने हाथ से दानपत्र को फाड़ डाला । और उस के बदले में एक नया दानप... लिखाया । उस में गोविन्दलाल ने आठ आना, बिनोदलाल ने पांच आना, गृहिणी ने एक आना, शैलवती ने एक आना, और हरलाल ने केवल एक आना पाया ।

हरलाल रंज होकर बाप का घर छोड़ कलकत्ते गया, और वहाँ से बाप को एक चोठी लिखी । उस का अभिप्राय यह था:—

"कलकत्ते में पंडितों ने विचार किया है कि विधवा विवाह शास्त्रसम्मत है । मेरा मन है कि मैं एक विधवा विवाह करू । आप जो दानपत्र बदल कर मुझ को आठ आना लिख देवें, और उस दानपत्र को शीघ्र रजिस्टरी करावें, तभी इस अभिलाषा को दूर करूंगा, नहीं तो शीघ्र एक विधवा के साथ विवाह करूंगा ।

हरलाल ने सोचा था कि कृष्णकान्त राय डर कर दानपत्र को बदलेंगे और हम को अधिक ऐश्वर्य्य लिख देंगे । किन्तु कृष्ण-कान्त का जो उत्तर पाया उस से वह भरोसा न रहा । कृष्णकान्त ने लिखा,

"तुम मेरे त्याज्यपुत्र हो । जिस से तुमारी इच्छा उस से विवाह कर सकते हो । मेरी जिस को इच्छा होगी उस को ऐश्वर्य्य दूंगा । तुमारे इस विवाह करने पर मैं दानपत्र अवश्य बदलूंगा, किन्तु इस से तुमारी बुराई छोड़ भलाई न होगी ।

इस के कुछ दिन बाद ही हरलाल ने सम्वाद भेजा कि उन्हीं ने विधवा विवाह किया है । कृष्णकान्त राय ने फिर दानपत्र फाड़ फेंका । नया दानपत्र लिखा ।

पड़ोस में ब्रह्मानन्द घोष नामक एक सीधे सादे भलेमानस आदमी रहते थे । कृष्णकान्त को बड़े भाई कहते थे और उन से अनुगृहीत होते और पलते थे ।

ब्रह्मानन्द का लिखना अच्छा था । यह सब लिखा पढ़ी उन्हीं द्वारा होती थी । कृष्णकान्त ने उसी दिन ब्रह्मानन्द को बुला कर कहा, खा पीकर यहीं आना नया दानपत्र लिखना होगा ।

विनोदलाल वहां मौजूद थे। उन्होंने कहा, "फिर दानपत्र क्यों बदला जावेगा ?"

कृष्णकान्त ने कहा, "इस बार तुम्हारे जेठे के भाग में शून्य रहेगा'।

विनोद०। यह अच्छा नहीं होता। अपराधी वही है। किन्तु उन को एक बेटा है, वह बच्चा, निरपराधी है। उस का उपाय क्या होगा ?

कृष्ण०। उस को एक पाई लिख दूंगा।

विनोद०। एक पाई बखरे से क्या होगा ?

कृष्ण०। मेरी आमदनी दो लाख रुपये की है। उस का एक पाई बखरा तीन हज़ार रुपये से ऊपर होता है। उस से एक गृहस्थ आदमी का खाना पहिनना अनायास चल सकता है। इस से अधिक न दूंगा।

विनोदलाल ने बहुत समझाया, किन्तु कृष्णकान्त ने किसी प्रकार अपने मत को नहीं बदला।

---

# द्वितीय परिच्छेद।

---

ब्रह्मानन्द नहा खा कर सोने के उद्योग में थे, इसी समय अचरज के साथ देखा, कि हरलाल राय ! हरलाल आकर उन के सिरहाने बैठे !

ब्रह्मा०। यह क्या, बड़े बाबू ? कब घर आये ?

हर०। घर अब भी नहीं गये।

ब्रह्मा०। एक बार ही यहीं? कलकत्ता से कब आये हो?

हर०। कलकत्ता से दो दिन हुआ आया हूं। यह दो दिन किसी जगह छिपा था। अब क्या फिर नया दानपत्र होगा?

ब्रह्मा०। ऐसा ही तो सुनता हूं।

हर०। हम को इस बार कुछ न मिलेगा।

ब्रह्मा०। मालिक इस समय रंज होकर ऐसा ही कहते हैं, किन्तु यह बात न रहेगी।

हर०। आज तीसरे पहर लिखापढ़ी होगी, तुम लिखोगे?

ब्रह्मा०। क्या करेंगे भाई! मालिक के कहने पर ना तो नहीं कह सकते।

हर०। अच्छा इस में तुम्हारा क्या दोष है। इस घड़ी कुछ कमाई करोगे?

ब्रह्मा०। लात मूका? तो भाई मारते क्यों नहीं?

हर०। यह नहीं, हज़ार रुपया।

ब्रह्मा०। क्या विधवा विवाह करना होगा?

हर०। हां!

ब्रह्मा०। वयस बीत गई।

हर०। तो और एक दूसरा काम बतलाता हूं। अभी आरम्भ करो। पहिले कुछ लेलो।

यह कह कर हरलाल ने ब्रह्मानन्द के हाथ में पांच सौ रुपये का नोट दिया।

ब्रह्मानन्द ने नोट पाकर उलट पलट कर देखा, कहा, "इस को लेकर मैं क्या करूंगा?"

हर० । पूँजी करना ! इस रुपया मती ग्वालिनी को देना ।

ब्रह्मा० । ग्वाला, वाला, से मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु हम को करना क्या होगा ?

हर० । दो कलम बनाओ, ऐसा जिस में दोनों ठीक एक तरह हों ।

ब्रह्मा० । अच्छा भाई, जो कहो उसी को सुनें ।

यह कह कर घोस बिचारे ने दो नया कलम लेकर ठीक एक ही तरह का बनाया । और लिख कर देखा कि दोनों का ही लिखना देखने में एक प्रकार का होता है ।

तब हरलाल ने कहा, इस में से एक कलम सन्दूक में बंद कर रखो, जब दानपत्र लिखने जाना, इस कलम को ले जा कर इस से दानपत्र लिखना, दूसरे कलम से इस घड़ी कुछ लिखा पढ़ी करनी होगी । तुमारे पास अच्छी रोशनाई है ?

ब्रह्मानन्द ने दावात बाहर करके लिख कर दिखलाया । हर-लाल कहने लगा ।

" ठीक है, इसी रोशनाई को दानपत्र लिखने के लिये ले जाना । "

ब्रह्मा० । तुम लोगों के घर पर क्या दावात कलम नहीं है जो मैं साथ लेता जाऊंगा ?

हर० । हमारा कुछ मतलब है, नहीं तो हम ने तुम को इतना रुपया क्यों दिया ?

ब्रह्मा० । मैं भी इसी को सोचता रहा, तुम ने अच्छा कहा भाई ।

हर० तुमारे दावात कलम ले जाने पर कोई सोचे तो सोच भी सकता है कि आज यह क्यों ? तुम सरकारी रोशनाई और कलम को बुरा कहना, ऐसा होने ही पर सब ठीक होगा।

ब्रह्मा०। तो खाली सरकरी रोशनाई और कलम ही को क्यों ? सरकार को भी बुरा कह सकता हूं।

हर०। इसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। इस घड़ी असल काम को आरंभ करो।

तब हरलाल ने दो जेनरल लेटर काग़ज़ ब्रह्मानन्द के हाथ में दिया। ब्रह्मानन्द ने कहा।

" यह तो सरकारी काग़ज़ है "

" सरकारी नहीं है, किन्तु वकील के घर की लिखापढ़ी इसी काग़ज़ पर होती है। जानता हूं कि मालिक भी इसी काग़ज़ पर दानपत्र लिखाया करते हैं। इसी लिये इस काग़ज़ को संग्रह किया है। जो हम बोलें उस को इस रोशनाई और कलम से लिखो। "

ब्रह्मानन्द लिखने लगा। हरलाल ने एक दानपत्र लिखा दिया। उस का मतलब यह था। कृष्णकान्त राय दानपत्र लिखते हैं, उन के नाम जितनी सम्पत्ति है उस का बखरा कृष्णकान्त के मरने पर इस प्रकार लगेगा। जैसे, बिनोदलाल तीन आना, गोविन्दलाल एक पाई, गृहिणी एक पाई, शैलवती एक पाई, हरलाल का लड़का एक पाई, हरलाल जेठ बेटा होने कारण शेष बारहो आना।

लिख जाने पर ब्रह्मानन्द ने कहा, " अब दानपत्र तो लिखा गया, हस्ताक्षर कौन करे ? "

"मैं" यह कह कर हरलाल ने इस दानपत्र पर कृष्णकान्त राय और चार गवाहों का हस्ताक्षर कर दिया।"

ब्रह्मानन्द ने कहा, "अच्छा, यह तो जाल हुआ।"

हर०। यही सच्चा दानपत्र हुआ, तीसरे पहर को जो दानपत्र लिखोगे वही जाली होगा।

ब्रह्मा०। कैसे ?

हर०। तुम जब दानपत्र लिखने जाओगे, तब इस दानपत्र को अपने कमीज के पाकेट में छिपा कर लेते जाना। वहां जा कर इसी रोशनाई और कलम से उन की इच्छा के अनुसार दानपत्र लिखना। कागज़, कलम, रोशनाई लेखक, एक ही; इस लिये दोनों दानपत्र देखने में एक प्रकार का होगा। पीछे दानपत्र पढ़ सुन जाने और हस्ताक्षर होने पीछे तुम अपना हस्ताक्षर करने के लिये लेना। सब की ओर पीठ कर के हस्ताक्षर करना; इसी अवकाश में दानपत्र को बदल लेना। और इस को मालिक को देकर मालिक का दानपत्र हम को ला देना।

ब्रह्मानन्द घोष सोचने लगा। बोला, "कहने से क्या होता है—बुद्धि का खेल अच्छा खेला है।"

हर०। सोचते क्या हो ?

ब्रह्मा०। इच्छा होती है, पर डर लगता है। अपना रुपया फेर लो। किन्तु जाल के बीच में मैं न रहूंगा।

"रुपया दो" कहकर हरलाल ने हाथ फैलाया। ब्रह्मानन्द घोष ने नोट फेर दिया। नोट लेकर हरलाल उठ कर चला जाता था। ब्रह्मानन्द ने तब फिर उस को पुकार कर कहा,

"क्या भैया चले गये ?"

"हां" कह कर हरलाल फिरा।

ब्रह्मा०। तुम ने इस घड़ी पांच सौ रुपया दिया। और क्या दोगे ?

हर०। तुम्हारे उस दानपत्र के ला देने पर और पांच सौ रुपया दूँगा।

ब्रह्मा०। बहुत सा रुपया-लोभ नहीं छोड़ा जाता।

हर०। तो तुम राजी हुये ?

ब्रह्मा०। राजी न हूँगा तो क्या करूंगा। किन्तु बदलूंगा कैसे ? देख लेंगे कि नहीं।

हर०। कैसे देखलेंगे ? हम तुम्हारे सामने दानपत्र बदल लेते हैं, तुम देखो देख पाते हो कि नहीं ?

हरलाल में दूसरी विद्या हो या न हो। हस्तकौशल विद्या में कुछ शिक्षा पाये हुये थे। तब दानपत्र को पाकेट में रखा, और एक काग़ज़ हाथ में लेकर उस पर लिखने का ठाट किया। इसी बीच हाथ का काग़ज़ पाकेट में और पाकेट का काग़ज़ हाथ में किस प्रकार आया, ब्रह्मानन्द यह कुछ न देख सके। ब्रह्मानन्द हरलाल के इस हस्तकौशल की प्रशंसा करने लगे। हरलाल ने कहा "यह कौशल तुम को सिखला दूँगा"। यह कह कर हरलाल उसी अभ्यस्त कौशल को ब्रह्मानन्द को अभ्यास कराने लगे।

दो तीन घड़ी में ब्रह्मानन्द को वह कौशल अभ्यस्त हुआ।

तब हरलाल ने कहा ' मैं अब चला। संध्या के बाद बाकी रुपया लेकर आऊँगा "। यह कह कर वह बिदा हुआ।

हरलाल के चले जाने पर ब्रह्मानन्द को बड़ा डर मालुम हुआ। उन्हों ने देखा कि वह जिस काम के करने के लिये स्वीकृत हुये हैं, वह राजद्वार में बड़े भारी दंड का अपराध है—क्या जाने भविष्यत में पीछे उन को जनम भर के लिये बंदी होना पड़े। और बदलने के समय यदि कोई पकड़ लेवे ? तो नह यह काम क्यों करते हैं" ? न करने से हाथ में आया हज़ार रुपया छोड़ना पड़ता है। यह भी नहीं हो सकता। प्राण रहते नहीं हो सकता।

हाय ! फलाहार ! कितने दरिद्र ब्राह्मण को तुम ने बड़ी बड़ी पीड़ा दी है ! इधर शूलवाले ज्वर और तिहाल से पेट भरा हुआ है, इस पर फलाहार आगे रखा है ! तिस पर कांसे के बरतन या केले के पत्ते पर सुशोभित, लुचुई, मालपुआ, लडडू, पेड़ा, मुगदर, इत्यादि की अमलधवल शोभा देख कर दरिद्र ब्राह्मण क्या करेगा ? छोड़ देगा या भोजन करेगा ? मैं शपथ करके कहता हूँ कि ब्राह्मण देवता यदि हज़ार बरस तक उस सजे हुये बरतन के निकट बैठ कर सोच विचार करें, तो भी वह इस कूट प्रश्न की मीमांसा न कर सकेंगे। और मीमांसा न कर सकने के कारण वेमन* के साथ दूसरे के पदार्थों को पेट में डाल लेंगे।

---

* मन भी मांता में है। अ० सिं०

ब्रह्मानन्द घोष महाशय का ठीक वही हुआ। हरलाल के इस रुपये को हज़म करना कठिन कारागार का भय है, किन्तु छोड़ा भी नहीं जाता, लोभ बड़ा है, किन्तु बदहज़मी का डर भी बड़ा है! ब्रह्मानन्द विचार न कर सका। विचार न कर सकने के कारण दरिद्र ब्राह्मण की तरह पेट में डाल लेने ही की ओर मन रखा॥

---

## तृतीय परिच्छेद।

—:::*:::—

सन्ध्या के बाद ब्रह्मानन्द दानपत्र लिख कर फिर आये। देखा कि हरलाल आकर बैठे हैं। हरलाल ने पूछा,

"क्या हुआ?"

ब्रह्मानन्द कुछ कविताप्रिय थे। उन्हों ने दुख के साथ हंस कर कहा।

दोहा।

मैं चाहत हौं चंद को, आलि धरो कर तोहि।
उलटो कांट बबूल को, लग्यो आंगुरी मोहि॥

हर। क्या नहीं कर सके?

ब्रह्मानन्द। भाई न जाने मन में कैसी बाधा मालूम होने लगी।

हर। नहीं हो सका?

ब्रह्मा०। नहीं भाई, यह भाई अपना जाल का दानपत्र लो, यह अपना रुपया लो। यह कहकर ब्रह्मानन्द ने जाली दानपत्र और सन्दूक में से पांच सौ रुपये का नोट बाहर करके हरलाल को दिया। क्रोध और विरक्ति से हरलाल को आंखें लाल हो गईं और होंठ कांपने लगा। बोले,

"मूर्ख, अकर्म्मी! स्त्री लोगों का काम भी तुम से न हुआ? मैं जाता हूं। किन्तु देखना यदि तुम से इस बात की दूसा सब फैलेगी तो तुम जीते न बचोगे"

ब्रह्मानन्द ने कहा, "तुम इस की चिन्ता न करो: मुझ से यह बात न खुलने पावेगी।"

वहां से उठकर हरलाल ब्रह्मानन्द के रसोई घर में गये। हरलाल घर के लड़के थे, सब ठौर आ जा सकते थे। रसोई के घर में ब्रह्मानन्द की भतीजी रोहिणी रींध रही थी।

इस रोहिणी से हमारा कुछ अधिक प्रयोजन है। इस लिये उस का रूप गुण कुछ कहना होगा, किन्तु आज कल रूप वर्णन करने का बाज़ार मंदा है, और गुण वर्णन इस समय में अपना छोड़ किसी दूसरे का नहीं करते। पर यह कहते बनता है कि रोहिणी के यौवन की मात्रा पूरी हुई थी-रूप उछला पड़ता था-सरद ऋतु का चन्द्रमा सोलह कला से पूर्ण था। वह छोटेपन में विधवा हुई थी, पर बिधवापन के अनुपयोगी बहुत से दोष उस में थे। दोष, वह काले किनारे की धोती पहिनती, हाथ में चूड़ी पहिनती, सूझ पड़ता है कि पान भी खाती थी इधर रसोई करने में यह दूसरी

द्रौपदी थी। कढ़ी, बरी, फुलौरी, दाल, पूरी, कचौरी, इत्यादि में सिद्धहस्त। चौकपूरने, खैर का गहना *, फूल का खेलौना बनाने, और सूई का काम करने में तुलना रहित, सिरगूंथने, कन्या सजाने में, पड़ोस की एक मात्र अवलम्बन थी। उस का और कोई सहायी नहीं था, इस लिये वह ब्रह्मानन्द के घर रहता थी॥

रूपवती रोहिणी दाल की बटुली में ठन् ठन् कर के कलछी चला रही थी, एक बिलार पंजा फैला कर दूर बैठा था, पशु जाति स्त्री लोगों की तिरछी चितवन से कम्पित होते हैं कि नहीं, यह देखने के लिये, रोहिणी उसके ऊपर बीच बीच में विषसे भरी मधुर तिरछी चितवन डालती थी। बिलार उस मधुर तिरछी चितवन को भूँजी मछली खाने का न्योता समझ कर धीरे धीरे आगे बढ़ता था, इसी बीच हरलाल बाबू जूता मच् मचाते घर के भीतर घुसे। बिलार डर कर भूंजी मछली का लोभ छोड़ के भाग चला। रोहिणी दाल की कलछी फेंक, हाथ धो, कपड़े से सिर ढांक, उठ कर खड़ी हुई। नख से नख कुरेदते हुये पूछा;

"बड़े चाचा कब आये"

हरलाल ने कहा, "कलह आया हूं। तुम से कुछ कहना है।"

रोहिणी सिहर उठी, बोली, "आज यहां खाओगे? क्या मिहीन चावल चढ़ाना होगा?"

---

* बंगाल में खैर से एक प्रकार का गहना बनता है वह पहना नहीं जाता ब्याह के समय थाल में दिया जाता है। अ० सिं०।

हर० । चढ़ाओ, चढ़ाओ । किन्तु यह बात नहीं है, तुम को क्या एक दिन की बात याद है ?

रोहिणी चुप रह कर धरती की ओर देखने लगी । हरलाल बोला,

" उस दिन, जिस दिन तू गंगा नहा कर आती समय यात्री लोगों के साथ से छूट कर पीछे पड़ गई थी ? याद आता है ?

रोहिणी । ( बांयें हाथ की चार अंगुली दाहिने हाथ से पकड़ कर सिर नीचा कर के ) याद आता है ।

हर० । जिस दिन तू रास्ता भूल कर उजाड़ में पड़ी थी, याद आता है ?

रोहि० । आता है ।

हर० । जिस दिन उस उजाड़ में तुम को रात हुई, तुम अकेली थी; कितने बदमाशों ने तुमारा संग पकड़ा, याद आता है ?

रोहि० । हां ।

हर० । उस दिन किस ने तुमारी रक्षा की ?

रोहि० । तुम ने । तुम घोड़ा पर उस उजाड़ से होकर कहां जाते थे ?

हर० । साले के घर ।

रोहि० । तुम ने देख कर हमारी रक्षा की, हम को पालकी कहार करके घर भेज दिया । याद क्यों नहीं आता है । उस ऋण का परिशोध मैं कभी नहीं कर सकूंगी ।

हर० । आज इस ऋण का परिशोध कर सकती हो—इस पर जनम भर के लिये हम को मोल ले ले सकती हो, करोगी ?

रोहि० । क्या ? कहो, मैं प्राण देकर आप का उपकार करूंगी।

हर० । करो या न करो। पर इस बात को किसी के सामने प्रकाश मत करना ।

रोहि० । प्राण रहते ऐसा न होगा ।

हर० । शपथ करो ।

रोहिणी ने शपथ किया ।

तब हरलाल ने कृष्णकान्त के असल दानपत्र और जाली दानपत्र की बात समझा कर कहा। अंत में बोला " उसी असल दानपत्र को चोरी कर के जाली दानपत्र को उसी के बदले रख आना होगा। हमारे घर में तुम आती जाती हो। तुम बुद्धिमती हो, तुम बे अटक ऐसा कर सकती हो । हमारे लिये यह करोगी ? "

रोहिणी कांप उठी । बोली "चोरी ! जो मुझ को काटडालो तौभी मैं न कर सकूंगी । "

हर० । स्त्री लोग ऐसी ही असार होती हैं—बातों की राशि मात्र । यह समझता हूं कि इस जनम में तुम हमारा ऋण परिशोध न कर सकोगी ।

रोहि० । और जो कहो सब कर सकूंगी । मरने को कहो मरूंगी । किन्तु विश्वासघात का यह काम न कर सकूंगी ।

हरलाल किसी तरह रोहिणी को सम्मत न कर सकने के
ण वही हज़ार रुपये का नोट रोहिणी के हाथ में देने लगा।
र बोला, "यह हज़ार रुपये का नोट पहले भेंट लो। यह काम
' को करना होगा।"

रोहिणी ने नोट नहीं लिया। बोली, "रुपया मैं नहीं चाहती।
लोक का कुल धन देने पर भी ऐसा न कर सकूंगी। करना होता
आप के कहने ही से करती।"

हरलाल ने लम्बी सांस ली। कहा, "सोचा था कि रोहिणी
हमारी भलाई चाहती हो। पराया कब अपना होता है?
ते जो आज मेरी स्त्री रहती मैं तुम्हारी खुशामद न करता। वही
रा यह काम करती।"

इस बार रोहिणी कुछ हंसी। हरलाल ने पूछा, "हंसी
है?"

रोहि०। आप की स्त्री का नाम सुनने से वह विधवा विवाह
बात याद पड़ी। क्या आप विधवा विवाह करेंगे?

हर०। इच्छा तो है—किन्तु मन के अनुसार ऐसी विधवा
ं पावें।

रोहि०। विधवा हो या सोहागिन हो—विधवा हो या कुमारी
हो—विवाह करके संसारी होने ही से अच्छा होता है। हम
गोंव सज्जनों को ऐसा होने से आनन्द होता है।

हर०। देखो रोहिणी! विधवा विवाह शास्त्र सम्मत है।

रोहि०। सो तो अब लोग कहने लगे हैं।

हर०। देखो, तुम भी अपना विवाह कर सकती हो—क्यों, करोगी न?

रोहिणी ने सिर का कपड़ा कुछ नीचा करके मुंह फेर लिया। हरलाल कहनेलगा,

"देखो तुम लोगों के साथ हम लोगों का गाईनाता भर है। सम्बन्ध होने में कोई रोक नहीं है।"

इस बार रोहिणी सिर के कपड़े को बहुत लम्बा खींच कर और चूल्हा के निकट बैठकर दाल कलछी से चलाने लगी। देखकर दुःखित हो के हरलाल फिर चला।

"हरलाल के द्वार तक जाने पर, रोहिणी ने कहा, चाहिये तो कागज़ को रख जाइये, देखूं क्या कर सकती हूं।"

हरलाल ने प्रसन्न हो कर जाली दानपत्र और नोट रोहिणी के पास रक्खा। देख कर रोहिणी बोली, "नोट नहीं। खाली दानपत्र रखिये।"

हरलाल तब जाली दानपत्र रख कर नोट लेगया।

---

# चतुर्थ परिच्छेद।

—:•※•:—

उस दिन रात में आठ बजने के समय कृष्णकान्त राय अपने सोने के घर में पलंग पर बैठ कर तकिये पर पीठ रक्खे हुए पेचवान (सटक) से तम्बाकू पीते थे। और संसार की एकमात्र औषध-मादक पदार्थों में श्रेष्ठ अहिफेन अर्थात् अफीम के नशे

में प्यार के साथ पिनिक रहे थे पिनिकते पिनिकते सुरत बघगइ कि मानो दानपत्र को एक व एक बेंची हो गयी है मानो हरलाल ने तीन रुपया तेरह आना दो कौड़ी दो कन्त पर उन की कुल सम्पत्ति को मोल लेलिया है। फिर मानो किसी ने कह दिया कि नहीं नहीं यह दानपत्र नहीं है यह तमस्सुक है। उसी समय देखा कि मानो ब्रह्मा के बेटे विष्णु ने आकर बैल पर चढ़े महादेव से एक गोली अफीम का उधार ली और यह दस्तावेज़ लिख कर इस विश्व ब्रह्माण्ड को बन्धक रख दिया। महादेव गांजे की झोंक में 'फ़ोर क्लोज़'* करना भूल गये हैं। इसी समय रोहिणी उस घर में धीरे धीरे प्रवेश करके बोली- 'दादा साहब क्या सो गये हो ?"

कृष्णकान्त राय ने पिनिकते पिनिकते कहा—"कौन नन्दी ? ठाकुर से इसी समय फोरक्लोज़ करने के लिये कहो।"

रोहिणी ने समझा कि कृष्णकान्त राय को अफीम का नशा हुआ है। हँस कर बोली, 'दादा साहब, नन्दी कौन ?"

कृष्णकान्त बिना गरदन उठाये ही बोले, "हूँ ठीक कहा। वृन्दावन में ग्वालों के घर माखन खाया है—आज भी उस का एक कौड़ी नहीं दिया।"

रोहिणी खिलखिला कर हंस पड़ी। तब कृष्णकान्त राय चौंक उठे, सर उठा कर देख कर बोले, "कौन, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी ?"

---

* आईन का शब्द। जिस क्रिया से बंधक की हुई वस्तु मालिक को वापस नहीं मिलसकती अ० सं०

रोहिणी ने उत्तर दिया, "मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य।"

कृष्ण०। श्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी।

रोहिणी। दादा साहब! मैं क्या तुम्हारे पास ज्योतिष सीखने आई हूं।

कृष्ण०। और क्या! नहीं तो क्या सोच कर? अफीम तो नहीं चाहिये?

रोहिणी। जिस सामग्री को प्राण गये भी न दे सकोगे, क्या मैं उस के लिये आई हूं! मुझ को चाचा ने भेजा है, तभी आई हूं।

कृष्ण०। यही यही! तो अफीमही के लिये!

रोहि०। नहीं दादा साहब नहीं। आप की शपथ अफीम नहीं चाहिये। चाचा ने कहा कि जो दानपत्र आज लिखा पढ़ा गया है, उस पर तुम्हारा हस्ताक्षर नहीं हुआ।

कृष्ण०। यह क्या, हम को अच्छी तरह याद है कि हम ने हस्ताक्षर किया है।

रोहि०। ना, काका ने कहा है कि उनको याद आता है कि तुमने उस पर हस्ताक्षर नहीं किया है। अच्छा सन्देह रखने से क्या प्रयोजन? तुम उसको एक बार खोल कर देखते क्यों नहीं?

कृष्ण०। अच्छा—तो रोशनी लाओ देखें।

यह कह कर कृष्णकान्त उठे, तकिये के नीचे से एक कुंजी निकाली। रोहिणी ने पास के दीवे को हाथ में लिया। कृष्णकान्त ने पहले एक छोटा सा सन्दूक खोल कर एक विचित्र कुंजी ली,

पीछे एक बड़ा सन्दूक खोला, और खोज कर वह दानपत्र को बाहर निकाला। पीछे बक्स से चशमा बाहर करके नाक के ऊपर रखने का उद्योग करने लगे। पर चशमा लगाते ही चार बार अफीम की पिनक आई—इसी लिये इस में कुछ काल तक विलम्ब हुआ। पीछे चशमा ठहरने पर कृष्णकान्त ने दानपत्र पर आंख डाल कर देखा और हंस कर कहा—"रोहिणी, मैं क्या बुड्ढा हो कर विह्वल हुआ हूं? यह देखो हमारा हस्ताक्षर।"

रोहिणी बोली, "भला आप बुड्ढे क्यों होंगे? केवल हम लोगों को ज़बरदस्ती पोती भर कहते हैं। अच्छा अब मैं जाती हूं, चाचा से जाकर कहूंगी।"

रोहिणी। तब कृष्णकान्त के सोने के कमरे से बाहर हुई।

गम्भीर रात में कृष्णकान्त सो रहे थे, अचानक उन की नींद टूट गई। नींद टूटने पर देखा कि उनके सोने के घर में दीया नहीं जलता है। सदा रात भर दीया जलता, किन्तु उन्हों ने देखा कि उस रात को दीया बुझ गया है। नींद टूटने के समय ऐसा शब्द भी उन के कान में पड़ा, कि किसी ने कुंजी ताले में फिरायी। ऐसा भी बोध हुआ कि मानों घर में कोई घूमता है। वह उन के पलंग के सिरहाने तक आया—उन की तकिया पर हाथ रक्खा। कृष्णकान्त अफीम की नशा में बेसुध, न सोते न जागते, अच्छी तरह जी में कुछ ठीक न कर सके। घर में जो रोशनी नहीं थी—उस को भी भली प्रकार नहीं समझा, कभी अर्द्धनिद्रित कभी अधजगे—जागने पर भी आंखें नहीं खुलतीं। एक बार अचानक आंख खुलने पर, कुछ अन्धेरा अवश्य मालूम हुआ किन्तु कृष्ण

कान्त उस समय सोचते थे, कि उन्हों ने हरिघोष के मामले में जो जाली दस्तावेज़ दाखिल किया है, उस में वह जेलखाने गये हैं। जेलखाने में बड़ा अन्धेरा है। कुछ पीछे एक व एक मानो ताला खुलने की भनक कान में पड़ी—यह क्या! जेल का ताला खुला! अचानक कुछ चमक हुई। कृष्णकान्त ने पेचवान की ओर हाथ बढ़ाया, नहीं पाया—अभ्यास के अनुसार पुकारा, "हरि"।

कृष्णकान्त भीतर नहीं सोते थे, बाहर भी नहीं सोते, दोनों के बीच एक घर था। उसी घर में सोते। उसी जगह हरिनामक एक रसोईबरदार उनका चौकीदार बन कर सोता। और कोई नहीं। कृष्णकान्त ने उसी को पुकारा, "हरि!"

कृष्णकान्त केवल एक बार हरि को पुकार कर फिर अफीम के नशे से बेसुध हो कर पिनकने लगे। असल दानपत्र इसी अवसर में चोरी गया। और जाली दानपत्र उस के बदले रक्खा गया।

---

## पञ्चम परिच्छेद।

दूसरे दिन प्रातःकाल रोहिणी फिर रांधने बैठी, और फिर वहां हरलाल झांक रहा है। भाग्यवश ब्रह्मानन्द घर नहीं था; नहीं तो न जाने मन में क्या सोचता।

हरलाल धीरे धीरे रोहिणी के पास गया—रोहिणी पूरी तौर से नहीं ताकती थी। हरलाल बोला—"पूरी तौर से ताको—हांड़ी न फटेगी"

रोहिणी पूरी तौर से ताक कर हंसी। हरलाल बोला—"क्या कर आयी हो?"

रोहिणी ने चोराये हुए दानपत्र को ला कर हरलाल को देखने को दिया। हरलाल ने पढ़ कर देखा—असल दानपत्र ही है। तब उस दुष्ट के मुख की हंसी थम्हती नहीं थी। दानपत्र को हाथ में लेकर पूछा, "कैसे लाई हो?"

रोहिणी ने वह कथा आरम्भ की। सच्ची बात कुछ न कही। एक झूठी कथा कहने लगी–कहते कहते, उसने हरलाल के हाथ से दानपत्र लेकर दिखलाया कि किस प्रकार यह कागज़ एक कलम-दान के भीतर पड़ा था। दानपत्र चोराने की कथा पूरी होने पर रोहिणी एक ब एक दानपत्र को हाथ में लेकर उठ गई। जब वह फिर आई, तब उस के हाथ में दानपत्र को न देख कर हरलाल ने पूछा, "दानपत्र कहां रख आई हो?"

रोहि०। उठा कर रख आई हूं।

हर०। अब उठा कर रख छोड़ने से क्या होगा? मैं अब जाऊंगा।

रोहि०। अभी जाओगे? इतनी जल्दी क्यों?

हर०। मेरे ठहरने का अवसर नहीं है।

रोहि०। तो जाओ।

हर०। दानपत्र।

रोहि०। मेरे पास रहेगा।

हर० यह क्या? दानपत्र मुझ को न दोगी?

रोहि० । तुम्हारे पास रहा तो हमारे पास रहा तो, एक ही बात है ।

हर० । जो मुझ को दानपत्र न दोगी, तो, इस को चोरी क्यों किया ?

रोहि० । आप ही के लिये । आप ही के लिये वह रहा भी। जब आप विधवा विवाह करेंगे, आप की स्त्री को यह दानपत्र दूंगी । आप लेकर फाड़ फेकेंगे ।

हरलाल समझ गया । बोला, यह न होगा—रोहिणी ! रुपया जितना चाहो, दूंगा ।

रोहि० । लाख रुपया दोगे तब भी न दूंगी । जो देने कहा था, वही चाहती हूं ।

हर० । यह नहीं हो सकता । मैं जाल करता हूं, चोरी करता हूं, तो अपने हक़ के लिये, तुम ने चोरी किस के हक़ के लिये की है ?

रोहिणी का मुख सूख गया । उस ने सिर नीचा कर लिया। हरलाल कहने लगा—

"मैं, जो हो—कृष्णकान्त राय का बेटा हूं । जिस ने चोरी किया है उसको कभी अपनी स्त्री नहीं बना सकता ।"

रोहिणी ने सहसा खड़ी होकर सिर से कपड़े को ऊपर कर के हरलाल के मुख की ओर देखा; बोली "मैं चोर ! तुम साधु ! किस ने हम को चोरी करने को कहा था ? किस ने हम को बड़ा भारी लोभ दिखलाया ? सरला स्त्री देख कर किस ने छल किया ? जिस शठता से बढ़कर और शठता नहीं है, जिस झूठ से बढ़कर

और झूठ नहीं है, जो नीच बर्बर भी मुख पर नहीं ला सकता, तुम ने कृष्णकान्तराय के पुत्र होकर वही किया ? हाय ! हाय !! मैं तुमारे अयोग्य ? तुमारे से नीच शठ को ग्रहण करे, ऐसी हतभागी कोई नहीं है। तुम जो स्त्री होते, तो तुम को आज जिस से घर झाड़ा जाता है, वही दिखलाती। तुम पुरुष हो, मर्यादा सहित चले जाओ।"

हरलाल ने समझा, ठीक हुआ। मनही मन समझ कर चिढ़ा हुआ—जाने के समय कुछ थोड़ा हंस गया। रोहिणीने भी समझा कि ठीक हुआ—दोनों के लिये। वह भी जूरे को कस कर बांधने बैठी। क्रोध से जूरा खुल चला था। उसकी आंखों में पानी आता था।

---

# षष्ठ परिच्छेद ।

तुम बसन्त के कोकिल हो ! जितना जी में आवे पुकारो, इस में हमको तनिक भी आपत्ति नहीं है, किन्तु तुमारे साथ हमारा यह विशेष अनुरोध है, कि समय बूझ कर पुकारो। समय, असमय सकल समय पुकारा पुकारी ठीक नहीं है। देखो, मैं बहुत खोज कर के, लेखनी और मसी पात्र इत्यादि को सामने पाकर, और भी अधिक अनुसन्धान पीछे मन को अनुकूल देख कर, कृष्णकान्त के दानपत्र की कथा लेकर लिखने बैठता था। इसी समय तुम ने आकाश से पुकारा "कुहू ! कुहू !! कुहू !!! तुम सुकंठ हो, मैं हूं, किन्तु सुकंठ होने का कारण किसी के पीछे पड़ने का

तुमको अधिकार नहीं है। जो हो, हमारा पलितकेश, स्खलित कलम, इन सब स्थानों पर तुमारी पुकारा पुकारी से बहुत बिगाड़ नहीं हो सकता। किन्तु देखो जब नये बाबू रुपये की ज्वाला से व्यस्त होकर अमाखर्च लेकर सिर पोटापीटी करते हैं, तब तुम ने कदाचित आफिस के भग्न प्राचीर के निकट से पुकारा, "कुहू"—बाबू का फिर जमा खर्च न मिला। जब विरह सन्तप्ता सुन्दरी लगभग तमाम दिन बिताकर अर्थात् जो बजने के समय दो दाना भात का मुंह में देके बैठी है, केवल दूध का बरतन गोद में उठाया भर है, कि इसी में तुम ने पुकारा—"कुहू"—सुन्दरी का दूध का बरतन वहीं रहा, नहीं तो उस में विमना हो कर नमक मिला कर खाया। जो हो तुमारे कुहू रव में कुछ जादू है। नहीं तो जब तुम बकुल के वृक्ष पर बैठ कर पुकारते थे—और विधवा रोहिणी बगल में कलसी लेकर जल लेने जाती थी—तब—किन्तु आगे जल लेने आने का हाल लिखता हूं।

वह कथा यह है। ब्रह्मानन्द घोष गरीब आदमी थे, लौंडी, मजूरनी रखने का बूता नहीं था। यह सुविधा थी या कुविधा नहीं कहा जा सकता—सुविधा हो, कुविधा हो, पर जिस के घर टहलुनी नहीं उस के घर ठगी, मिथ्या अपवाद, लड़ाई झगड़ा, और मैला, यह चार वस्तु, नहीं। टहलुनी नाम की देवता इन चारों वस्तुओं की सृष्टिकर्ता है। विशेषतः जिसके बहुत सी टहलुनियां हैं उसके घर नित्य कुरुक्षेत्र का युद्ध—नित्य रावणवध। कोई टहलुनी भीमरूपिणी, सदाही मार्जनी रूपी गदा हाथ में लिये गृहरणक्षेत्र में विचरण करती है, कोई उसका सामना करनेवाली

राजा दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण के बराबर वीर लोगों को डांटती फिरती है। कोई कुम्भकर्ण रूपिणी, छः महीने तक टांग फैला कर सोती है, जब उठती है, सब पेट में डाल लेती है, कोई सुग्रीव-ग्रीवा हिला कर कुम्भकर्ण के वध का उद्योग करती है। इत्यादि।

ब्रह्मानन्द के लिये यह सब आफ़त बला नहीं थी; इसलिये जल लाना, बरतन मांजना, रोहिणी के माथे पड़ा था। तीसरे पहर को दूसरे कामों के हो जाने पर रोहिणी जल लेने जाती। जिस दिन की घटना हम ने लिखी है उसके दूसरे दिन ठीक समय पर रोहिणी कलसी लिये जल लेने जाती थी। बाबू लोगों की एक बड़ी पोखरी है—नाम वारुणी—पानी उसका बड़ा मीठा—रोहिणी वहीं जल लेने जाती—आज भी जाती थी। रोहिणी अकेले जल लेने आती—दल बांध कर इलकी स्त्रियों के साथ हलकी हंसी हंसते हंसते हलकी कलसी में हलका जल लेके जाने का अभ्यास रोहिणी को नहीं था। रोहिणी की कलसी भारी, चाल चलन भी भारी। किन्तु रोहिणी विधवा, पर विधवा की तरह का ढंग कोई नहीं। होंठ पर पानों की लाली, हाथों में कड़ा, किनारीदार धोती, कंधे पर सुन्दरता के साथ बनाई गई, काल सांपनी ऐसी, बल खाती हुई, मजे के साथ हिलती, मनमोहनेवाली, चोटी थी। पीतल की कलसी बग़ल में, चाल के सहारे से धीरे धीरे वह कलसी नाचती है, जिस तौर से तरंगों के साथ हंसी नाचती है—उसी तरह धीरे धीरे बदन हिलाकर वह कलसी नाचती है। दोनों पैर धीरे धीरे वृक्ष से पड़े हुए फूल की तरह, मृदु मृदु धरती पर पड़ते थे—वैसे ही वह रसवाली कलसी ताल ताल पर

नाचती थी। हिलती, डोलती, पालवाले जहाज़ की तरह, ठमकती चमकती, रोहिणी सुन्दरी, सरोवर पथ को उजाला करती, जल लेने आती थी—इसी समय बकुल की डाल पर बैठ कर बसन्त के कोकिल ने पुकारा—

"कुहू ! कुहू !! कुहू !!!" रोहिणी ने आंख उठा कर चारों ओर देखा। मैं शपथ करके कह सकता हूं, रोहिणी की उसके ऊपर डाली गई, तड़पती, चंचल, चितवन को डाल पर बैठ कर यदि वह कोकिल देख पाता, तो उसी घड़ी —वह क्षुद्र पंछी जाति—उसी घड़ी, उसी बाण से बिध कर, उलटते, पुलटते, पैर सिकोड़ कर, "भुप्प" कर के गिर जाता। किन्तु पंखी के भाग में यह नहीं था, कार्य कारण की अनन्त श्रेणी—परम्परा द्वारा यह ग्रंथिबद्ध नहीं हुआ—अथवा उसकी उतनी पूर्व जन्मार्जित सुकृति नहीं थी। मूर्ख पक्षी ने फिर पुकारा—" कुहू ! कुहू !! कुहू !!! "

" दूर हो कलमुंहे ! " कह कर रोहिणी चली गई। चली गई पर कोकिल को न भूली। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि कोकिल ने असमय पुकारा था। ग़रीब विधवा युवती अकेले जल लेने आती थी। इस पक्षी का पुकारना ठीक नहीं हुआ, क्योंकि कोकिल की पुकार सुनकर कितनी बिसरी बातें याद पड़ती हैं। न जाने क्या खो दिया है—मानो उसी के खो देने से जीवन-सर्वस्व असार हो गया है—मानो अब उस को फिर न पावेंगे। न जानें क्या नहीं, न जानें कौन नहीं, न जानें क्या नहीं हुआ, न जाने किस को न पावेंगे, न जानें कहां रत्न खो दिया है—न जानें कौन रोने को बुलाता है मानो यह जीवन वृथा

गया, सुख की आशा मानो पूरी नहीं हुई—मानो इस संसार का अनन्त सौन्दर्य कुछ भोग न किया जा सका।

फिर "कुहू! कुहू!! कुहू!!!" रोहिणी ने आंख उठा कर देखा-सुनील, निर्मल, अनन्त गगन-निःशब्द, और इसी कुहूरव के संग में उस का सुर बंधा। देखा नवस्फुटित—आम्रमुकुल—कांचन गौर, तरे तरे श्यामल पत्रों से विमिश्रित, शीतल, सुगंध परिपूर्ण केवल मधुमक्खिका वा भ्रमर के गुनगुन शब्दों से शब्दित, और उसी कुहूरव के साथ उस का भी सुर बंधा। देखा, सरोवर के किनारे गोविन्द लाल का पुष्पोद्यान, उस में फूल फूले हैं, कुंज कुंज, क्यारी क्यारी, गुच्छ गुच्छ, डाल डाल, पात पात, जहां तहां, फूल फूले हैं, कोई श्वेत, कोई लाल, कोई पीला, कोई नीला, कोई छोटे, कोई बड़े, कहीं मधुमाखी, कहीं भ्रमर, उसी कुहूरव के संग उन का भी सुर बंधा। पवन के साथ उन की गंध आती है, इस का पंचम में सुर बंधा। और उसी कुसुमित कुंज वन में छाया के नीचे गोविन्द लाल आप खड़े थे। उन की अति काली घुंघराली अलकें गोलाकार उन के चंपकराजि निर्मित कंधे पर पड़ी हुई—कुसुमित वृक्ष अधिक सुन्दर उन के बन उन्नत देह पर एक फूली हुई लता की शाखा आकर हिलती है—क्या सुगन्धित! इसका भी सुर उस कुहूरव के साथ पंचम में बंधा। कोकल ने फिर एक आमों के ऊपर से पुकारा "कू ऊ"। इस समय रोहिणी सरोवर की सीढ़ी पर उतर रही थी। रोहिणी सीढ़ी से उतर जल में कलसी डुबा कर रोने बैठी।

"क्यों रोने बैठी, इस को मैं नहीं जानता। मैं स्त्री के मन की

बात कैसे कह सकता हूँ । किन्तु मुझ को बड़ा सन्देह होता है कि इस दुष्ट कोकिल ने रोहिणी को रुलाया है ।

---

## सप्तम परिच्छेद ।

---

वारुणी पुष्करिणी को लेकर मैं बड़े झमेले में पड़ा । मैं उस का वर्णन नहीं कर सकता हूं । यह पोखरी बहुत बड़ी नील कांच के दर्पण की तरह घास के फ्रेम (चौकट) में मढ़ी हुई है । उस घास के फ्रेम के बाद दूसरा एक और वाटिका का फ्रेम था, पोखरी के चारों ओर बाबू लोगों की वाटिका थी—उद्यान के पेड़ों और उद्यान के प्राचीर की सीमा नहीं । वह फ्रेम खूब सजा हुआ, लाल, काला, हरा, गुलाबी, सफेद, पीला, अनेक रंग के फूलों से मीना किया गया, नाना फलों से नग बैठाला गया, बीच बीच में बैठक के सादे सुन्दर सुन्दर मकान एक एक कर के बड़े बड़े हीरे की तरह अस्तगामी सूर्य्य की किरनों में चमकते थे । फिर सिर के ऊपर आकाश—वह भी उसी वाटिका के फ्रेम में मढ़ा, वह भी एक नीला दर्पण । फिर वही नीला आकाश, और वही वाटिका का फ्रेम, और वही घास का फ्रेम, फूल, फल, पेड़, मकान, सब उसी नील जल के दर्पण में प्रतिबिम्बित होता था । बीच बीच में वह कोकिल पुकारता । यह सब एक प्रकार समझाया जा सकता है । किन्तु उस आकाश, और उस पोखरी, और उस कोकिल की पुकार के साथ, रोहिणी के मन का

था, यह मैं नहीं समझा सकता हूं। इसी से कहता हूं कि इस बारुणीपोखरी को लेकर मैं बड़े बखेड़े में पड़ा।

मैं भी बखेड़े में पड़ा, और गोविन्द लाल भी बखेड़े में पड़े। गोविन्दलाल भी उस फूली हुई लता के बीच से देखते थे, कि रोहिणी अकेली आकर घाट की सीढ़ी पर बैठ कर रोती है। गोविन्दलाल बाबू ने सोचा, परोस की किसी लड़की लड़के के साथ झगड़ा कर के आकर रोती है। हम लोग गोविन्दलाल के विचार को इतना नहीं मान सकते हैं। रोहिणी रोने लगी।

रोहिणी क्या सोचती थी, नहीं कहा जा सकता। पर बोध होता है, सोचती थी कि किस अपराध से यह बालापन ही में विधवा होना मेरे कपाल में लिखा गया? मैंने दूसरे से बढ़ कर ऐसा कौन बड़ा भारी अपराध किया है, कि मैंने इस पृथ्वी का कोई सुख भोग करने नहीं पाया? किस दोष से मुझ को ऐसा यौवन रहते भी केवल सूखी लकड़ी की तरह यह जीवन काटना पड़ा? जो लोग इस जीवन के सब सुखों से सुखी हैं—मान लो यह गोविन्द लाल बाबू की स्त्री है—वह लोग मुझ से बढ़ कर किस गुण में गुणवती हैं—किस पुण्यफल से उन लोगों के भाग में ऐसा सुख है—और हमारे कपाल में शून्य? दूर हो—दूसरे का सुख देख कर मैं कातर नहीं हूं—किन्तु हमारा सकल पथ बन्द क्यों है? अपना यह सुखरहित जीवन रख कर मैं क्या करूंगी?

सो, हम लोगों ने तो कहा है, कि रोहिणी सतीमानस नहीं है। देखो इन बातों में कितनी हिंसा है? रोहिणी में अनेक दोष

है-उस का रोना देख कर क्या रोने की इच्छा होती है? नहीं होती । किन्तु इतना विचार का काम नहीं है—दूसरे का रोना देख कर रोना ही अच्छा है । देवता का मेघ, कंटकक्षेत्र देख कर वृष्टि को नहीं रोकता ।

सो, तुम लोग रोहिणी के लिये एक बार हा ! करो । देखो अब भी रोहिणी, घाट पर बैठ कर और माथे पर हाथ रख कर रोती है—शून्य कलसी जल के ऊपर हवा में नाचती है ।

अन्त में सूर्य अस्त हुए; धीरे धीरे सरोवर के नील जल में काली छाया पड़ी, अन्त में अंधेरा हुआ । पखेरू सब उड़ उड़ कर वृक्ष पर बैठने लगे । चारपाये सब घर की ओर फिरे । तब चांद निकला—अंधियाली के ऊपर सुन्दर उंजियाली छिटकी । तब भी रोहिणी घाट पर बैठ कर रोती है—उस की कलसी तब भी जल में उतराती है । तब गोविन्दलाल उद्यान से घर की ओर चले—आने के समय देखा कि तब भी रोहिणी घाट पर बैठी हुई है ।

अब तक अबला अकेली बैठ कर रोती है यह देख कर, उन को कुछ दुख हुआ । तब उन्हों ने सोचा, कि यह स्त्री भली हो या बुरी, यह भी उस जगत्पिता की भेजी हुई संसार-पतंग है—मैं भी उसी जगत्पिता का भेजा हुआ संसार-पतंग हूं, इस लिये यह मेरी बहिन है । जो मैं इस का दुख दूर कर सकता हूं, तो क्यों न करूंगा ?

गोविन्दलाल धीरे धीरे सीढ़ियों से उतर रोहिणी के पास आकर उस के निकट चम्पक से बनाई गई मूर्त्ति की भांति खड़े

चंपे के रंगवाली चांद की किरनों में खड़े हुए। रोहिणी देख कर चौंक उठी।

गोविन्दलाल बोले,

"रोहिणी! तुम अब तक अकेली बैठ कर यहां क्यों रोती हो?"

रोहिणी उठ कर खड़ी हुई, किन्तु बोली नहीं।

गोविन्द लाल फिर बोले;

"तुम को किस बात का दुख है, क्या मुझ से न कहोगी? क्या जानें हम कोई उपकार कर सकें।"

जो रोहिणी हरलाल के सामने मुखरा की तरह बातचीत कर सकी थी—गोविन्दलाल के सामने वही रोहिणी एक बात भी न कह सकी। कुछ न बोली—बनाई हुई पुतली की भांति उसी सरोवर के सोपान की शोभा वर्द्धित करने लगी। गोविन्दलाल ने स्वच्छ सरोवर जल में उस भास्कर-कीर्ति-कल्प—मूर्त्ति की छाया देखी, पूर्णचन्द्र की छाया देखी और कुसुमित कांचनादि वृक्ष की छाया देखी। सब सुन्दर-केवल निर्दयता असुन्दर! सृष्टि करुणामयी—मनुष्य अकरुण। गोविन्द लाल ने प्रकृति का स्पष्टाक्षर पढ़ा। रोहिणी से फिर बोले,

"तुम को जो किसी बात का दुख हो, तो आज हो कल हो, हम को बतलाना। आप न कह सको तो हमारे घर की स्त्री लोगों के द्वारा बतलाना।"

रोहिणी इस बार बोली। कहने लगी, "एक दिन कहूंगी। आज नहीं एक दिन तुम को मेरी बातें सुननी होंगी"

गोविन्दलाल अच्छा कह कर, घर की ओर चले गये। रोहिणी ने जल में कूद कलसी को पकड़ उस मे पानी भरा—उस काल कलसी ने भक्—भक्—गल्—गल्—कर के बड़ा कोलाहल मचाया। मैं जानता हूं कि शून्य कलसी में जल भरने के समय कलसी, क्या मट्टी की कलसी क्या मनुष्य रूपी कलसी, इसी प्रकार कोलाहल किया करती है—बड़ा शब्द करती है। पीछे खाली कलसी के भरजाने पर रोहिणी घाट पर चढ़ी, और गीले कपड़े से देह को अच्छी तरह छिपा कर धीरे धीरे घर की ओर चली। उस काल, छलत् छलत् ठनाक्! झिनिक् ठिनिक् ठिन्! शब्द कर के कलसी से और कलसी के जल से और रोहिणी के हाथ के कड़े से बात चीत होने लगी। और रोहिणी के मन ने भी इसी बातचीत के साथ आकर योग दिया।

रोहिणी के मन ने कहा, दानपत्र चुरानेवाला काम! *

जल ने कहा—छलात्!

रोहिणी के मन ने कहा—काम अच्छा नहीं हुआ।

कड़े ने कहा—ठिन ठिना—ना! ना त ना।

रोहिणी का मन—अब उपाय?

कलसी—ठनक् ठनक् ठन्—उपाय मैं हूं। रस्सी के साथ।

---

* रोहिणी के मन ने प्रस्ताव किया कि—दानपात्र चोराने का काम कैसा हुआ? जल ने कहा छली हुआ। मन ने कहा यह बुरा काम हुआ। कड़े ने भी कहा यह ठीक नहीं हुआ। मन ने पूछा अब उपाय क्या है? कलसी ने कहा, रस्सी के साथ में उपाय हूं—अर्थात् रस्सी से कलसी को गले में बांध कर डूब जाओ।

# अष्टम परिच्छेद

रोहिणी सवेरे सवेरे रसोई के काम को पूरा कर के और ब्रह्मानन्द को भोजन करा कर, आप सूखी सोने के घर में जाकर और किवाड़ लगा कर सोई। नींद के लिये नहीं, चिन्ता करने के लिये।

तुम दार्शनिक और विज्ञान जाननेवालों के मतामत को कुछ काल के लिये छोड़ कर, मुझसे एक मोटी बात सुनो। सुमति नाम की देवकन्या और कुमति नाम की राक्षसी यह दो जन सदा मनुष्य के हृदयक्षेत्र में विचरण किया करती हैं। और सदा एक दूसरे के साथ युद्ध किया करती हैं। जैसे दो बाघिन एक मरी हुई गौ के लिये आपस में युद्ध करती हैं, जैसे दो शृगाली आदमी की मरी हुई देह के लिये विवाद करते हैं, ये दोनों उसी प्रकार जीते हुए आदमी को लेकर रार करती हैं। आज इस सूने सोने के घर में, रोहिणी को लेकर उन्हीं दोनों जन ने उसी प्रकार घोर विवाद उपस्थित किया।

सुमति कहती थी,—"ऐसे लोगों का भी सर्वनाश करना होता है?"

कुमति। दानपत्र तो हरलाल को नहीं दिया। सर्वनाश फिर कैसे किया?

सुमति। कृष्णकान्त का दानपत्र कृष्णकान्त को फेर दो।

कुमति। वाह! जब कृष्णकान्त मुझ से पूछेंगे कि "इस दानपत्र को तुम ने कहां पाया, और मेरे सन्दूक में एक जाली

दानपत्र कहां से आया" तब मैं क्या कहूंगी? क्या मजे की बात कही! क्या मुझको और काका, दोनों जन को थाने में आने को कहती हो?

सुमति। तो सब बात क्यों गोबिन्दलाल से खोल कर नहीं कहती? और क्यों रोकर उनके पैर पर नहीं गिरती? वह दयालु हैं अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे।

कुमति। ठीक कही, किन्तु गोबिन्दलाल को अवश्य ये सब बातें कृष्णकान्त को जनानी होंगी, नहीं तो दानपत्र बदलने की कसर न मिटेगी। कृष्णकान्त जो थाने में पकड़ा दें, तो गोबिन्दलाल किस प्रकार बचावेंगे? वरन और एक परामर्श है। इस घड़ी चुप रहो, जब कृष्णकान्त मर जायं, तब तुम्हारे परामर्श के अनुसार गोबिन्दलाल के पास जाकर उनके पैर पर गिर पड़ूंगी। और तब उनको दानपत्र दूंगी।

सुमति। तब वृथा होगा। जो दानपत्र कृष्णकान्त के घर में मिलेगा, वही सच्चा कहलाकर ग्राह्य होगा। गोबिन्दलाल कोउस दान-पत्र के बाहर करने पर जाल करने के अपवाद में ग्रस्त होना होगा।

कुमति। तो चुप कर रहो—जो हुआ सो हुआ।

निदान सुमति चुप रही—उसकी हार हुई। इसके पीछे दोनों मेल कर के, सखियों के भाव से, एक दूसरे काम में लगीं। उसी वापी तीर बिराजित, चन्द्रालोक प्रतिभासित, चम्पकदाम विनिर्मित देवमूर्त्ति को लाकर रोहिणी के मानस की आंखों के आगे रक्खा। रोहिणी देखने लगी—देखते, देखते, रोई। रोहिणी उस रात सोई नहीं।

# नवमपरिच्छेद ।

---

उसी दिन से नित्य कलसी लेकर रोहिणी, वारुणी सरोवर पर जल लेने आती; नित्य कोकिल पुकारता, नित्य उसी गोविन्दलाल को पुष्पकानन में वह देखती, नित्य सुमति कुमति से बिगाड़ बनाव दोनों बातें होतीं। सुमति कुमति का वाद विवाद मनुष्य सह सकता है, पर सुमति कुमति का आपस का मेल महा विपत्तिजनक है। उस समय सुमति कुमति का रूप धारण करती है, कुमति सुमति का काम करती है। उस काल कौन सुमति है कौनकुमति है पहचानी नहीं जा सकती। लोग सुमति समझकर कुमति के वश में पड़ते हैं॥

जो हो कुमति हो सुमति हो, वह गोविन्दलाल का रूप दिन दिन रोहिणी के हृदय पट पर गाढ़तर वर्ण द्वारा अंकित करने लगी। अंधकार चित्रपट—उज्ज्वल चित्र ! दिन दिन चित्र उज्ज्वलतर, चित्रपट गाढ़तर अन्धकार होने लगा। उस काल संसार उस की आंखों के सामने—जाने दो पुरानी बातों के उठाने से मुझ को कोई काम नहीं है। रोहिणी अचानक गोविन्दलाल के ऊपर मनही मन, बहुत छिपे छिपे मोहित हुई। कुमति की दूसरी बार फिर जय हुई।

क्यों, जो इतने दिनों के पीछे उस की यह दशा हुई, उस को मैं समझ नहीं सकता हूं और समझा भी नहीं सकता। यही रोहिणी इसी गोविन्दलाल को लड़कपन से देखती है कभी उस

की ओर रोहिणी का मन नहीं खिंचा। आज अचानक क्यों ऐसा हुआ ? समझ में नहीं आता। जो जो हुआ था उस उस को कहा है—उसी दुष्ट कोकिल की पुकार पुकारी, वही सरोवर के किनारे का रोदन, वही काल, वही स्थान, वही चित्त भाव, तिस के पीछे गोविन्दलाल की असमय करुणा—इस पर गोविन्दलाल के ऊपर रोहिणी का बिना अपराध अन्याय आचरण—इन सब अवसरों पर कुछ काल तक गोविन्दलाल ने रोहिणी के मन में स्थान पाया था। इस से क्या हुआ क्या नहीं हुआ, मैं नहीं जानता, पर जैसा जैसा हुआ, हम ने ठीक वैसाही लिखा है॥

रोहिणी अति बुद्धिमती, उस ने समझा कि यह एक बार ही मरने की बातें हैं। जो गोविन्दलाल भूल कर भी इन बातों को जान सकेंगे, तो कभी मेरी परछाहीं भी न छूवेंगे। नहीं तो गांव में से निकलवा देंगे। किसी से यह बात कहने योग्य नहीं है। रोहिणी ने बहुत यत्न के साथ मन की बात को मन में ही छिपा रक्खा।

किन्तु जैसे छिपी हुई आग भीतर से जलाती आती है, रोहिणी के हृदय में वैसाही होने लगा। जीवन भार वहन करना रोहिणी के लिये कष्टदायक हुआ। रोहिणी मन ही मन दिन रात मृत्यु कामना करने लगी।

कितने लोग जो मन ही मन मरने की कामना करते हैं, कौन उन की गिनती कर सकता है ? मैं समझता हूं, जो लोग सुखी, जो लोग दुखी, उन में बहुत से लोग ही काय, मन, वचन से मरने की कामना करते हैं। क्योंकि इस संसार का सुख सुख नहीं है,

सुख भी दुःख मय है, किसी सुख में ही सुख नहीं है, कोई सुख ही सम्पूर्ण नहीं है, इसी लिये अनेक सुखो आदमी भी मरने की कामना करते हैं—और दुखी दुख का भार अब और वहन नहीं कर सकता है, इस लिये मृत्यु को बुलाता है।

मृत्यु को बुलाता है पर किस के पास मृत्यु बुलाने से आती है? बुलाने से मृत्यु नहीं आती। जो सुखी, जो मरना नहीं चाहता, जो सुन्दर, जो युवा, जो आशा पूर्ण, जिस की आंखों में पृथ्वी नन्दनकानन है मृत्यु उसी के पास आती है। रोहिणी ऐसी लोगों के पास वह नहीं आती। इधर, मनुष्य की इतनी थोड़ी शक्ति है कि मृत्यु को बुलाकर पास नहीं ला सकता। एक छोटी सी सूई के बेधने से, आधी बूंद औषध खाने से, यह नश्वर जीवन नाश हो सकता है। चंचल जलबिम्ब (बुलबुला) कालसागर में मिल सकता है—पर जी से मृत्यु कामना करने पर भी बहुधा कोई भी अपनी इच्छा से उस छोटी सी सूई को नहीं चुभोता, उस आधी बूंद औषध को नहीं पान करता। कोई कोई ऐसा कर सकता है, पर रोहिणी उस दल की नहीं है—रोहिणी ऐसा न कर सकी।

किन्तु एक विषय में रोहिणी कृतसंकल्प हुई। जिस से जाली दानपत्र न चल सके। इसका एक सीधा उपाय था। कृष्णकान्त से कह देने या किसी से यह कहला देने से कि—आप का दानपत्र चोरी गया है—सन्दूक खोल कर, उस में जो दानपत्र है—उस को पढ़ कर देखिये। रोहिणी ने चोरी की है, इस के भी प्रकाश करने का प्रयोजन नहीं है—जो चोरी करे कृष्णकान्त के मन में

एक बार सन्देह मात्र उपज जाने से वह सन्दूक खोल कर दानपत्र पढ़ कर देखेंगे—ऐसा होने पर ही वे जाली दानपत्र देख कर नया दानपत्र लिखेंगे। इस से गोविन्दलाल की सम्पत्ति की रक्षा होगी, और कोई जान भी न सकेगा कि किस ने दानपत्र चुराया था। किन्तु इस में एक विपद है—कृष्णकान्त जाली दानपत्र पढ़ते ही जानेंगे कि वह ब्रह्मानन्द के हाथ का लिखा है—उस समय ब्रह्मानन्द महाविपद में पड़ेंगे। इसलिये सन्दूक में जाली दानपत्र है, यह बात किसी के सामने कहने के योग्य नहीं है।

अतएव हरलाल के लोभ से रोहिणी ने, गोविन्दलाल का जो बड़ा भारी अनिष्ट कर रक्खा था, उस के प्रतिकार के लिये बहुत व्याकुल होने पर भी वह अपने चचा की रक्षा के ध्यान से कुछ न कर सकी। अन्त में सोची, कि जिस तौर से असली दानपत्र चुरा कर जाली दानपत्र रख आई थी, उसी तौर से फिर असली दानपत्र को रख कर उसके बदले में जाली दानपत्र को वापस लाऊंगी।

आधी रात के समय, रोहिणी सुन्दरी, असली दानपत्र को लेकर, साहस के साथ, अकेली कृष्णकान्त राय के घर की ओर चली। खिड़की, दरवाजे बन्द थे, सदर फाटक पर जहां ड्योढ़ीदार सब चारपाई पर बैठ कर अधखुली आंखों और अर्द्ध रुद्ध गले से पीलू रागिनी का पितृश्राद्ध करते थे, रोहिणी वहीं उपस्थित हुई। द्वारवालों ने पूछा "तू कौन है?" रोहिणी ने कहा, "सखी।" सखी घर की एक जवान टहलुनी थी, इसलिये द्वारवाले सब फिर कुछ न बोले। रोहिणी बेखटके घर में पैठ कर, पहले जाने हुए

रास्ते से कृष्णकान्त के सोने के कमरे में गई। घर सुरक्षित समझ कर कृष्णकान्त के सोने के घर का दरवाज़ा बन्द नहीं होता था। पैठने के समय कान लगा कर रोहिणी ने सुना कि कृष्णकान्त की नासिका बेअटक गर्जन कर रही है। तब धीरे धीरे चुप चाप दानपत्र का चोर घर में घुसा। घुस कर पहले हो दीये को बुझा दिया। पोछे पहले की तरह खोज कर कुंजी ली और पहले ही की तरह ताक कर अंधेरे में सन्दूक खोला।

रोहिणी बड़ी सावधान और उसके हाथ की गति बहुत ही धीमो थी। तिस पर भी कुंजी फिराने में खट् कर के कुछ शब्द हुआ। उसी शब्द से कृष्णकान्त की नींद टूट गई।

कृष्णकान्त राय ठीक न समझ सके कि कैसा शब्द हुआ। पर ज़रासा न सनके, कान लगा लिया।

रोहिणी ने भी देखा, कि नाक के गरजने का शब्द बन्द हो गया। रोहिणी समझ गई कि कृष्णकान्त की नींद टूट गई। रोहिणी चुप चाप स्थिर हो रही।

कृष्णकान्त बोले "कौन है?" किसी ने कुछ उत्तर न दिया।

रोहिणी अब वह नहीं है, रोहिणी इस काल शीर्णा, क्लिष्टा, विवशा,—बोध होता है कुछ डरी थी—सांस लेने से कुछ शब्द हुआ था। सांस का वही शब्द कृष्णकान्त के कान में गया।

कृष्णकान्त ने कई बार हरि को पुकारा। रोहिणी चाहती तो इस अवसर में भाग सकती थी, किन्तु ऐसा होने से गोविन्दलाल का प्रतिकार न होता रोहिणी ने मनही मन सोचा कि "उप

काम करने के लिये मैंने उस दिन जो साहस किया था, आज भला काम करने के लिये उस को क्यों नहीं कर सकती हूं ? पकड़ जाऊंगी, जाऊं" । रोहिणी भागी नहीं ।

कृष्णकान्त ने कई बार हरि को पुकार कर कोई उत्तर नहीं पाया। हरि दूसरी ठौर सुख की खोज में गया हुआ था—शीघ्र क्यों आवेगा। तब कृष्णकान्त ने तकिये के नीचे से दियासलाई लेकर अचानक उस से रोशनी पैदा की। और उस शलाका की रोशनी में देखा कि घर में सन्दूक के पास कोई स्त्री है।

जलती हुई शलाका के सहारे कृष्णकान्त ने बत्ती जलायी, और उस स्त्री को पुकार कर बोले " तू कौन है ? "

रोहिणी कृष्णकान्त के पास गई। बोली, " मैं रोहिणी हूँ "।

कृष्णकान्त चकित हुए, बोले " इतनी रात को अंधेरे में यहां क्या करती थी ? " रोहिणी बोली, " चोरी करती थी।"

कृष्ण०। रंगरहस्य करती है। क्यों इस अवस्था में हम ने तुम को देखा, बोलो। तुम चोरी करने आई हो, इस बात का हम को एक बारगी विश्वास नहीं होता है। पर चोर की अवस्था में ही तुम को देखता हूं।

रोहिणी बोली, तो मैं जो करने आई हूं, इस को आपके सामने ही करती हूं, आप देखें। पीछे मेरे साथ जो व्यवहार उचित हो कीजियेगा। मैं पकड़ गई हूं भाग न सकूंगी, भागूंगी भी नहीं।

यह कह कर रोहिणी ने सन्दूक के पास फिर आकर खोल कर बक्स को खोला। उस के भीतर से जाली दानपत्र बाहर कर के,

असली दानपत्र को रक्खा, पीछे जाली दानपत्र को टुकड़े टुकड़े कर के फाड़ डाला।

"हां हां यह क्या फाड़ती है? देखें देखें" कह कर कृष्णकान्त चिल्ला उठे। किन्तु उन के चिल्लाते चिल्लाते रोहिणी ने उस कई टुकड़े हुए दानपत्र को आग में डाल कर राख कर डाला।

कृष्णकान्त ने क्रोध से आंखें लाल कर के कहा, "यह क्या जला दिया?"

रोहिणी। एक जाली दानपत्र।

कृष्णकान्त कांप उठे, "दानपत्र! दानपत्र!! हमारा दानपत्र कहां है?"

रोहिणी। आप का दानपत्र सन्दूक के भीतर है, आप देखें न।

इस युवती की स्थिरता और निश्चिन्तता देख कर कृष्णकान्त विस्मित होने लगे। सोचा, कोई देवता छलने तो नहीं आये हैं?"

कृष्णकान्त ने तब सन्दूक खोल कर देखा, उस में एक दानपत्र है। उस को बाहर किया, चश्मा निकाला, दानपत्र को पढ़ कर और देख कर जाना कि उनका असली दानपत्र है। चकित हो कर फिर पूछा।

"तू ने जलाया क्या?"

रोहि०। एक जाली दानपत्र।

कृष्ण०। जाली दानपत्र? जाली दानपत्र किस ने लिखा? तू ने उस को पाया कहां?

रोहि० । किस ने लिखा, नहीं कह सकती—उस को मैं ने इसी सन्दूक में पाया था ।

कृष्ण० । तू ने कैसे पता पाया कि सन्दूक के भीतर जाली दानपत्र है ?

रोहि० । मैं उस को नहीं बतला सकती ।

कृष्णकान्त कुछ काल तक चिन्ता करने लगे पीछे बोले,

"यदि मैं तुम्हारी ऐसी स्त्री लोगों की छोटी बुद्धि के भीतर पैठ न सकूंगा तो इस सम्पत्ति की इतने दिन रक्षा किस प्रकार की ! यह जाली दानपत्र हरलाल की रचना है । बोध होता है तू उस से रुपया लेकर जाली दानपत्र रख कर असली दानपत्र चोरी करने आई थी ! पीछे पकड़े जाने पर डर कर जाली दानपत्र को फाड़ फेंका सच है कि नहीं ?"

रोहि० । ऐसा नहीं है ।

कृष्ण० । ऐसा नहीं है ? तो फिर क्या ?

रोहि० । मैं कुछ न कहूंगी । मैं आप के घर में चोर की भांति आई हूं, मुझ को जो करना हो कीजिये ।

कृष्ण० । तू बुरा काम करने आई थी, इस में सन्देह नहीं, नहीं तो इस प्रकार चोरों की भांति क्यों आती ! तेरा उचित दंड अवश्य करूंगा । तुझ को पुलिस में न पकड़ाऊंगा, किन्तु कल्ह तेरा सिर मुंड़ा कर मट्ठा ढाल कर गांव के बाहर कर दूंगा । आज तू कैद रह ।

रोहिणी उस रात आबद्ध रही ।

# दशम परिच्छेद ।

—:(•⌣•):—

उसी रात के प्रातः काल सोने के घर में खुली हुई खिड़की पर आकर गोविन्दलाल खड़े हुए । ठीक प्रभात नहीं हुआ था, कुछ विलम्ब था । अब भी घर के आंगन की कामिनी, कुंज में कोकिल पहली बोली न बोला किन्तु दोयल * ने गीत आरंभ किया है । ऊषाकाल का शीतल पवन बहने लगा है—गोविन्दलाल खिड़की खोल कर, उस उद्यानस्थित मल्लिका, गंधराज, कुटज के परिमल वाही शीतल प्रभात वायुसेवन के लिये उस के समीप खड़े हुए । योंही उन के पास एक क्षुद्र शरीरा बालिका आकर खड़ी हुई ।

गोविन्दलाल बोले, " फिर तुम यहां क्यों ?"

बालिका बोली, " तुम यहां क्यों ? " कहना नहीं होगा कि यही बालिका गोविन्दलाल की स्त्री है ।

गोवि० । मैं ज़रा हवा खाने यहां आया, सो भी तुम से न सहा गया ।

बालिका बोली, " कैसे सहा जाय ? अभी, और खायें खायें ? घर की सामग्री खा कर मन नहीं भरता घाट बाट हवा खाने के लिये फिर ताक झांक लगाते हो ।"

गो० । घर की सामग्री इतनी क्या खायी ?

" क्यों, मुझ को इतनी गाली नहीं खायी है ?"

---

*पक्षी विशेष । काला, चौंपा प० वि०

गो०। भोमरा! जानती नहीं हो, गाली खाकर जो बंगाली के लड़कों का पेट भरता, तो इस देश के लोग इतने दिनों में बदहज़मी की अधिकता से मरजाते। वह सामग्री बहुत सहज ही में बंगाली के पेट में हज़म होती है। भोमरा! तुम फिर एक बार अपने नथ को हिलाओ, मैं और एक बार देखूं।

गोविन्दलाल की पत्नी का यथार्थ नाम कृष्णमोहिनी, या कृष्ण-कामिनी, या अनंगमंजरी, या इसी प्रकार कौन जाने एक नाम उस के माता पिता ने और रक्खा था, वह इतिहास में नहीं लिखा है। व्यवहार न होने से वह नाम लोप हो गया था। उसका आदर का नाम "भ्रमर" वा "भोमरा" था। सार्थक होने के कारण यही नाम प्रचलित था। भोमरा काली थी।

भोमरा ने नथ हिलाने में विशेष आपत्ति प्रकट करने के लिये, नथ खोल कर, और एक हुक में रख कर उस को गोविन्दलाल की नाक में लटका दिया। पीछे गोविन्दलाल के मुख की ओर देख कर मृदु मृदु हंसने लगी—मन ही मन सोची, कि मानों मैंने एक बड़ी भारी कीर्ति की है। गोविन्दलाल भी उस के मुख की ओर देख कर प्यासी आंखों से उस पर दृष्टि करते थे। उसी समय सूर्योदय सूचक प्रथम रश्मिकिरीट पूर्वगगन में दृष्टि पड़ी, उस का मृदुल ज्योतिष्पुंज भूमंडल में प्रतिफलित होनेलगा। नवीनालोक पूरब दिशा से आकर पूर्वमुखी भ्रमर के मुख के ऊपर पड़ रहा था। उस उज्ज्वल, परिष्कार, कोमल, श्यामच्छवि, मुखकान्ति के ऊपर कोमल प्रभातालोक पड़कर उस के विस्फारित लीला चंचल आंखों के ऊपर ज्वलित हुआ, उस के स्निग्धोज्ज्वल गण्डस्थल पर प्रति

भासित हुआ। पश्चात् हंसी-अवलोकन में, उस सुन्दर आलोक में, गोबिन्दलाल के आदर और सुशीतल प्रभात समीरण द्वारा—मिल गया।

इसी समय सोकर उठी हुई दासियों के महल में कुछ गड़बड़ होने लगा। पीछे घर झाड़ने, जल छिरकने, बरतन मांजने, इत्यादि से कुछ सप् सप् छप् छप् झन् झन् खन् खन् का शब्द हुआ। अकस्मात् सो शब्द बन्द हुआ, "हैयारे दैया न जाने क्या होगा" "क्या सर्वनाश" "कैसी बुराई की बात" "कैसा साहस!" बीच बीच में हंसी टिटकारी इत्यादि का भी कोलाहल हुआ। सुन कर भ्रमर बाहर आई।

टहलुनियां सब भ्रमर को इतना नहीं मानतीं, इस के कई कारण थे। एक तो भ्रमर बालिका, तिस पर भ्रमर स्वयंगृहिणी नहीं है, उस के सास ननंद थीं, इस पर भी भ्रमर जितना हंसने में पटु थी शासन करने में उतना पटु नहीं थी। भ्रमर को देख कर दासियों के दल ने बड़ा कोलाहल मचाया।

न० १। बहू तुम ने कुछ सुना नहीं!

न० २। ऐसी बुरी बात किसी ने कभी नहीं सुनी।

न० ३। क्या साहस! छोकरी का जाकर मैं झोंटा नोच आती हूं।

न० ४। खाली झोंटा—बहू कहो तो मैं उसकी नाक काट लाऊं।

न० ५। किस के पेट में क्या है—भला यह कोई कैसे जान सकता है!

भ्रमर हंसकर बोली "पहले कहती नहीं कि क्या हुआ है, पीछे जिस के मन में जो आवे करना।" यों ही फिर पहले की तरह कोलाहल आरम्भ हुआ।

न० १। बोली। सुना नहीं? पड़ोस भर में तो बात फैल गई।

न० २। बोली। बाघ के घर में घोग (छोटा जानवर) का वासा। *

न० ३। मन करता है कि छोकरी का झोंटा नोच कर विष झाड़ दें।

न० ४। क्या कहूंगी बहू! बामन हो कर चांद पर हाथ।

न० ५। भीगे बिलार के पहचानने में देर नहीं होती †। गले में फांसी! गले में फांसी!!

भ्रमर बोली, "तुम सबों के।"

दासियां तब एक हो कर कहने लगीं, "हम सबों का कौन दोष है! हम सबों ने क्या किया! पर हां जान गई जान गई। जहां जो कुछ करेगा, उसमें दोष हम सबों का होगा! हम लोगों को अब दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसी लिये मजूरी कर के खाने आई हैं।" यह राम कहानी पूरी कर के दो एक जनी ने आंखों से अंचल लगा कर रोना आरम्भ किया। एक जनी के मरे लड़के का शोक उछल पड़ा। भ्रमर कातर हुई— पर हंसी को भी न रोक सकी।" बोली,

* बंग भाषा का एक मुहावरा। भाव जबर्दस्त पर जबर्दस्त। म० सिंह।

† मुहावरा भाव कच्ची। म० सिं०

"तुम सबों के गले में फांसी इस लिये कि अब भी तुम सब न बतला सको कि बात क्या है। क्या हुआ है?"

तब फिर चारों ओर से चार पांच तरह का गला छूट पड़ा। बहुत कष्ट से भ्रमर ने इस अनन्त वक्तृता परम्परा से यह भावार्थ निकाला कि पिछली रात को बड़े बाबू के सोने के घर में चोरी हुई है। कोई बोली चोरी नहीं डकैती, कोई बोली सेंध, कोई बोली, नहीं, केवल पांच चार जने चोर आकर लाख रुपये का कम्पनी कागज़ चुरा ले गये हैं।

भ्रमर बोली, "फिर किस छोकरी की नाक काटना चाहती हो?"

न० १। रोहिणी बीबी की—और किस की?

न० २। वही अभागिनी तो इस सर्वनाश की जड़ है।

न० ३। वही तो डकैतों का दल साथ लाई थी।

न० ४। जैसी करनी वैसा फल।

न० ५। तो अब जेल में सड़ें।

भ्रमर ने पूछा, "रोहिणी चोरी करने आई थी, तुम सभों ने कैसे जाना?"

"क्यों, वह जो पकड़ी गई है। कचहरी की गारद में कैद है।"

भ्रमर ने जो कुछ सुना, जाकर गोविन्दलाल से कहा। गोविन्द लाल ने सोच कर गरदन हिलाई।

भ्रमर। गरदन क्यों हिलाई?

गो०। मुझ को यह विश्वास नहीं हुआ कि रोहिणी चोरी करने आयी थी। तुम को विश्वास होता है?

भोमरा बोली, "ना"

गो० । क्यों तुम को विश्वास नहीं होता है, मुझ से कहो देखें ? लोग तो कहते हैं ।

भ्र० । तुम को क्यों नहीं विश्वास होता है, हम से कहो देखें ?

गो० । फिर कभी कहूंगा । तुम को विश्वास क्यों नहीं होता है ? बोलो ।

भ्रमर । पहले तुम्हीं बोलो ।

गोविन्दलाल हंसे, बोले, "पहले तुम्हीं ।"

भ्रमर । मैं क्यों पहले कहूं ?

गो० । मुझ को सुनने की इच्छा है ।

भ्रमर । सच्ची कहूं ।

गो० । सच्ची कहो ।

भ्रमर कहूं कहूं करके कुछ न कह सकी । लाज से मुख नीचा करके चुप हो रही ।

गोविन्दलाल ने समझा । पहले ही समझा था । पहले समझ कर ही इतना तंग करके पूछते थे । रोहिणी निरपराधिनी है, भ्रमर को इस का दृढ़ विश्वास हुआ था । अपने अस्तित्व का भ्रमर को जितना विश्वास था भ्रमर उस के निर्दोष होने में उतनी ही विश्वासवती थी । किन्तु इस विश्वास का कोई कारण नहीं था केवल गोविन्दलाल ने जो कहा था कि "वह निर्दोष है यह हमारा विश्वास है" उसी गोविन्दलाल के [illegible]

विश्वासवती है। गोविन्दलाल ने यह समझा था। भ्रमर को वह पहचानते। इसी लिये उस काली को इतना प्यार करते।

हंस कर गोविन्द लाल बोले, "मैं कैसे कहूंगा तुम रोहिणी की ओर हो!"

भ्रमर। क्यों?

गो०। वह तुम को काली न कह कर सांवले रंग की बतलाती है।

भ्रमर ने कोपकुटिल कटाक्ष से कहा, "जाओ।"

गोविन्दलाल बोले, "जावें।" यह कह कर गोविन्दलाल चले।

भ्रमर ने उन का कपड़ा पकड़ा—"कहां जाते हो?"

गोवि०। कहां जाता हूं बताओ देखें?

भ्रमर। अब की बताऊंगी।

गोवि०। बताओ देखें?

भ्रमर। रोहिणी को बचाने।

"हां" कह कर गोविन्दलाल ने भोमरा का मुख चुम्बन किया। दूसरे के दुख से कातर के हृदय को दूसरे के दुख से कातर ने बूझा—इसी लिये गोविन्द ने भ्रमर के मुख का चुम्बन किया।

# एकादश परिच्छेद ।

---

कृष्णकान्त की सदर कचहरी में आकर गोविन्द लाल ने दर्शन दिया ।

कृष्णकान्त सबेरे ही कचहरी में बैठे थे । गद्दी के ऊपर मसनद के सहारे बैठ कर सोने के पेचवान में अम्बूरी तमाकू चढ़ाये हुए, मर्त्यलोक में स्वर्ग का अनुकरण करते थे । एक ओर बहुत सा बंधा हुआ दफ़्तर का चिट्ठा, खतौनी, दाखिला, जमाखर्च, रसीद, वसूल, बाकी, स्याहा, रोकड़—दूसरी ओर नायब, गुमाश्ता, मोहर्रिर, तहसीलदार, अमीन, प्यादे, सिपाही, प्रजा । सामने घूंघट निकाले हुए मुख नीचे किये रोहणी ।

गोविन्दलाल प्यारे भतीजे थे । पैठ कर ही उन्हों ने पूछा, "चचा साहब क्या हुआ है ?"

उन के कंठ का स्वर सुन कर रोहिणी ने थोड़ा घूंघट हटा कर उन की ओर क्षणिक कटाक्ष किया । कृष्णकान्त ने उन को बात का क्या उत्तर दिया, इस ओर गोविन्दलाल विशेष ध्यान नहीं लगाने पाया; सोचा, इस कटाक्ष का भाव क्या है । अन्त में विचारा कि "इस कातर कटाक्ष का अर्थ, भिक्षा ।"

कैसी भिक्षा ? गोविन्दलाल ने सोचा कि आरत की भिक्षा और क्या ? विपद से उद्धार । उस बावली के किनारे सीढ़ी पर खड़े हो कर जो बातचीत हुई थी, वह भी इस काल उन को याद
इस ने रोहिणी से कहा था " तुम को जो किसी

बात का दुख हो, तो आज हो, कल हो, मुझ को बतलाना।" आज तो रोहिणी दुखी है, समझ पड़ता है कि इस कटाक्ष द्वारा रोहिणी ने उन को वही बात याद दिलाई है।

गोविन्दलाल ने मन ही मन सोचा, "तुम्हारा मंगल करूँ, यह मेरी इच्छा है, क्योंकि इस लोक में तुम्हारा सहायी किसी को नहीं देखता हूँ। किन्तु तुम जैसे आदमी के हाथ पड़ी हो—इस से तुम्हारी रक्षा सहज नहीं है।" यह सोच कर सब के सामने ही जेठे चचा से पूछा, "क्या हुआ है चचा साहब ?"

बूढ़े कृष्णकान्त एक बार सब बातें आदि से अंत तक गोविन्दलाल से कह गये थे। किन्तु गोविन्दलाल रोहिणी के कटाक्ष की व्याख्या करने में चंचल थे, कान से कुछ नहीं सुना। भतीजे ने फिर पूछा कि "चचा साहब क्या हुआ है ?" सुनकर बूढ़े ने मनही मन सोचा, "हुआ है ! मालूम होता है छोकरा इस युवती के चांद ऐसे मुखड़े को देख कर लुभा गया !" कृष्णकान्त ने फिर आदि से अंत तक पिछली रात की बात को गोविन्दलाल को सुनाया। बात पूरी करके बोले,

"यह उसी हरवा पाजी की कार्रवाई है। बोध होता है यह स्त्री उस से रुपया लेकर जाली दानपत्र रख कर असली दानपत्र चोरी करने आई थी। पीछे पकड़ जाने पर डरकर जाली दानपत्र को फाड़ फेंका है।"

गो०। रोहिणी क्या कहती है ?

कृ०। वह और क्या कहेगी, कहती है ऐसा नहीं। गोविन्दलाल ने रोहिणी की ओर फिर कर पूछा, "ऐसा नहीं तो फिर क्या है रोहिणी ?"

रोहिणी ने मुख ऊँचा न कर के, गद्गद कंठ से कहा, "मैं आप लोगों के हाथ में पड़ी हूँ, जो करना हो कीजिये। मैं और कुछ न कहूँगी।"

कृष्णकान्त ने कहा, "देखा बदज़ाती।"

गोविन्दलाल ने मनहीं मन सोचा कि इस पृथ्वी में सभी बद-ज़ात नहीं हैं। इस के भीतर बदज़ाती छोड़ और कुछ हो सकता है। प्रकट में बोले,

"इस के विषय में क्या हुकुम हुआ है? इस को क्या थाने में भेजेंगे?"

कृष्णकान्त बोले, "मेरे निकट दूसरा थाना फौजदारी क्या है! हमीं थाना, हमीं मजिष्टर, हमीं जज। विशेष कर के इस तुच्छ स्त्री को जेल में भेजकर हमारा क्या पौरुष बढ़ेगा?"

गोविन्दलाल ने पूछा, "फिर क्या करेंगे?"

कृष्ण०। इस का सिर मुंड़ा कर मट्ठा डाल कर और सूप की हवा कराकर इस को गांव के बाहर कर दूंगा। जिस से मेरे इलाके में फिर न आने पावे।

गोविन्दलाल ने फिर रोहिणी की ओर फिर कर पूछा, "क्या कहती हो, रोहिणी?"

रोहिणी बोली, "कौन बुराई है!"

गोविन्दलाल विस्मित हुए। कुछ सोच कर कृष्णकान्त से बोले, "एक निवेदन है।"

कृ०। क्या?

गो०। इस को एक बार छोड़ दीजिये। मैं ज़ामिन होता हूं—दस बजे हाज़िर कर दूंगा।

कृष्णकान्त ने सोचा, "समझ पड़ता है जो सोचा था वही है। बाबाजी का कुछ मतलब दीखता है।" प्रकट में बोले, "कहां जाओगे? क्यों छोड़ूं?"

गोबिन्दलाल बोले, "सच्ची बात क्या है, यह जानना बहुत आवश्यक है। इतने लोगों के सामने यह असली बात खोलकर न कहेगी। इस को एक बार घर में ले जाकर पूछा पेखी करूंगा।"

कृष्णकान्त ने सोचा, "उस से पूछा पेखी नहीं सिर करोगे। इस काल के लड़के बड़े बेहया हो गये हैं। रहु छछूंदर! मैं भी तेरे साथ एक चाल चलूंगा।" यह सोच कर कृष्णकांत बोले, "बहुत अच्छा"। यह कहकर कृष्णकान्त ने एक नौकर से कहा, "जावे! इस को साथ ले जाकर एक दासी के साथ मझली बहू के पास भेज तो दे, देखना भागने न पावे।"

नौकर रोहिणी को ले गया। गोबिन्दलाल ने भी प्रस्थान किया। कृष्णकान्त ने सोचा, "दुर्गा! दुर्गा!! लड़कों को क्या हो गया?"

---

# द्वादश परिच्छेद ।

गोविन्दलाल ने भीतर आकर देखा कि भ्रमर रोहिणी को लेकर चुप कर के बैठी हुई है। कोई अच्छी बात कहने की इच्छा है। किन्तु पीछे इस विषय में अच्छी बात कहने पर भी रोहिणी को रुलाई आवे, इस लिये उस को भी नहीं कह सकती है। गोविन्दलाल को आया देखकर भ्रमर ने मानो बस दाव से उद्धार पाया। शीघ्र गति से दूर आकर गोविन्दलाल को इशारे से बुलाया। गोविन्दलाल भ्रमर के पास गये। भ्रमर ने गोविन्दलाल से चुप चुप पूछा,

" रोहिणी यहां क्यों ?"

गोविन्दलाल बोले, " मैं छिप कर उस से कुछ पूछूंगा पीछे उस के भाग में जो होना होगा होगा।"

भ्र० । क्या पूछोगे ?

गो० । उस के मन की बात । मुझ को उसके पास अकेले छोड़ जाने में जो तुम को भय होवे, तो ओट से तुम्हारे जी में आवे तो सुनना ।

भोमरा बड़ी अप्रतिभ हुई। लाज से मुख नीचा कर के वहां से दौड़ कर भाग गई। लगे पांव आकर रसोई के घर में मौजूद हुई, पीछे से रसोई करनेवाली का बाल खींच कर बोली; रसोई वाली चाची, रसोई करते करते एक कहानी कहो न ।

इधर गोविन्दलाल ने रोहिणी से पूछा, "क्या इस बात को तुम मुझ से पूरो तौर से कहोगी ?" कहने के लिये रोहिणी का कलेजा फटा जाता था किन्तु जो जाति जीतेही ज्वलन्त चिता पर आरोहण करती, रोहिणी भी वही जाति या आर्य्य कन्या। बोली, "बड़े बाबू से तो पूरी तौर से सुनाया है।"

गो०। वह कहते हैं, तुम जाली दानपत्र रख कर असली दानपत्र चोरी करने आई थी। क्या यही है।

रोहि०। नहीं !

गो०। फिर क्या ?

रो०। कह कर क्या होगा ?

गो०। तुम्हारा भला हो सकता है।

रो०। जो आप विश्वास करें तब न ?

गो०। विश्वास योग्य बात होने पर क्यों न विश्वास करूंगा।

रो०। विश्वास योग्य बात नहीं है।

गो०। मेरे लिये कौन विश्वास योग्य कौन अविश्वास योग्य है, उसको मैं जानता हूं, तुम कैसे जानोगी ? मैं अविश्वास योग्य बातों का भी कभी कभी विश्वास करता हूं।

रोहिणी मनही मन बोली, "ऐसा न होता तो मैं तुम्हारे लिये मरने क्यों बैठती ? जो हो मैं तो मरने बैठी हूं किन्तु तुम्हारी एक बार परीक्षा कर मरूंगी।" प्रकट में बोली, "वह आप की महिमा, किन्तु आप से इस दुख की कहानी कह करही क्या होगा ?"

गो०। क्या जाने हम तुम्हारा कोई उपकार कर सकें।

रो०। क्या उपकार करेंगे?

गोविन्दलाल ने सोचा, "इस का पति नहीं है, जो हो यह कातरा—इस को सहजही परित्याग करना उचित नहीं।" प्रकट बोले,

"जो हो सकेगा बड़े बाबू से अनुरोध करूंगा, वह तुम को छोड़ देंगे।"

रो०। और आप जो अनुरोध न करें—तो वह हम को क्या करेंगे?

गो०। सुना तो है?

रो०। हमारा सिर मुड़ावेंगे मट्ठा डाल देंगे देश से बाहर कर देंगे। इस की भलाई बुराई में कुछ समझ नहीं सकती हूं—इस कलंक पर देश से बाहर करदेनाही मेरा उपकार है। मुझ को निकाल न देने पर—मैं आपही यह देश छोड़ जाऊंगी। अब इस देश में मुंह कैसे दिखलाऊंगी! मट्ठा डालना बड़ा भारी दण्ड नहीं है, धोने सेही मट्ठा दूर होगा। रहा यह केश—यह कह कर—रोहिणी ने एक बार अपने तरंग लुब्ध कृष्णनाग तुल्य—केश दाम की ओर देखा—कहने लगी—"यह केश—आप कैंची लाने को कहें—मैं बहू ठकुराइन के बाल का बंधन बनाने के लिये इन सब को काट कर रख जाती हूं।"

गोविन्दलाल दुखित हुए। लम्बी सांस भर कर बोले,

"समझता हूं रोहिणी! कलंकही तुम्हारा दण्ड है। उस दण्ड से रक्षा न होने पर, दूसरे दण्ड पाने में तुम को आपत्ति नहीं है।"

रोहिणी इस बार रोई। हृदय में गोविन्दलाल को सैकड़ों हजारों धन्यवाद देने लगी। बोली,

"जो समझे हैं, तो पूछती हूं, इस कलङ्क—दण्ड से क्या मेरी रक्षा आप कर सकेंगे?"

गोविन्दलाल ने कुछ काल सोचकर कहा, "कह नहीं सकता। असली बात सुनने पर, कह सकूंगा, कि कर सकता हूं कि नहीं।"

रोहिणी बोली, "क्या जानना चाहते हैं? पूछिये।"

गो०। तुमने जो जलाया है, वह क्या था?

रो०। जाली दानपत्र।

गो०। कहां पाया था?

रो०। बड़े बाबू के घर में, सन्दूक में।

गो०। जाली दानपत्र वहां कैसे आया?

रो०। मैं ही रख गई थी, जिस दिन असली दानपत्र लिखा पढ़ा गया, उसी दिन रात में आकर, असली दानपत्र चोरी कर के जाली दानपत्र रख गई थी।

गो०। क्यों, तुम्हारा क्या प्रयोजन था?

रो०। हरलाल बाबू के कहने से।

गोविन्दलाल बोले, "तो कल रात को फिर क्या करने आई थी?"

रो०। असली दानपत्र रख कर जाली दानपत्र चोरी करने के लिये।

गो०। क्यों? जाली दानपत्र में क्या था?

रो०। हरलाल बाबू का बारह आना—आपकी एक पाई।

गो०। क्यों फिर दानपत्र बदलने आई थी? मैंने तो कोई अनुरोध नहीं किया।

रोहिणी रोने लगी। बहुत कष्ट से रोना रोक कर बोली, "नहीं—अनुरोध नहीं किया किन्तु जो हम ने इस जन्म में कभी नहीं पाया। जो इस जन्म में फिर कभी नहीं पाऊंगी—आपने वह मुझ को दिया था।"

गो०। वह क्या रोहिणी?

रो०। उसी वारुणी सरोवर के किनारे—याद कीजिये।

गो०। क्या रोहिणी?

रो०। क्या? इस जन्म में मैं न कह सकूंगी कि—क्या। अब कुछ न बोलिये। इस रोग की औषधि नहीं—मेरा छुटकारा नहीं। मैं विष पाती तो खाती। किन्तु वह आप के घर नहीं है। आप हमारा दूसरा उपकार नहीं कर सकते—पर एक उपकार कर सकते हैं—एक बार छोड़ दीजिये रो आऊं। पीछे जो मैं बची रहूंगी तो जो मैं आवे, तो मेरा सिर मुंड़ाकर मट्ठा डाल कर देश बाहर निकलवा दीजियेगा।

गोविन्दलाल ने समझा। दर्पण में की परछांहीं की भांति रोहिणी के हृदय को देखपाया। समझा, जिस मन्त्र से भ्रमर मुग्ध, वह भुजंग भी उसी मंत्र से मुग्ध हुआ है। उन को आनन्द नहीं हुआ—रंज भी नहीं हुआ—समुद्रवत् वह हृदय उस को हिलोड़ कर दया का उच्छ्वास उठा। बोले,

" रोहिणी, बोध होता है कि मरनाही, तुम्हारे लिये अच्छा है, पर मरने का काम नहीं है। सभी इस संसार में काम करने आया है—अपना अपना काम बिना किये कैसे मरेंगे ? "

गोविन्दलाल इतस्ततः करने लगे। रोहिणी बोली " कहिये न। "

गो०। तुम को यह देश छोड़ जाना होगा।

रोहिणी। क्यों ?

गो०। तुम आपही तो कहती थी कि, तुम यह देश छोड़ना चाहती हो।

रो०। मैं लज्जा से कहती थी, आप क्यों कहते हैं ?

गो०। जिस में हम से तुम से फिर देखा सुनी न हो।

रोहिणी ने देखा, गोविन्दलाल ने सब समझा, मनही मन बड़ी अप्रतिभ हुई—बड़ी सुखी हुई। उस का सब दुख भूल गया। फिर उस को बचने की इच्छा हुई। फिर उस को देश में रहने की कामना हुई। मनुष्य बड़ा ही पराधीन है।

रोहिणी बोली, " मैं अभी जाने को राज़ी हूं पर कहां जाऊंगी ? "

गो०। कलकत्ता। वहां मैं अपने एक बन्धु को पत्र देता हूं। वह तुम को एक घर मोल ले देंगे। तुम्हारा रुपया न लगेगा।

रो०। मेरे चचा का क्या होगा ?

गो०। वह तुम्हारे संग आयंगे। नहीं तो मैं तुम को कलकत्ते आने को न

रो०। वहां अपना दिन मैं कैसे बिताऊंगी?

गो०। हमारे बन्धु तुम्हारे चचा को एक नौकरी लगा देंगे।

रो०। चचा देश छोड़ने के लिये सम्मत कैसे होंगे?

गो०। तुम क्या उन को इस व्यापार के पीछे सम्मत न कर सकोगी?

रो०। सकूंगी। पर आपके जेठे चचा को सम्मत कौन करेगा? वह हम को सहजही में क्यों छोड़ देंगे?

गो०। मैं अनुरोध करूंगा।

रो०। ऐसा होने पर मेरे लिये कलंक पर कलंक आप के लिये भी कुछ कलंक।

गो०। ठीक है। तुम्हारे लिये बड़े चचा के पास, भ्रमर अनुरोध करेगी। तुम इस घड़ी भ्रमर की खोज में जाओ। उसको भेजकर तुम इसी घर में रहना, खोजने पर जिस में पावें।

रोहिणी आंसूभरी आंखों के साथ गोविन्दलाल को देखते देखते भ्रमर को खोज में गई। इस प्रकार कलंक और बंधन की दशा में रोहिणी का पहला प्रणय संभाषण हुआ।

# त्रयोदश परिच्छेद ।

भ्रमर स्वसुर से किसी प्रकार का अनुरोध करने के लिये स्वीकृत नहीं हुई—बड़ी लाज लगती थी छिः !

आगे गोविन्दलाल आप कृष्णकान्त के पास गये। कृष्णकान्त उस काल भोजन करके पलंग पर अर्द्ध शयनावस्था में सटक क नल हाथमें लिये—सो रहे थे। एक ओर उनकी नाक नाद सुर से गमक गमक कर तान मूर्च्छनादि के साथ नाना प्रकार की राग रागिणी को अलाप रही थी—और एक ओर उनका मन अफी के प्रसाद से त्रिभुवनगामी घोड़े पर चढ़ कर नानास्थान की सै कर रहा था। बोध होता है रोहिणी का चांद ऐसा मुखड़ा बूढ़ के मन के भोतर भी बसा था—चांद कहां नहीं उदय होता—नहीं तो बुड्ढा अफीम की झोंक में इन्द्राणी के कन्धे पर उस मुख को क्यों बैठालता ? कृष्णकान्त देखते हैं, कि रोहिणी एक बा इन्द्र की शची होकर महादेव के गोशाले में सांड़ चुराने गई है नन्दी ने त्रिशूल हाथ में लिये सानी देने जाकर उस को पकड़ा है देखते हैं नन्दी ने रोहिणी के आलुलायित केश दाम को पकड़ कर खींचा खींची लगाया है। और श्यामकार्तिक के मोर सन्धान पाकर, उसके बसी छबा तक छुड़ाये, बलखाये केशगुच्छ को स्फीत फणा फणिश्रेणी के भ्रम से निगलने गया— इसी समय श्यामकार्तिक आपही अपने मोर की दुष्टता देख कर नालिश करने के लिये महादेव के पास पहुंच कर पुकारते "

कृष्णकान्त अचरज के साथ सोचते हैं, कार्तिक महादेव को किस सम्बन्ध से "जेठे चचा कह कर पुकारते हैं?" इसी समय कार्तिक ने फिर पुकारा, "जेठे चाचा!" कृष्णकान्त ने बहुत खीझ कर कार्तिक के कान मल देने के लिये हाथ बढ़ाया। योंही कृष्णकान्त के हाथ के पेचवान का नल, हाथ से छूट कर झनात् शब्द कर के पान के डब्बे के ऊपर गिर पड़ा। पान का डब्बा झन् झन् झनात् शब्द से पीकदान के ऊपर गिरा; और नल, पान का डब्बा, पीकदान, सब एक साथ उलट पुलट कर धरातलशायी हुए। उसी शब्द से कृष्णकान्त की नींद टूट गई, उन्होंने आंख खोलकर देखा कि कार्तिकेय यथार्थ ही उपस्थित हैं। मूर्तिमान् स्कन्दवीर तुल्य गोविन्दलाल उन के सम्मुख खड़े होकर पुकारते हैं; "बड़े काका!" कृष्णकान्त घबरा कर उठ बैठे, पूछा, "क्या बाबा! गोविन्द लाल!" गोविन्दलाल को बूढ़ा बहुत चाहता।"

गोविन्दलाल भी कुछ शरमाये,—बोले, "आप सोवें—मैं कुछ ऐसे काम के लिये नहीं आया हूं।" यह कह कर गोविन्दलाल ने पीकदान उठा कर सीधा किया, पान का डब्बा उठा कर यथा स्थान रक्खा, नल को कृष्णकान्त के हाथ में दिया। किन्तु कृष्णकान्त—सख्त बूढ़ा सहजही भूलनेवाला नहीं—मनहीं मन कहने लगे, "कुछ नहीं—यह छछून्दर फिर उसी चांद से मुखड़े वाली की की कथा कहने आया है।" प्रकट में बोले, "ना। मैं सो चुका—अब नींद न लगेगी।"

गोविन्दलाल कुछ दुविधे में पड़े। रोहिणी की बात कृष्णकान्त से इस समय कहने में हम को लज्जा भी लगती है।"—

अब कुछ लाज लगती है—बात कह कह करते न कह सके। रोहिणी के साथ वारुणी पोखरी की बातें हुई थीं, क्या इसी लिये लज्जा ?

बूढ़ा रंग देखने लगा। गोविन्दलाल कुछ नहीं बोलता है, यह देख कर, आपही ज़मींदारी की बातें उठायीं. ज़मींदारी की बातों के पीछे सांसारिक बातें, सांसारिक बातों के पीछे मामिले की बातें, किन्तु तो भी रोहिणी का जिक्र नहीं हुआ। गोविन्दलाल रोहिणी की बातें किसी तरह न उठा सका। कृष्णकान्त मनही मन बहुत हंसने लगे। बूढ़ा बड़ा दुष्ट है।

निदान गोविन्दलाल फिर चले—तब कृष्णकान्त ने प्यारे भतीजे को पुकरवा कर लौटाया—पूछा,

"सवेरे जिस स्त्री को तुम ज़ामिन पड़ कर लिवा गये थे, उस स्त्री ने कुछ स्वीकार किया ?"

तब गोविन्दलाल ने मौका पाकर जो जो रोहिणी ने कहा था, संक्षेप से कहा, वारुणी पोखरी पर की बातों को छिपाया। सुन कर कृष्णकान्त बोले,

"अब उस के साथ क्या करने का तुम्हारा अभिप्राय है ?"

गोविन्दलाल लज्जित होकर बोले, "आप का जो कुछ अभिप्राय है, हम लोगों का भी वही अभिप्राय है।"

कृष्णकान्त ने मनही मन हंस कर किन्तु मुख पर हंसी का कुछ लक्षण न दिखला कर कहा, मैं उस की बातों का विश्वास नहीं करता। उस का सिर मुंड़ा कर, मट्ठा ढाल कर, देश के बाहर कर दो—क्या कहते हो ?"

गोविन्दलाल चुप रहे। तब दुष्ट बूढ़े ने कहा, "और तुमलोग जो ऐसाही सोचते हो, कि उस का दोष नहीं है—तो छोड़ दो।"

गोविन्दलाल ने तब सांस लेकर बूढ़े के हाथ से छुटकारा पाया।

—:०:—

# चतुर्दश परिच्छेद।

रोहिणी गोविन्दलाल की अनुमति अनुसार चचा के साथ विदेश जाने का बन्दोबस्त करने आई। चचा से कुछ न कह कर, घर के बीच में बैठ कर, रोहिणी रोने लगी—

"इस हरिद्रा ग्राम को छोड़ कर मैं नहीं जा सकती हूं—न देख कर मर जाऊंगी। मैं कलकत्ता जाने पर गोविन्दलाल को न देख सकूंगी, मैं न जाऊंगी। यही हरिद्राग्राम हमारा स्वर्ग, यहां गोविन्दलाल का मन्दिर! यह हरिद्राग्राम ही हमारा श्मशान, यहां मैं जल मरूंगी। श्मशान में न मरने पावे, ऐसा कपाल भी है! मैं जो यह हरिद्राग्राम छोड़ कर न जाऊं, तो हमारा कौन क्या कर सकता है? कृष्णकान्तराय हमारा सिर मुंड़ा कर, मठ्ठा डाल कर, देश के बाहर कर देंगे? मैं फिर आऊंगी। गोविन्दलाल बुरा मानेंगे? मानें—पर तब भी मैं उनको देखूंगी। हमारी आंखें तो न निकाल लेंगे। मैं न जाऊंगी। कलकत्ता न जाऊंगी—कहीं न जाऊंगी। जाऊंगी तो, यम के घर जाऊंगी। और कहीं नहीं।"

यही सिद्धांत स्थिर कर के, कलमुंही रोहिणी उठ कर, दरवाज़ा खोल कर, फिर—"पतंगव वह्नि मुखम् विविक्षुः"—उसी गोविन्द-लाल के पास चली । मनही मन कहते कहते चली, "हे जगदीश्वर! हे दीननाथ ! हे दुखी लोगों के एकमात्र सहाय ! मैं बड़ी दुःखिनी हूं, बड़े दुख में पड़ी हूं—मेरी रक्षा करो—मेरे हृदय की इस असहनीय प्रेम अग्नि को बुझा दो—अब मुझ को न जलाओ । मैं जिस को देखने जाती हूं—उस को जितनी बार देखूंगी, उतनी बार—मुझको असह्य यंत्रणा अनन्त सुख । मैं विधवा—मेरा धर्म्म गया—सुख गया—प्राण गया—रहा क्या प्रभु ? —हे देवता ! हे दुर्गा ! हे काली ! हे जगन्नाथ ! मुझ को सुमति दो, मेरे प्राण स्थिर करो—मैं इस यंत्रणा को अब और नहीं सह सकती हूं । "

तब भी, वह, तड़पता हृदय, अपार प्रेम से भरा हुआ हृदय, न थमा । कभी सोचा विष खावें—कभी सोचा गोविन्दलाल के पैरों पर गिर कर, जी खोल कर, सब बातें कहें, कभी सोचा भाग जावें, कभी सोचा वारुणी में डूब मरें, कभी सोचा धर्म्म को जलांजलि दे कर गोविन्दलाल को निकाल कर देशान्तर में भाग चलें । रोहिणी रोते रोते गोविन्दलाल के पास फिर उपस्थित हुई ॥

गोविन्दलाल ने पूछा, "क्यों कलकत्ते जाना ठीक तो हो गया ?"

रोहिणी । नहीं ।

गो० । यह क्या ? मुझसे तो तू ऐसाही स्वीकार कर गई थी ?

रो० । नहीं जा सकूंगी

गो०। मैं कुछ नहीं कह सकता। ज़बरदस्ती करने का मुझको कोई अधिकार नहीं है—किन्तु जाने से अच्छा होता।

रो०। कैसे अच्छा होता?

गोविन्दलाल ने मुख नीचा किया। स्पष्ट करके कोई बात कहने वाले यह कौन?

रोहिणी तब आंख के जल को छिपाकर पोंछती पोंछती घर फिर आई। गोविन्दलाल बहुत दुखी होकर सोचने लगे। इसी बीच भोमरा नाचती नाचती वहां आ पहुंची। बोली, "क्या सोच रहे हो?"

गो०। बताओ देखें?

भ्र०। मेरा काला रूप।

गो०। उं:—

भोमरा बहुत ही क्रोधित होकर बोली—"यह क्या? मुझे नहीं सोचते हो? मुझको छोड़ कर, पृथ्वी में तुम को कोई दूसरी चिन्ता भी है?"

गो०। है नहीं तो क्या? सर्व सर्वमयी और क्या? मैं दूसरे किसी को सोच रहा हूं।

भ्रमर ने तब, गोविन्दलाल के गले को जकड़ कर पकड़ा, मुख चुम्बन किया, आदर से पसीजकर, आधे आधे, मृदु मृदु हंसी भरे स्वर से, पूछा, "दूसरे किसी को—किस को सोचते हो कहो न?"

गो०। तुम से कह कर क्या होगा?

भ्रम० । कहो न ?

गो० । तुम रूठ जाओगी ।

भ्र० । जाऊंगी जाऊं—कहो न ।

गो० । जाओ—जाकर देखो—सब के लिये खाने को हो गया कि नहीं ।

भ्र० । देखूंगी, इस घड़ी कहो न, किस को ?

गो० । साही के कांटे ! रोहिणी को सोच रहा था ।

भ्र० । रोहिणी को क्यों सोच रहे थे ?

गो० । यह हम क्या जानें ?

भ्र० । जानते हो—कहो न ।

गो० । मनुष्य क्या मनुष्य को चिन्ता नहीं करता ?

भ्र० । ना ! जो जिस को प्यार करता है, वह उसी को चिन्ता करता है । मैं तुम्हारी चिन्ता करती हूं—तुम मेरी चिन्ता करते हो ।

गो० । तो मैं रोहिणी को प्यार करता हूं ।

भ्र० । झूठी बात, तुम मुझ को प्यार करते हो—और किसी को तुम प्यार करना नहीं चाहते—क्यों रोहिणी की चिन्ता करते थे कहो न ?

गो० । विधवा को मछली खाना चाहिये ?

भ्र० । ना ?

गो० । विधवा को मछली न खाना चाहिये, फिर क्यों तारिणी की मा मछली खाती है ?

भ्र० । उसका मुंह जले—जो न करना चाहिये वही करती है

गो० । हमारा भी मुंह जले—जो न करना चाहिये वही करता हूं, रोहिणी को प्यार करता हूं।

हां ! ! ! कर के गोविन्दलाल के गाल में भोमरा ने ठुनुकिया दिया। बहुतही रंज होकर बोली, "मैं श्री मती भोमरा दासी—हमारे सामने भी झूठी बातें ?"

गोविन्दलाल ने हार मानी, भ्रमर के कन्धों पर हाथ रख कर, फूले हुए नील कमलदल ऐसे मधुरिमामय उस के मुखमंडल को, अपने कर पल्लवों में लेकर, मृदु मृदु और गंभीर कातर कंठ से गोविन्दलाल ने कहा, "झूठी बात ही है भोमरा। मैं रोहिणी को प्यार नहीं करता। रोहिणी मुझ को प्यार करती है।"

तीव्र वेग से गोविन्दलाल के हाथों से मुख को छुड़ा कर भोमरा दूर जा कर खड़ी हुई। हांफते हांफते कहने लगी—

"—अभागी—मुंहजली—बांदरी, मर जाय ! मर जाय ! मर जाय ! मर जाय ! मर जाय !!!"

गोविन्दलाल हंस कर बोले, "अभी ही इतनी गाली क्यों? तुम्हारे लाल राजा के धन एक मानिक को उस ने अब भी तो नहीं काढ़ लिया।"

भोमरा कुछ खिसियाई सी होकर बोली, "दुर ! ऐसा क्या वह कैसे काढ़ ले सकती है—उस अभागी ने तुम्हारे सामने कैसे कहा !

गो० । सच है भोमरा—कहना उस को उचित न था इसी से सोचता था। मैंने उस को गांव छोड़कर कलकत्ते में जाकर बसने के लिये कहा था—खर्च तक देना स्वीकार कर लिया था

भो० । फिर ?

गो० । फिर यही कि वह राज़ी नहीं हुई ।

भो० । अच्छा, मैं उस को एक सलाह दे सकती हूं ?

गो० । दे सकती हो, किन्तु सलाह को मैं सुनूंगा ।

भो० । सुनो ।

यह कह कर भोमरा ने "क्षीरी ! क्षीरी !" कर के एक टहलुनी को पुकारा ।

तब क्षीरोदा—अथवा क्षीराब्धितनया—किम्वा क्षीरोदमणि—या केवल क्षीरी आकर खड़ी हुई—मोटी मोटी हृष्ट पुष्ट—पैरों में कड़ा, कटि में सोने की करधनी—मुख हंसी से भरा । भोमरा बोली—

"क्षीरी,—रोहिणी मूर्झौसी के पास अभी एक बार जा सकती हो ?"

क्षीरी बोली, "क्यों नहीं जा सकती हूं ? क्या कहना होगा ?"

भोमरा बोली, "हमारा नाम ले कर कह आ, कि उन्हों ने कहा है, कि तू मर जा ।"

"यही ? चली ।" यह कह कर क्षीरोदा किम्वा क्षीरी कड़ा बजाती चली । जाने के समय भोमरा ने कह दिया, कि "वह क्या कहती है मुझ से कह आना ।"

"अच्छा" कह कर क्षीरोदा चली गई । थोड़ी देर में ही फिर आकर बोली, "कह आई ।"

भो० । उस ने क्या कहा ?

चौ०। उसने कहा कि, कहना उपाय बतला दूं!

भो०। तो फिर जा। कह आ—कि वारुणी पोखरी में—संध्या समय कलसी गले बांध कर—समझा?

चौ०। अच्छा।

चौरी फिर गई। फिर आई, भोमरा ने पूछा, "वारुणी पोखरी की कथा कह आई?"

चौ०। कह आई।

भो०। उस ने क्या कहा?

चौ०। कहा कि "अच्छा।"

गोविन्दलाल ने कहा, "छिः भोमरा!"

भोमरा बोली, "चिन्ता न करो। वह न मरेगी। जो तुम को देख कर मंज चुकी है—वह क्या मर सकती है?"

—:::※:::—

# पञ्चदश परिच्छेद।

दिन के सब कामों को पूरा कर के, सब दिन के नियमानुसार गोविन्दलाल संध्या समय वारुणी के तीरवर्ती पुष्पोद्यान में जाकर विचरण करने लगे। गोविन्दलाल का पुष्पोद्यान में भ्रमण करना एक प्रधान सुख था। सब पेड़ों के नीचे दो चार बार घूमते। किन्तु हम लोग सब पेड़ों की कथा इस घड़ी न कहेंगे। वारुणी के कूल पर, उद्यान के बीच में, एक ऊंची पत्थर की वेदी

थी। इस वेदिका के बीच में एक श्वेत पत्थर की खोदी हुई स्त्री की प्रतिमूर्त्ति थी—स्त्री मूर्त्ति अर्द्धावृता, विनतलोचना, एक घड़े से अपने दोनों पैरों पर मानों जल ढालती है-उस के चारों ओर वेदिका के ऊपर चमकीले रंगों से रंजित मट्टी के आधारों में छुद्र २ सपुष्पवृक्ष—जिरानियम, वर्बिना, यूफर्बिया, चन्द्रमल्लिका, गुलाब—नीचे उसी वेदिका को घेर कर कामिनी, यूथिका, मल्लिका, गंधराज इत्यादि सुगंध वाले देशी फूलों के वृक्षों की कतार, गंध से गगन को आमोदित करती,—उसी के बाद बहुत प्रकार के उज्ज्वल, नीले, पीले, रक्त, श्वेत नाना वर्ण के देशी विलायती नयनरञ्जनकारी पत्तों वाले वृक्षोंकी श्रेणी। उसी ठौर गोविन्दलाल बहुत चाह के साथ बैठते थे। उंजेली रात में कभी कभी भ्रमर को उद्यान भ्रमण के लिये लाकर वहीं बैठालते। भ्रमर पत्थल की उस अर्द्धावृता स्त्री मूर्त्ति को देख कर कलमुंही कह कर गाली देती। कभी कभी अपने अंचल से उस के अंगों को छिपा देती। कभी कभी घर से अच्छे अच्छे कपड़ों को लाकर उसको पहना जाती। कभी कभी उस के हाथ वाले घड़े को लेकर खींचा खींची आरंभ करती।

उसी ठौर आज गोविन्दलाल संध्या समय बैठ कर दर्पण जैसे स्वच्छ वारुणी के जल की शोभा देखने लगे। देखते देखते देखा, उसी पोखरी की सुपरिसर! पत्थल की सीढ़ियों पर रोहिणी कलसी लिये अवरोहण कर रही है। सब न रहने से चलता है—पर जल बिना नहीं चलता। इस दुख के दिन में भी रोहिणी जल लेने आई। रोहिणी की जल में उतर कर—गात्रमार्ज्जना करने की संभावना—आंख के सामने उस का रहना अकर्त्तव्य समझ कर गोविन्दलाल उस स्थान से हट गये।

बहुत देर तक गोविन्दलाल ने इधर उधर सैर किया। पीछे सोचा, अब रोहिणी चली गई होगी। निदान फिर उसी वेदिका तल पर जल ढालने में लगी हुई पाषाण सुन्दरी के पैरों के निकट आकर बैठे। फिर उसी वारुणी की शोभा अवलोकन करने लगे। देखा, रोहिणी या कोई दूसरी स्त्री या पुरुष कोई कहीं नहीं है। कोई कहीं नहीं है—किन्तु उस जल के ऊपर एक कलसी उतरा रही है।

किस की कलसी? अचानक यह सन्देह उपस्थित हुआ—कोई पानी लेने आकर डूब तो नहीं गया है? रोहिणी ही अब तक जल लेने आई थी—तब अकस्मात् पहले पहर की बातें याद आयीं कि भ्रमर ने रोहिणी से कहला भेजा था कि वारुणी पोखरी में—संध्या समय—कलसी गले में बांध कर। याद आयी कि रोहिणी ने जवाब में कहलाया था, "अच्छा।"

गोविन्दलाल तुरंत पोखरी के घाट पर आये, सब से नीचे की सीढ़ी पर खड़े होकर सब ओर देखने लगे। जल कांच तुल्य स्वच्छ। घाट के नीचे जल के नीचे की पृथ्वी तक दिखलाई देती है। देखा, स्वच्छ स्फटिकमंडित हेमप्रतिमा की भांति रोहिणी जलतल में सोई हुई है। अंधकार जलतल को उंजाला किया है!

# षोड़श परिच्छेद।

गोविन्दलाल ने उसी क्षण जल में उतर और डूबकर रोहिणी को उठाया, सीढ़ी पर लाकर सुला दिया। देखा रोहिणी जीती है या नहीं सन्देह है! वह संज्ञाहीन थी, सांस तक नहीं चलती थी।

उद्यान से गोविन्दलाल ने एक माली को पुकारा। माली की सहायता से रोहिणी को उठा कर उद्यान के प्रमोदगृह में शुश्रूषा के लिये लेगये। जीते ही, मरे ही, रोहिणी ने अंत को गोविन्दलाल के घर में प्रवेश किया। भ्रमर छोड़ कर और किसी दूसरी स्त्री ने आज तक इस उद्यान गृह में प्रवेश नहीं किया था।

तेज वायु और वर्षा से धुले हुए चम्पक की भांति, वह मृत नारी देह पलंग पर पड़ा हुआ प्रज्वलित दीये के आलोक में शोभा पाने लगा। विशाल दीर्घ विलम्बित घोर कृष्णकेशराशि जल से भीगी—उस से जल गिरता है—मानो मेघ जल वृष्टि करता है। आंखें बंद थीं, किन्तु उन्हीं बन्द आंखों के ऊपर दोनों भंवें जल में भींगकर और अधिक काली होकर अपूर्व शोभा से शोभित हुई थीं। और वह ललाट—स्थिर, विस्तारित, लज्जा भयविहीन, किसी अव्यक्त भाव से विशिष्ट—गण्डस्थल अभी भी उज्ज्वल—अधर अभी भी मधुमय—बन्धूक पुष्प का लज्जास्थल। गोविन्दलाल की आंखों में जल भर आया, बोले, "हाय! हाय!! विधाता ने क्यों तुम को इतनी रूपवती बना कर भेजा था? बना कर भेजा

था तो सुखी क्यों नहीं किया ? यदि सुखी नहीं किया तो तू आई क्यों ?" इस सुन्दरी के आत्मघात के मूल जो वही हैं—यह बात स्मरण होने पर उन का कलेजा फटने लगा।

जो रोहिणी का जीवन शेष हो, रोहिणी को बचाना होगा। डूबे हुए को किस प्रकार से बचाया जासकता है, गोविन्दलाल यह जानते। पेट का जल सहज ही बाहर किया जा सकता है, दो चार बार रोहिणी को उठा बैठा कर, करवट सुलाकर, फिराकर, जल को मुख के रास्ते बाहर कराया। किन्तु इस से सांसें नहीं चलीं। यही कठिन काम।

गोविन्दलाल जानते थे, कि जो मरता हो उस की दोनों बांहें पकड़ कर ऊपर उठाने से, भीतर का वायु कोषस्फीत होता है। उसी समय रोगी के मुख में फूत्कार देना होता है। पीछे उठाई गई दोनों बांहों को धीरे धीरे नीचे करना होता है। नीचे करने से वायुकोष संकुचित होता है, तब वह मुंह से फूंक कर भीतर पैठाई गई वायु निकल कर बाहर आती है। इस से बनावटी सांसें चलने लगती हैं। इसी प्रकार बार बार करने से वायुकोष का काम फिर प्रारंभ होने लगता है। बनावटी सांसें चलाते २ अन्त को असली सांसें आप ही चलने लगती हैं। रोहिणी के लिये यही करना होगा। दोनों हाथों से दोनों बांहों को ऊपर उठा कर उस के मुख के भीतर फूंकना होगा। उस के उसी पके हुए बिम्बाफल को निन्दा करनेवाले, अब भी सुधा से भरे हुए, मदनमद को भी उन्मादित करने वाले इलाहल कलसीसमान, लाल लाल मधुर

अधरों पर अधर रख कर फूत्कार देना होगा। क्या सर्वनाश! कौन देगा?

गोविन्दलाल का सहायक केवल एक उड़िया माली था। वाटिका के दूसरे नौकर सब पहले ही घर चले गये थे। उन्हों ने माली से कहा। मैं इस के हाथ दोनों पकड़ कर ऊपर उठाता हूं। तू इस के मुंह में फूंक मारे, देखें तो।

मुख में फूंकना, क्या सर्वनाश! इस लाल २ अमृत से भरे हुए होठों पर—माली के मुख की फूंक! ऐसा तो नहीं हो सकता सरकार!

माली को स्वामी जो शालिग्राम शिला चबाने को कहता, माली स्वामी की खातिर के लिये करने पर कर सकता, किन्तु इस चांद ऐसे मुखड़े के लाल होठों पर—उस कटकी मुख की फूंक! माली पसीने से तर हो गया। स्पष्ट बोला,

'मालिक! मुझ से ऐसा नहीं हो सकता।'

माली ने ठीक कहा था। माली जो उस देव दुर्लभ होठों पर एक बार मुख रख कर फूंक मारता, पीछे रोहिणी अगर बच कर, फिर उन होठों को बिचकाकर कलसी में जल लिये, माली की ओर अवलोकन करती, घर जाती—तो फिर उस को फुलवाटिका का काम न करना होता। वह खांचो, खुरपा, जाली, कैंची, कुदाली, वारुणी के जल में फेंक कर, एक सांस से दौड़ कर भद्रक की ओर भागता,—और बोध होता है कि सुवर्णरेखा के नील जल में जाकर डूब मरता। माली ने इतना सोचा था कि नहीं, नहीं कहा जा सकता, पर वह फूंक देने में राजी नहीं हुआ।

निदान गोविन्दलाल ने उस से कहा, "तब तू ही इसी प्रकार इस के दोनों हाथ धीरे धीरे उठाया कर—हम फूंक देते हैं। पीछे धीरे धीरे हाथ नीचा करना।" माली ने इस को माना। उस ने दोनों हाथ पकड़ कर धीरे धीरे उठाया—गोविन्दलाल ने तब उस फूले हुए लाल फूल की कान्तिवाले दोनों होठों पर अपने प्रफुल्लरक्त कुसुमकान्ति दोनों होठों को रख कर, रोहिणी के मुख में फूंका।

उसी समय भ्रमर, एक लाठी लेकर, एक बिल्ली मारने आती थी। बिल्ली मारने में, लाठी बिल्ली को न लगकर, भ्रमर के ही कपाल में लगी।

माली ने रोहिणी की दोनों बांहों को नीचा किया, फिर उठाया। गोविन्दलाल ने फिर फूंक मारा। फिर उसी प्रकार हुआ। फिर उसी प्रकार बार बार करने लगे। दो तीन घंटा इसी प्रकार किया। रोहिणी की सांसें चलने लगीं। रोहिणी जीती बची।

---

# सप्तदश परिच्छेद।

रोहिणी का निश्वास प्रश्वास चलने लगने पर, गोविन्दलाल ने उस को औषध पान कराया। औषध बलकारक—धीरे धीरे, रोहिणी में बल का संचार होने लगा—रोहिणी ने आंख खोलकर देखा—सुसज्जित रम्यभवन में मन्द-मन्द शीतल पवन झरोखे से घुसकर परिभ्रमण कर रहा है—एक ओर स्फटिकाधार पर स्निग्ध

प्रदीप जल रहा है—और एक ओर हृदयाधार का जीवन प्रदीप प्रज्वलित हो रहा है। इधर रोहिणी, गोविन्दलाल के हाथ की दी हुई मृतसंजीवनी सुरा पानकर के, मृतसंजीविता होने लगी—और उधर उन की मृत संजीविनी कथा कानों द्वारा पान कर के मृतसंजीविता होने लगी। पहले निश्वास, फिर चैतन्य, फिर दृष्टि, फिर स्मृति, अन्त में वाक्य स्फुरित होने लगा। रोहिणी बोली,

"मैं मरी थी, मुझ को किस ने बचाया ?

गोविन्दलाल बोले, "कोई बचावे, तुम ने जो रक्षा पायी यही यथेष्ट हुआ।"

रोहिणी बोली, "मुझ को क्यों बचाया ? आप के साथ मेरी ऐसी कौन शत्रुता है कि मरने में भी आप मेरे प्रतिवादी हुए ?"

गो०। तुम मरोगी क्यों ?

रो०। क्या मरने का भी मुझ को अधिकार नहीं है ?

गो०। पाप में किसी का अधिकार नहीं है, आत्म-हत्या पाप है।

रो०। मैं पाप पुण्य नहीं जानती—मुझ को किसी ने सिखलाया नहीं। मैं पाप पुण्य नहीं मानती—किस पाप से हमारी यह ताड़ना ? पाप न करने पर भी जो यह दुख, तो पाप करने से ही इस से अधिक क्या होगा ? मैं मरूंगी। इस बार न सही, तुम्हारी आंखों के सामने मैं पड़ी थी, इस से तुम ने रक्षा की। दूसरी बार, जिस से तुम न देखने पाओ ऐसा उपाय करूंगी

गोविन्दलाल बड़े कातर हुए। बोले "तुम क्यों मरोगी?"

"बहुत दिन तक, घड़ी, घड़ी, पल, पल, रात दिन मरने से एक बार मरना अच्छा है।"

गो०। किस बात के लिये इतनी यंत्रणा?

रो०। रात दिन दारुण तृषा, कलेजा फूंक रही है—सामने ही शीतल जल है, किन्तु इस जन्म में वह जल छू न सकूंगी। आशा भी नहीं है।

गोविन्दलाल तब बोले, कि "अब इस घड़ी इन सब बातों का काम नहीं है—चलो तुम को घर पहुंचा आवें।"

रोहिणी बोली, "नहीं मैं अकेली जाऊंगी।"

गोविन्दलाल ने समझा, हरज क्या। गोविन्दलाल फिर कुछ न बोले। रोहिणी अकेली चली गई।

तब गोविन्दलाल, उस सुनसान कमरे में अचानक भूपतित हो कर धूल में भरे हुए रोदन करने लगे। माटी में मुख छिपा कर, एकतार आंखों से आंसू बहाते हुए पुकारने लगे, "हा नाथ! नाथ!! तुम मुझ को इस विपद से रक्षा करो! बिना तुम्हारे बल दिये, किस के बल से मैं इस विपद से उद्धार पा सकता हूं?—मैं मरूंगा—भ्रमर मरेगी। तुम मेरे इस कातरचित्त में विराजा करना—मैं तुम्हारे बल से आत्म जय करूंगा।"

———०———

# अष्टादश परिच्छेद ।

—o—
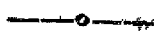
गोविन्दलाल के घर फिर आने पर, भ्रमर ने पूछा,

"आज इतनी रात तक उद्यान में क्यों रहे ?"

गो०। क्यों पूछती हो—क्या और कभी नहीं रहा ?

भ्र०। रहे हो—पर आज तुम्हारा मुख देख कर—तुम्हारी बातों की आवाज़ से—बोध होता है, कि आज कुछ हुआ है।

गो०। क्या हुआ है ?

भ्र०। क्या हुआ है—जो यह तुम न बतलाओगे तो मैं कैसे कहूंगी ? मैं क्या वहां थी ?

गो०। क्यों उस को मुख देख कर नहीं बतला सकती हो ?

भ्र०। तमाशा रहने दो। मुख देख कर मैं कह सकती हूं कि, कोई अच्छी बात नहीं है। कहो—मेरा प्राण बड़ा कातर हो रहा है।

कहते कहते भ्रमर की आंखों से आंसू गिरने लगा, गोविन्दलाल भ्रमर की आंखों के आंसू को पोंछ कर, आदर के साथ बोले, किसी दूसरे दिन कहूंगा भ्रमर ! आज नहीं।

भ्र०। आज क्यों नहीं ?

गो०। तुम अभी बालिका हो, यह बात बालिका के सुनने लायक नहीं है।

भ्र०। कहा क्या मैं बूढ़ी हूंगी ?

गो० । कभी भी न कहूंगा—दो बरसबाद कहूंगा, इस बड़ी अब फिर मत पूछना भ्रमर !

भ्रमर ने लम्बी सांस भर कर कहा । "अच्छा यही सही, दो बरस बाद कहना—मुझ को सुनने की बड़ी साध थी, किन्तु जो तुम ने नहीं कहा—तो मैं कैसे सुनूंगी ? हमारा मन बहुत न जानें कैसा करता है ।"

न जानें क्यों एक बड़ा भारी दुख भोमरा के मन के भीतर अन्धकार करता हुआ बढ़ने लगा । जैसे वसन्त का आकाश बड़ा सुन्दर—बहुत ही नील—बहुत ही उज्ज्वल कहीं कुछ नहीं—अकस्मात् एक मेघ उठ कर चारों ओर अन्धकार कर देता है । भोमरा को बोध हुआ—मानों उस के हृदय के भीतर इसी प्रकार के एक मेघ ने उठ कर सहसा चारों ओर अन्धकार कर दिया । भ्रमर की आंखों में पानी आने लगा । भ्रमर ने सोचा मैं बिना कारनही रोती हूं—मैं बड़ी दुष्टा हो गई हूं—मेरे स्वामी बुरा मानेंगे । अतएव भ्रमर रोते रोते बाहर होगई, एक कोने में बैठ कर पैर फैला कर अन्नदामंगल पढ़ने लगी । क्या सिर कपार पढ़ा, यह मैं नहीं कह सकता । किन्तु हृदय के भीतर से वह काले रंगवाला मेघ कुछ भी दूर न हुआ ।

---

## ऊनविंश परिच्छेद ।

---

गोविन्दलाल बाबू जेठे चचा के साथ विषय ( सम्पत्ति ) सम्बन्धी काठ [illegible] में प्रवृत्त हुए । [illegible]

ज़मींदारी की कैसी अवस्था है यह सब पूछने पाछने लगे। कृष्णकान्त ने गोविन्दलाल का विषयानुराग देखकर सन्तुष्ट होकर कहा।—"तुम लोग जो कभी कभी कुछ कुछ देखा सुना करो, तो बहुत ही अच्छा हो। देखो, अब मैं कितने दिन हूं! तुम लोग के अभी से सब देख सुन न रखने से, मेरे मरने पर, कुछ समझ न सकोगे। देखो मैं बूढ़ा हुआ, अब कहीं जा नहीं सकता, किन्तु बिना शासन के सब ग्राम बिगड़ चले हैं।"

गोविन्दलाल बोले, "आप भेजें तो मैं जा सकता हूं। मेरी भी इच्छा है कि सब महालों को एक एक बार देख आऊं।"

कृष्णकान्त प्रसन्न हुए। कहा, "इस में मेरी बड़ी प्रसन्नता है। इस घड़ी बन्दर खाली में कुछ गड़बड़ है। नायब ने लिखा है कि सब प्रजा ने एका किया है, लगान नहीं देती। सब प्रजा कहती है, हम लोग लगान देते हैं। नायब वसूल नहीं लिखता। जो तुम्हारी इच्छा हो, तो कहो, हम तुम को वहां भेजने का उद्योग करें।"

गोविन्दलाल सम्मत हुए, वह इसी लिये कृष्णकान्त के पास आये थे। उन का यह पूर्ण यौवन, मनोवृत्ति सकल उद्वेलित सागरतरंग तुल्य प्रबल, रूपतृष्णा अत्यन्त तीव्र, भ्रमर से वह तृष्णा निवारित नहीं होती थी। निदाघ समय की नीलमेघमाला की भांति रोहिणी का रूप, इस चातक के लोचन पथ में समुदित हुआ—प्रथम वर्षा के मेघदर्शन से चञ्चल मयूरी की भांति गोविन्दलाल का मन—रोहिणी का रूप देख कर नाच उठा गोविन्दलाल ने यह समझ कर अपना मन अपने वश करने के लिए

किया, मरना होगा मरेंगे, किन्तु तथापि भ्रमर के निकट अवि-श्वासी या कृतघ्न न बनेंगे। उन्हों ने मनही मन ठीक किया, विषय सम्बन्धी कामों में मन लगा कर रोहिणी को भूलूंगा—यहाँ से दूसरी ठौर चले जाकर—निश्चय उस को भूल सकेंगे। इसी प्रकार मनही मन विचार कर के वह चचा के पास आकर विषयालोचना करने बैठे थे। बन्दर खाली की बात सुन कर—आग्रह के साथ वहां जाने के लिये सम्मत हुए।

भ्रमर ने सुना, मंझले बाबू देहात जायेंगे। भ्रमर ने कहा, मैं भी जाऊंगी। रोना धोना, धौं पटक सब कुछ मच गया। किन्तु भ्रमर की सास ने किसी प्रकार ही जाने नहीं दिया। नाव सजकर नौकर चाकरों से घिरे हुए गोविन्दलाल ने भ्रमर का मुखचुंबन कर के दश दिन के पथ बन्दरखाली की ओर यात्रा की।

भ्रमर पहले पृथ्वी में पड़ कर रोई। पीछे उठ कर अन्नदामंगल को फाड़ फेंका, पिंजरे के पखेरुओं को उड़ा दिया, तमाम खेलौनों को पानी में फेंक दिया, गमले के तमाम फूल के पेड़ों को काट डाला, खाने का अन्न रसोई करनेवाली के देह पर छींट दिया, दासियों का जूड़ा पकड़ कर घुमाकर दूर फेंका—ननद के साथ झगड़ा किया, इसी प्रकार अनेक उपद्रव कर के सोई। सोकर चादर में सिर रख कर फिर रोना प्रारम्भ किया। इधर अनुकूल पवन से चालित होकर, गोविन्दलाल की तरणी तरङ्गिणी तरङ्ग भिन्नकर के चल निकली।

# विंशतितम परिच्छेद ।

कुछ अच्छा नहीं लगता - भ्रमर अकेली है। भ्रमर ने सेज उठा कर फेंकी—वह बहुत ही नरम - चारपाई के पंखे को खोल कर फेंका—हवा बहुत ही गरम; दासियों को फूल लाने से मना किया—फूलों में बहुतही कीड़े। तास खेलना बन्द किया— सखियों के पूछने पर कहती—ताश खेलने से सास बुरा मानती हैं। सुई, सूत, ऊन, रेशम—सब एक एक कर के पड़ोस की लड़कियों में बांट दिया—पूछने पर बोली—वे आंखों को बहुत जलाते हैं। कपड़ा क्यों मैला है, किसी के पूछने पर धोबी को गाली देती, पर धोये कपड़ों से घर भरा। सिर के बालों के साथ कंघी का संबन्ध रहित हो आया था, वन के तिनकोंकी भांति बाल हवा में हिलते, पूछने पर—भ्रमर हंस कर—बालों को हाथ से समेट कर जूरे में लपेट देती—केवल इतनाही। खाने पीने के समय भ्रमर ने नित्य बहाना करना आरंभ किया—मैं न खाऊंगी—मुझ को ज्वर चढ़ा है। सास ने वैद्य को दिखला कर—पाचन और गोली की व्यवस्था करा कर—क्षीरोदा के ऊपर भार दिया—कि बहू को औषधी को खिलाना। बहू ने क्षीरी के हाथ से चूरन और गोली लेकर, जंगला खोल कर, बाहर फेंक दिया।

धीरे धीरे इतनी बड़ा बड़ो क्षीरी चाकरानी की आंखों से नहीं सही जा सकी। क्षीरी बोली, "भला, बहू, किस के लिये तुम ऐसा करती हो? जिस के लिये तुम ने खाना सोना छोड़ा, वह क्या

तुम्हारी बातें एक दिन के लिये भी सोचते हैं? तुम रो धो कर मर रही हो, और वह कदाचित् हुक्के का नल मुख से लगा कर आंख बंद कर के रोहिणी देवी का ध्यान करते होंगे।"

भ्रमर ने क्षीरो को यत्न से एक थप्पड़ जमाया, भ्रमर का हाथ विलक्षण चलता। प्रायः रोती रोती बोली, "तू जो मन में आवेगा वही कहेगी तो हमारे पास से उठ जा।"

क्षीरो बोली, "सो चपत और थप्पड़ मारने से ही क्या लोगों का मुंह बंद रहेगा? तुम बुरा मानोगी, यह समझ कर, हम सब डर से कुछ न कहेंगी। पर बिना कहे भी जी नहीं बचता। चांडालिनी पांची को बुला कर पूछ देखो, कि उस दिन बहुत रात गये रोहिणी, बाबू के बगीचे से आती थी कि नहीं?"

क्षीरोदा का भाग खोटा था, तभी, ऐसी बात सबेरेही उस ने भ्रमर से कही। भ्रमर ने उठ कर खड़ी हो कर क्षीरोदा को धौल के ऊपर धौल जमाया, घूंसे पर घूंसा लगाया, उस को ढकेल कर निकाल दिया, उस का बाल पकड़कर नोचा। अंत में आप रोने लगी।

क्षीरोदा बीच बीच में भ्रमर के हाथों, चपत धौल खाती, कभी बुरा न मानती, पर आज कुछ बढ़ा चढ़ी हुई, आज कुछ बुरा माना। बोली, "तो ठकुराइन, हम सभों के मारने धरने से क्या होगा? तुम्हारेही लिये हम सब कहती हैं। तुम्हारी बातों को उठा कर लोग ई ई करते हैं, हम सब उस को नहीं सह सकतीं। जो हमारी बातों का विश्वास न हो, तुम पांची को बुला कर पूछ देखो।"

भ्रमर क्रोध से दुख से रोते रोते कहने लगी, "तुझे पूछना हो तो आकर पूछ—मैं क्या तेरे ऐसी नीच और कमीनी हूं कि अपने स्वामी की बातें चांडालिनी पांची से पूछने जाऊंगी—तू ने हम को इतनी बड़ी बात कही। मालिकिन से कहकर मैं भाडू मारकर तुझ को निकलवा दूंगी। तू हमारे सामने से दूर हो—हटजा।"

यह सवेरे का समय था, भला बुरा खा पीकर, चीरोदा अर्थात् चीरी चाकरानी, क्रोध से गर् गर् करती चली गई। इधर भ्रमर मुख ऊपर उठा कर, आंखों में आंसू भर कर, दोनों हाथ जोड़ कर, मनहीं मन गोविन्दलाल को पुकार कर कहने लगी, "हे गुरो! शिक्षक! धर्मज्ञ! हमारे एकमात्र सत्यस्वरूप! तुम ने क्या उस दिन मुझ से इसी बात को छिपाया था?"

उस के मन के भीतर जहां जहां हृदय का छिपा से छिपा स्थान, जिस को कोई कभी देख नहीं सकता—जहां आत्मप्रतारणा नहीं—भ्रमर ने उस स्थान तक देखा—स्वामी के ऊपर अविश्वास नहीं, अविश्वास हो नहीं सकता। भ्रमर ने केवल एक बार मन में विचारा, उन के अविश्वासी होने से ही इतना दुख क्यों? मेरे मरने से ही सब मिट जायगा। हिन्दू की स्त्रियां, मरने को बहुत ही सहज समझती हैं।

## एकविंशतितम परिच्छेद।

---

अब चीरी चाकरानी ने सोचा, यह घोर कलिकाल है—एक रत्ती भर की लड़की मेरी बातों का विश्वास नहीं करती। चीरोदा

के सरल अन्तःकरण में भ्रमर के ऊपर राग द्वेषादिक कुछ नहीं है, वह भ्रमर का मंगल चाहने वाली है, उस का अमंगल नहीं चाहती। पर भ्रमर ने जो उस की ठगी की बातों पर कान नहीं दिया, वह उस से न सहा गया। क्षीरोदा तब, अपने चिकने चुपड़े बदन में थोड़ा सा तेल लगाकर, रंगदार अंगोछे को कंधे पर रखकर, बग़ल में कलसी लिये, वारुणी के घाट पर नहाने चली।

हरमणि ठकुराइन बाबू के घर की एक रसोई बनाने वाली थी; वह उसी समय वारुणी घाट से नहा कर आती थी, पहले उस के साथ भेंट हुई। हरमणि को देख कर क्षीरोदा अपने आप कहने लगी, "सच है—जिस के लिये चोरी करे वही कहे चोर—अब बड़े लोगों का काम करना नहीं सपर सकता, कब किस का मिज़ाज कैसा रहता है, इस का ठिकाना ही नहीं।"

हरमणि ने कुछ झगड़े का गंध पाकर—दहने हाथ के भींगे कपड़े को बायें हाथ पर रखकर पूछा, "कहो, क्षीरोदा!—अब क्या हुआ है?"

क्षीरोदा ने तब मन के बोझ को उतारा। बोली, "देखो, देखती हूं कि पड़ोस की मूंझौंसी सब बाबू के बगीचे में घूमने आती हैं—तो क्या हम सब नौकर चाकर—तो क्या हम सब मालिक से यह नहीं कह सकतीं?"

हर०। कहो, वह क्या? पड़ोस की कौन लड़की बाबू के बगीचे में घूमने गई?

क्षी०। और कौन जाय, वही कलमुंही रोहिणी।

हर०। कैसे बुरे भाग! रोहिणी की फिर यह दशा! कितने

दिन ? किस बाबू के बगीचे मे, रे क्षीरोदा ?

क्षीरोदा ने मंझले बाबू का नाम लिया। तब दोनों ने आपस में कुछ मुंहामुंही कर के रसभरी हंसी हंस कर, जिस को जिस ओर जाना था, वह उसी ओर गयी। कुछ दूर जाकर ही क्षीरोदा के साथ पड़ोस के राम की मा के साथ देखा देखी हुई।

क्षीरोदा ने उस को भी हंसी के फंदे में फंसाकर खड़ी करा कर रोहिणी की दुष्टता की बातों का परिचय दिया। फिर ये दोनों भी हंसी मठ्ठकी की फेरा फेरी कर के अभीष्ट पथ को गईं।

इसी प्रकार क्षीरोदा ने, रास्ते में राम की मा, श्याम की मा, हारी, तारी, पारी, जिस को देखा, उसी से अपने मर्म्मपीड़ा का परिचय दिया। अंत में सुस्थ शरीर और प्रफुल्ल हृदय से वारुणी के स्फटिक ऐसे जलराशि मे स्नान किया। इधर हरमणि, राम की मा, श्याम की मा, हारी, तारी, पारी, ने जिस को जहां देखा, उस को वहीं खड़ी कर के सुनाया, कि हतभागिनी रोहिणी मंझले बाबू के बगीचे में घूमने गई थी। एक पर शून्य दश हुआ, दश पर शून्य सौ हुआ, सौ पर शून्य हज़ार हुआ। जिस सूर्य्य की किरनों के तेजस्वी न होते होते, क्षीरी ने पहले भ्रमर के सामने रोहिणी की बात उठायी थी, उसी सूर्य्य के अस्त होने के पहले ही घर घर फैल गया कि, रोहिणी गोविन्दलाल की अनुगृहीता है। केवल बात की कथा से अपार प्रेम की कथा, अपार प्रेम की कथा से बहुत से गहनों की कथा, और कितनी कथायें उठीं, उस को मैं—हे एटना कौशलमयी, कलंककलितकंठा, कुलकामिनीगण! उस को मैं अधम सत्यशासितपुरुषलेखक, आप लोगों से विस्तार के साथ कह कर बढ़ावकी नहीं करना चाहता।

धीरे धीरे भ्रमर के पास सम्वाद आने लगा। पहले विनोदिनी आकर बोली, "बहू! क्या सच है?" भ्रमर ने कुछ सूखे मुख और टूटे हृदय से कहा, "रौताइन कौन सी बात सच?" रौताइन ने तब फूल के धनुष ऐसी दोनों भौंहों को कुछ सिकोड़ कर, आंखों के कोनों से कुछ चंचलता दिखला कर, लड़के को गोद में खींच कर बैठाल कर, कहा, "कहती हूं रोहिणी कीबातें!"

भ्रमर ने विनोदिनी से कुछ न कह कर, उस के लड़के को उठाकर गोद में लिया। और बालिका सुलभ किसी कौशल से उस को रुलाया। विनोदिनी बालक को दूध पिलाते पिलाते अपने घर वापस चली गई।

विनोदिनी के पीछे सुरधुनी आ कर बोली, "कहती हूं मंझलीबहू, कहो, मैंने कहा था न, कि मंझले बाबू को अपने बस में करो। तुम हज़ार हो, गोरी नहीं हो, मरद लोगों का मन तो केवल बातों से नहीं पाया जाता, कुछ रूपगुण चहिये। सो माई, रोहिणी की कैसी अकिल है, कौन जाने?"

भ्रमर बोली, "रोहिणी की और अकिल कैसी?"

सुरधुनी हाथों से सिर ठोक कर बोली, "ऐसे भाग में आग लगे! इतने लोगों ने सुना—केवल तू ने ही नहीं सुना? मंझले बाबू ने रोहिणी को सात हज़ार रुपये का गहना दिया है।"

भ्रमर की हड्डी हड्डी सुलगने लगी, मनही मन सुरधुनी को यम देवता के हाथों सौंपा, प्रगट में एक खिलौने के सिर को मूसल से फोड़ कर सुरधुनी से बोली, "सो मैं जानती हूं। खाता देखा है, तुम्हारे नाम चौदह हज़ार रुपये का गहना लिखा है।"

बिनोदिनी, सुरधुनी के बाद, रामी, बामी, श्यामी, कामिनी, रमणी, शारदा, प्रमदा, सुखदा, बरदा, कमला, बिमला, शीतला, निर्म्मला, साधू, निधु, बिधु, तारिणी, निस्तारिणी, दीनतारिणी, भवतारिणी, सुरबाला, गिरिबाला, शैलबाला, व्रजबाला, इत्यादिक बहुत सी आकर, एक एक, दो दो, तीन तीन, ने दुःखिनी बिरह-कातरा बालिका को जताया, कि तुम्हारा स्वामी रोहिणी के प्रेम में फंसा है। कोई युवती, कोई प्रौढ़ा, कोई वृद्धा, कोई बालिका, सभी आकर भ्रमर से बोलीं, "अचरज कौन है, मंझले बाबू का रूप देख कर कौन नहीं भूलती? रोहिणी का रूप देख कर वही क्यों न भूलेंगे?" कोई आदर करके, कोई चिढ़ाकर, कोई हंसी में, कोई क्रोध से, कोई सुख से कोई दुख से, कोई हंसकर, कोई रोकर, भ्रमर से बोली, कि भ्रमर, तुम्हारा भाग फूट गया।

गांव में भ्रमर सुखी थी, उस का सुख देख कर डाह से सभी जलतीं, काली कलौटी का इतना सुख—इतना ऐश्वर्य—देवोदुर्लभ स्वामी—लोक में कलंकशून्ययश—अपराजिता का कमल ऐसा आदर! इस पर मल्लिका समान सौरभ? गांव के लोगों से इतना सहा नहीं जाता। इसी से बारीबारी, साथ साथ, कोई लड़का गोद में लेकर, कोई बहिन को साथ लिये, कोई चोटी गूंथ कर, कोई चोटी गूंथते गूंथते, कोई बाल खोले सम्वाद देने आई, "भ्रमर तुम्हारा सुख जाता रहा!" किसी ने न सोचा कि भ्रमर पतिबिरह-बिधुरा, नितान्त दोषशून्या, दुःखिनी बालिका है।

भ्रमर से और न सहा गया, दरवाज़ा बन्द करके, मकान में सो कर, धूल में लोट कर रोने लगी। मन ही मन बोली, "हे

सन्देहभंजन ! हे प्राणाधिक ! तुम्हीं हमारे सन्देह ! तुम्हीं हमारे विश्वास ! आज किस से पूछूंगी ? मुझ को क्या सन्देह हो सकता है ? पर सभी कहता है। सच न होता तो सब क्यों कहते ? तुम यहां नहीं हो, आज हमारे सन्देह को कौन दूर करेगा ? हमारा सन्देह दूर नहीं हुआ—तो मर क्यों नहीं जाती ? इस सन्देह में पड़ कर क्या मैं बच सकती हूं ? क्यों न मरूं ? फिर आकर प्राणेश्वर ! मुझ को गाली मत देना, कि भोमरा ने मुझ से कहा नहीं और मरगई।"

—:(•◡•):—

## द्वाविंशतितम परिच्छेद।

इस घड़ी भ्रमर को जो जलन थी, वही रोहिणी को भी थी। बात जो फैली, तो रोहिणी के कानों तक वह क्यों न पहुंचेगी ? रोहिणी ने सुना, कि गांव में धूम है कि, गोविन्दलाल उस का गुलाम—सात हज़ार रुपये का गहना उस ने दिया है। बात कहां से उठी, इस को रोहिणी ने नहीं सुना—किस ने इस बात को उठाया—इस की छानबीन नहीं की। एक बारही निश्चय किया, भ्रमर ने हीं, इस बात को उठाया है, नहीं तो इतनी किस के पेट में जलन है ? रोहिणी ने सोचा—भ्रमर ने मुझ को बहुत जलाया। उस दिन चोर का कलंक—आज यह कलंक। इस देश में अब मैं न रहूंगी। पर जाने के पहले, भ्रमर को एक बार हड्डी हड्डी सुलगा [illegible]

रोहिणी न कर सके ऐसा कोई काम ही नहीं, यह इस को पहली जान पहचान में जानागया है। रोहिणी किसी पड़ोसवाली के घर से एक बनारसी साड़ी और दस पांच थान गिलट का गहना मांग लाई। सांझ हुए उन सब को पोटली बांध कर संग मे लेकर राय लोगों के घर में प्रवेश किया। जहां भ्रमर अकेली मृत-शय्या पर पड़ी हुई—एक एक बार रोती है—एक एक बार आंख के आंसू को पोंछ कर कड़ी की ओर देख कर सोचती है। वहीं रोहिणी आकर पोटली रख कर बैठी। भ्रमर अचरज में आई—रोहिणी को देख कर विष की ज्वाला से उस का तमामबदन जल गया। न सह सकने पर भ्रमर बोली,

"तू उस दिन रात को ठाकुर के मकान में चोरी करने आई थी—आज रात को मेरे घर में क्या इसी मतलब से तो नहीं आई है?"

रोहिणी मनहीं मन बोली, तेरा सिरखाने आई हूं, प्रगट में बोली, "अब मुझको चोरी करने की ज़रूरत नहीं रही, अब मैं रुपये की कंगाल नहीं हूं। मंझले बाबू की दया से अब मुझ को खाने पहनने का दुख नहीं है। पर लोग जितना कहते हैं उतना नहीं है।"

भ्रमर बोली, "तू यहां से दूर हो।"

रोहिणी इसबात पर कान न देकर कहने लगी, "लोग जितना कहते हैं उतना नहीं है, लोग कहते हैं कि मैंने सात हज़ार रुपये का गहना पाया है। पर कुछ तीस हज़ार रुपये का गहना और

यही एक साड़ी पायी है । तभी तुम को दिखलाने को लाई हूं ।
लोग सात हजार रुपये का क्यों कहते हैं ? "

यह कहकर रोहिणी ने पोटली खोलकर गिलट के गहनों और बनारसी साड़ी को भ्रमर को दिखलाया । भ्रमर ने लात मारकर तमाम गहनों को चारों ओर छोट दिया ।

रोहिणी बोली, " सोने को पैर न लगाना चाहिये" यह कह कर रोहिणी ने चुपचाप गिलट के गहनों को एक एक कर के बटोरा, और पोटली बांधी । पोटली बांध कर उसी प्रकार चुप चाप वहां से बाहर हो गई ।

हम लोगों को बड़ा दुख रह गया, कि भ्रमर ने क्षीरोदा को पीट दिया था, पर रोहिणी को एक धौल भी नहीं लगाया । यही हमलोगों का आन्तरिक दुख है । हमारी पाठिका लोग होतीं, तो रोहिणी को अपने हाथों से मारतीं, इस विषय में कोई सन्देह नहीं । इस बात को मैं मानता हूं कि स्त्री पर हाथ नहीं उठाना चाहिये, पर राक्षसी या पिशाची पर हाथ न उठाना चाहिये, इस बात को इतना नहीं मानता । पर भ्रमर ने रोहिणी को क्यों नहीं मारा, यह समझा सकता हूं । भ्रमर क्षीरोदा को प्यार करती, इसीलिये उसको मारा पीटा था । रोहिणी को प्यार नहीं करती, इसी से उस पर हाथ नहीं उठा । लड़कों लड़कों के झगड़ने पर माता अपने लड़कों को मारती है दूसरे के लड़के को नहीं मारती ।

---

## त्रयोविंशतितम परिच्छेद ।

---

[illegible]

बैठी । लिखना पढ़ना गोविन्दलाल ने सिखलाया था । पर भ्रमर लिखने पढ़ने में इतनी होशियार न हो सकी । फूल में खिलौनों में चिड़ियों में स्वामी में भ्रमर का मन बसता, लिखने पढ़ने या घर के काम काज में इतना नहीं । कागज़ लेकर लिखने बैठ कर, एक बार पोंछती, एक बार काटती, एकबार कागज़ बदल कर फिर पोंछती फिर काटती । अन्त में फेंक देती । दो तीन दिन में एक चीठी पूरी नहीं होती पर आज वह सब कुछ न हुआ । टेढ़ा बांका कटा पिटा, जो लेखनी से पहले बाहर हुआ, वही आज भ्रमर को मंजूर । "म" सब "स" की तरह हुआ । "स" सब "म" की भांति का हुआ—"ध" सब "घ" की तरह, "घ" सब "ध" की तरह, "प" सब "य" की तरह । ईकार की ठौर आकार—आकार एकबार ही लोप, मिले हुए अक्षरों की ठौर अलग अलग अक्षर, किसी किसी अक्षर का एक कालीन लोप, पर भ्रमर कुछ ध्यान में न लाई । भ्रमर ने आज एक घंटे में एक लम्बा चौड़ा पत्र लिख डाला । कट कुट नहीं था, ऐसा क्या हो सकता था । हम लोग चीठी का कुछ परिचय देते हैं ।

भ्रमर लिखती है—

"सेविका श्री भोमरा" (पीछे भोमरा काटकर भ्रमरा बनाया ) "दास्याः" ( पहले दासमा, उस को काटकर दास्य-फिर उस को काटकर दास्यो— पर दास्याः न लिखा जा सका ) "प्रणामाः" (प्र लिखने में पहले 'स' पीछे 'मू' [illegible])

(पहले निवेदञ्च, पीछे निवेदनञ्च) "विशेष" (विशेषः नहीं हो सका)

पत्र लिखने की रीति यही। पर जो लिखा था, उस के वर्णों को ठीक कर के, भाषा को भी कुछ सुधार कर नीचे लिखते हैं।

"उस दिन रात को बाग में तुम को क्यों देरी हुई थी, यह तुम ने मुझ से खोलकर नहीं कहा। दो बरस पीछे कहने को कहा था, किन्तु मैंने अपने भाग की खोटाई से उस को पहलेही सुना, सुना क्यों आंखों देखा। तुम ने रोहिणी को जिन गहनों कपड़ों को दिया है, उन को वह आप आकर मुझ को दिखलागई।

बोध होता है, तुमसमझते हो कि तुम्हारे ऊपर मेरी भक्ति अटल है—तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास अपार है। मैं भी ऐसा समझती थी। पर अब मैंने समझा कि ऐसा नहीं है। जितने दिन तुम भक्ति के योग्य, उतने दिन मेरी भी भक्ति, जितने दिन तुम विश्वासी, उतने दिन हमारा भी विश्वास। अब तुम्हारे ऊपर न मेरी भक्ति है, न मेरा विश्वास है। तुम्हारे दर्शन से अब मुझ को सुख नहीं है। तुम जब घर आना दया करके मुझ को खबर देना, मैं रो धो कर जैसे बनेगा अपने बाप के घर आऊंगी।"

गोविन्दलाल ने समय पर इस चीठी को पाया। उन के सिर पर बिजली गिरी। केवल लिखावट और वर्णों की शुद्धि देख कर ही उन्हों ने विश्वास किया कि यह भ्रमर के हाथ का लिखा है। पर तौ भी मन में अनेक बार सन्देह किया। भ्रमर उन को ऐसी चीठी लिख सकेगी ऐसा विश्वास उन को कभी नहीं होता।

ने पहले ही भ्रमर की चीठी को खोला था। पढ़ कर स्तम्भित की भांति बहुत काल तक हिले डुले नहीं। पीछे और सब चीठियों को बेदिलों के साथ पढ़ना आरंभ किया। इस में ब्रह्मानन्द घोष की एक चीठी पायी। कविताप्रिय ब्रह्मानन्द लिखते हैं।

"भाई रे! "राजा राजा करत लराई। परत प्रान चिरियन पर आई।" तुम्हारे ऊपर वह सब कुछ दौरात्म्य कर सकती हैं। किन्तु हमलोग दुखी प्राणी हैं, हमलोगों के ऊपर यह दौरात्म्य क्यों? उन्हों ने मशहूर कर दिया है कि तुम ने रोहिणी को सात हज़ार रुपये का गहना दिया है। और भी कितनी बुरी बातें फैलाई हैं, पर उन को तुम्हारे पास लिखते लज्जा लगती है। जो हो तुम्हारे पास यह हमारी नालिश है—तुम इस का विचार करना। नहीं तो मैं यहां का रहना अब छोड़ दूंगा।—इति।"

गोविन्दलाल और अचरज में आये,—भ्रमर ने कितनी बुरी बातें फैलायी हैं? इस का भेद कुछ समझ में नहीं आया। इस लिये गोविन्दलाल ने उसी दिन आज्ञा प्रचार की। यहां का जल वायु मुझ से सह्य नहीं होता—मैं कल ही घर जाऊंगा। नाव तैयार होवे।

दूसरे दिन नौका पर चढ़ कर दुखित चित्त से गोविन्दलाल ने घर की ओर यात्रा की।

—:o:—

## चतुर्विंशतितम परिच्छेद।

—:(o):—

जिस को प्यार करो उस को आंखों की ओट न करना। जो

प्रेमबन्धन दृढ़ रक्खो तो डोरी छोटी करना। जिस को चाहते हो उस को आंखों के सामने रखना। अदर्शन से कितने विषमय फल फलते हैं। जिस को विदा करतो समय कितना रोये—समझा था—उस के बिना दिन न बीतेगा, कई बरसों पीछे उस के साथ अब फिर देखा देखी हुई—तो केवल इतनाही पूछा " अच्छे तो रहे " या इतना पूछने की भी नौबत नहीं आई—नौबत ही नहीं आई—भीतर से जो पलट गया था। किम्वा अभिमान से, मन के मैल से, फिर देखा देखी तक नहीं होती। इतना न भी हो, पर एक बार आंखों की ओट होने से जो था वह नहीं रह जाता। जो चला जाता है, वह फिर नहीं आता। जो फूट जाता है वह फिर नहीं जुटता। छूटी हुई चोटी को गूंथी हुई किस ने देखा है।

भ्रमर ने गोविन्दलाल को विदेश जाने देकर अच्छा नहीं किया। इस समय जो दोनों जन साथ होते, तो मैं समझता हूं मन में यह मैल न उपजता, कहा सुनी में असली बात खुल जाती। भ्रमर को इतना धोखा न होता। इतना क्रोध न होता। क्रोध से यह सर्वनाश न होता।

गोविन्दलाल के घर को ओर यात्रा करने पर, नायब ने कृष्णकान्त के पास एक इत्तिला भेजी। उस में लिखा आज सबेरे मंझले बाबू ने घर की ओर यात्रा की। यह चीठी डाक में आई। नाव से डाक पहले पहुंचती है। गोविन्दलाल के अपने देश पहुंचने के चार पांच दिन पहले ही, कृष्णकान्त के पास नाय[illegible] [illegible] पहुंचा। भ्रमर ने सुना स्वामी आते हैं भ्रमर तब

फिर पत्र लिखने बैठी। चार पांच कागज़ को स्याही से भर कर, फाड़ कर, फेंक कर, दो चार घंटे में भ्रमर ने एक पत्र लिख कर पूरा किया। इस चोठो में माता को लिखा, "मैं बहुत बीमार हूं, तुम लोग जो एक बार आकर मुझको लिवा जाओ, तो आराम होकर मैं फिर आ सकती हूं। देर न करना, बीमारी बढ़ जाने पर फिर मैं आराम न हूंगी। हो सके तो कलहही आदमी भेजना, यहां बीमारी की बात न कहना" यही चिट्ठी लिख कर चीरी टहलुनी द्वारा आदमी ठहरा कर, भ्रमर ने छिपा कर उस को बाप के यहां भेज दिया।

जो, मा, न होती, दूसरा कोई होता, तो भ्रमर की चिट्ठी पढ़ कर ही समझ सकता, कि इस चिट्ठी में कोई छल है। पर, मा, सन्तान की बीमारी की बातें सुन कर एकबारही कातर हो पड़ीं। साथही भ्रमर की सास को एक लाख गाली दे कर स्वामी को भी दो एक गालियां दीं। और रो धो कर ठीक किया कि कलह ही कहार पालकी लेकर लौंडी नौकरों के साथ भ्रमर को लेने जावेंगे। भ्रमर के पिता ने कृष्णकान्त को चिट्ठी लिखी। चालाकी से भ्रमर की बीमारी की कोई बात न लिख कर, लिखा, कि "भ्रमर की माता बहुत बीमार हो गई है—भ्रमर को एक बार देखने के लिये भेज दीजियेगा।" दास दासियों को भी ऐसा ही कुछ सिखला दिया।

कृष्णकान्त बड़े बिपद में पड़े। इधर गोविन्दलाल आता है, इस समय भ्रमर को पिता के घर जाने देना उचित नहीं। उधर भ्रमर की माता बीमार हैं, न जाने देने से भी नहीं बनता, साथ

पाँच कर के चार दिन के वादे पर भ्रमर को जाने दिया।

चार दिन में गोविन्दलाल पहुंचे। सुना भ्रमर नैहर गई हुई है, आज उस को लेने के लिये पालकी जावेगी। गोविन्दलाल ने सब समझा, मनही मन बड़ा अभिमान हुआ। मनही मन सोचा, "इतना अविश्वास! बिना बूझे, बिना पूछे, हम को छोड़ कर चली गई! मैं अब उस भ्रमर का मुंह न देखूंगा। जिस को भ्रमर नहीं, वह क्या प्राण धारण नहीं कर सकता?"

यही सोच कर गोविन्दलाल ने भ्रमर के लाने को आदमियों के भेजने के लिये माता को मना किया। क्यों मना किया, यह कुछ न कहा, उनकी राय देख कर कृष्णकान्त ने भी वधू के लाने के लिये फिर कोई उद्योग नहीं किया।

---

# पञ्चविंशतितम परिच्छेद।

इसी प्रकार दो चार दिन बीता, भ्रमर को कोई नहीं लाया, भ्रमर भी नहीं आई। गोविन्दलाल ने सोचा, भ्रमर को बड़ा अभिमान हुआ है, उस को कुछ रुलावेंगे। सोचा, भ्रमर ने बड़ा अविचार किया है, उस को रुलावेंगे। एक एक बार घर को खाली देख कर आप भी रोये। भ्रमर के अविश्वास को सोच कर एक एक बार आंखों में पानी आया। भ्रमर के साथ कलह, यह बात सोच कर रुलाई आई। फिर आंखों के जल को पोंछ कर क्रोधित हुए। क्रोध के वश में पड़ कर भ्रमर के भूलने

की चेष्टा की। भूलने की क्या सामर्थ्य ? सुख जाता है, स्मृति नहीं जाती। घाव अच्छा होता है, दाग नहीं अच्छा होता। मनुष्य चला जाता है, नाम रहता है।

अंत में दुर्बुद्धि गोविन्दलाल ने ठीक किया, भ्रमर के भूलने का सब से अच्छा उपाय, रोहिणी की चिन्ता है। रोहिणी की अलौकिक रूपप्रभा ने एक दिन के लिये भी गोविन्दलाल के हृदय को त्याग नहीं किया था। गोविन्दलाल बल कर के उस को ठहरने नहीं देने, किन्तु वह न छोड़ती। उपन्यासों में सुना जाता है कि किसी घर में भूत का उपद्रव होता, भूत दिनरात ताक झांक लगाते, पर ओझा उन को निकाल बाहर करता। रोहिणी प्रेतनी त्योंही दिन रात गोविन्दलाल के हृदय मंदिर में ताक झांक लगाती, गोविन्दलाल उस को निकाल बाहर करता। जैसे जल के नीचे चन्द्र, सूर्य की छाया है, चन्द्र, सूर्य नहीं, त्योंही गोविन्दलाल के हृदय में प्रतिदिन रोहिणी की छाया है, रोहिणी नहीं। गोविन्दलाल ने सोचा, जो भ्रमर को अब भूलना ही होगा, तो रोहिणी की बातें ही अब सोचें—नहीं तो यह दुख भूला नहीं जा सकता। बहुत से कुचिकित्सक छोटे रोगों के दूर करने के लिये उत्कट विष का व्यवहार करते हैं। गोविन्दलाल भी छोटे से रोग के दूर करने के लिये उत्कट विष के प्रयोग में दत्त चित्त हुए। गोविन्दलाल अपनी इच्छा से आपही अपने अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हुए।

रोहिणी की बातें पहले स्मृति मात्र थीं, पीछे दुख में परिणत हुईं। दुख से वासना बनी। गोविन्दलाल वारुणी के कूल पर फूल

के पौधों से घिरे हुए सुन्दर मंडप में बैठ कर उसी वासना के लिये अनुताप कर रहे थे। वर्षा काल। आकाश मेघाच्छन्न। बादल घिर आया है—कभी कभी वृष्टि ज़ोर से होती है, कभी धीमी पड़ती है। पर पानी का तार नहीं टूटता। संध्या उत्तीर्ण हुई। यामिनी का अंधकार धीरे धीरे फैलने लगा, उस पर बादलों का अंधकार—वारुणी का घाट साफ़ नहीं देखा जाता है। गोबिन्दलाल ने अस्पष्ट रूप से देखा कि एक स्त्री उतर रही है। गोबिन्दलाल ने समझा रोहिणी सीढ़ियों से होकर उतर रही है। वर्षा से घाट पर फिसलाहट बहुत हुई थी—पीछे पिछले पांवों फिसलकर स्त्री जल में गिर कर विपद में न पड़े, यह सोचकर गोबिन्दलाल कुछ घबराये। पुष्पमंडप में से पुकार के कहा, "अरे तू कौन है? आज पर घाट न उतरना—बड़ी फिसलाहट है—गिर जायगी।"

उस स्त्री ने उन की बातों को अच्छी तरह समझा था या नहीं, नहीं कहा जा सकता। पानी पड़ रहा था, बोध होता है वृष्टि के शब्द से उस ने अच्छी तरह सुनने नहीं पाया, उस ने बगल की कलसी को घाट पर उतारा। पीछे फिर सीढ़ियों पर चढ़ी। धीरे धीरे गोविन्द लाल के पुष्पोद्यान की ओर चली। उद्यान के द्वार को खोलकर उद्यान में प्रवेश किया। गोबिन्दलाल के पास मंडप के नीचे जाकर खड़ी हुई। गोबिन्दलाल ने देखा, सामने रोहिणी।

गोबिन्दलाल ने कहा,

"भींगते भींगते यहां क्यों रोहिणी?"

रो०। आप ने क्या मुझ को पुकारा है?

गो०। पुकारा नहीं, घाट पर फिसलाहट बड़ी थी, उतरने को मना करता था। खड़ी होकर भींगती क्यों हो?

रोहिणी साहस पा कर मंडप में आई। गोविन्दलाल बोले, "लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे?"

रो०। जो कहना है, कहते हैं। वे बातें आप से एक दिन कहूंगी, यह सोच कर कई बार उद्योग किया था।

गो०। मुझ को भी इस विषय में कई बातें पूछनी हैं, किस ने इन बातों को फैलाया है? तुम लोग भ्रमर का दोष क्यों देती हो?

रो०। सब कहती हूं। पर क्या यहीं खड़ी होकर कहूँगी?

गो०। नहीं, हमारे साथ आओ।

यह कह कर गोविन्दलाल, रोहिणी को लेकर बाग की बैठक में गये।

वहां दोनों में जो बातचीत हुई, उस का परिचय देने में हम लोगों की प्रवृत्ति नहीं होती है। केवल इतना ही कहूंगा, कि उस रात को रोहिणी, घर आने के पहले समझ गई कि गोविन्दलाल रोहिणी के रूप पर मुग्ध है।

---

## षड्विंशतितम परिच्छेद।

रूप पर मुग्ध? कौन किस के नहीं? हम इस हरित नीलचित्रित प्रजापति (तितली) के रूप पर मुग्ध। तुम कुसुमित कामिनी शाखा के रूप पर मुग्ध। इस में क्या दोष? रूप तो मोह के लिये ही हुआ था।

गोविन्दलाल ने पहले इसी प्रकार सोचा। पाप की पहली सीढ़ी पर पैर रख कर पुण्यात्मा भी इसी प्रकार सोचता है।

किन्तु जैसे बाह्य जगत में मध्याकर्षण से, तैसेही अन्तर्जगत में पाप के आकर्षण से, प्रतिपद पतनशील की गति वर्द्धित होती है। गोविन्दलाल का अधःपतन बहुत ही द्रुत हुआ—क्योंकि, रूप-तृष्णा ने बहुत दिन से उन के हृदय को शुष्क कर रक्खा था। हम लोग केवल रो सकते हैं, पर अधःपतन वर्णन नहीं कर सकते।

धीरे धीरे कृष्णकान्त के कान में रोहिणी और गोविन्दलाल का नाम एकत्रित हो पड़ा। कृष्णकान्त दुखित हुए। गोविन्दलाल के चरित्र में थोड़ा भी कलंक लगने से उन को बड़ा कष्ट होता। मनही मन इच्छा हुई गोविन्दलाल को कुछ डाटेंगे। पर इन दिनों कुछ बीमार हो गये थे। शयनमन्दिर का त्याग नहीं कर सकते। वहां गोविन्दलाल उन को प्रतिदिन देखने आते, पर सदा वह नौकर चाकरों से घिरे रहते, गोविन्दलाल को सब के सामने कुछ न कह सकते। पर बीमारी बहुत ही बढ़ी। अचानक कृष्णकान्त के मन में उदय हुआ, समझ पड़ता है चित्रगुप्त का हिसाब पूरा हो आया, बूझ पड़ता है इस जीवन का सागर संगम सामने है। अब और देर करने से बात कही न जा सकेगी। एक दिन गोविन्दलाल बहुत रात गये बाग से फिरे। उसी कृष्णकान्त ने मन की बात कहना विचारा। गोविन्दलाल देखने आये। कृष्णकान्त ने पास के लोगों को उठजाने को कहा। सब लोग उठ गये। तब गोविन्दलाल ने कुछ अप्रतिभ हो कर पूछा,

"आप आज कैसे हैं ?" कृष्णकान्त ने क्षीणस्वर से कहा,

"आज बिलकुल अच्छा नहीं हूं। तुम को इतनी रात क्यों हुई ?"

गोविन्दलालने इन बातों का कोई उत्तर न देकर कृष्णकान्त के हाथ को अपने हाथ में लेकर नाड़ी देखी। अचानक गोविन्दलाल का मुख सूख गया। कृष्णकान्त का जीवनप्रवाह बहुत ही धीरे धीरे चलता था। गोविन्दलाल ने केवल इतना ही कहा, "मैं आता हूं।" कृष्णकान्त के सोने के कमरे से निकल कर गोविन्दलाल सीधे, आप ही वैद्य के घर जाकर उपस्थित हुए। वैद्य विस्मित हुआ। गोविन्दलाल बोले, महाशय शीघ्र औषध लेकर आइये, बड़े चाचा की अवस्था बिलकुल अच्छी नहीं है। वैद्य घबरा कर बहुत सी गोलियां लेकर उन के साथ दौड़े। कृष्णकान्त के घर में गोविन्दलाल वैद्य के सहित पहुंचे, कृष्णकान्त कुछ डरे। वैद्य ने नाड़ी देखी। कृष्णकान्त ने पूछा, "क्यों क्या कुछ शंका होती है?" वैद्य बोले "मनुष्यशरीर में शंका कब नहीं है?"

कृष्णकान्त ने समझा, कहा, "कितने क्षण मीयाद है?"

वैद्य बोले, "औषध खिलाकर पीछे कह सकूंगा" वैद्य ने औषध बनाकर खाने के लिये कृष्णकान्त के निकट उपस्थित किया। कृष्णकान्त ने औषध को हाथ में लेकर, एक बार शिर से छुलाया। पीछे उस औषध को पीकदानी में डाल दिया।

वैद्य दुखी हुआ। कृष्णकान्त देखकर बोले, "आप दुखी न हों, औषध खाकर बचने की अवस्था मेरी नहीं है। औषध की अपेक्षा हरिनाम से मेरा भला होगा। तुमलोग हरिनाम उच्चारण करो, मैं सुनूं।"

कृष्णकान्त को छोड़ कर किसी ने हरिनाम उच्चारण नहीं किया.

पर सभी स्तंभित, भीत, चकित हुए। अकेले कृष्णकान्त ही भयशून्य थे। कृष्णकान्त ने गोविन्दलाल से कहा, "हमारे सिरहाने सन्दूक की कुंजी है, बाहर निकालो।"

गोविन्दलाल ने तकिये के नीचे से कुंजी निकाली। कृष्णकान्त बोले, "संदूक खोल कर हमारे दानपत्र को बाहर करो।"

गोविन्दलाल ने संन्दूक खोल कर दानपत्र को बाहर निकाला।

कृष्णकान्त बोले "हमारे अमला, मुहर्रिर और गांव के दस भलेमानसों को बुलाओ।"

उसी दम नायब, मुहर्रिर, गुमाश्ता, कारकुन, चट्टोपाध्याय, मुखोपाध्याय, वन्दोपाध्याय, भट्टाचार्य्य, घोष, वसु, मित्र, दत्त से घर भर गया।

कृष्णकान्त ने एक मुहर्रिर को आज्ञा दी, "हमारे दानपत्र को पढ़ो।"

मुहर्रिर ने पढ़ कर पूरा किया।

कृष्णकान्त बोले, "इस दानपत्र को फाड़कर फेंकना होगा। नया दानपत्र लिखो।"

मुहर्रिर ने पूछा, "कैसे लिखूंगा?"

कृष्णकान्त बोले, "जैसे है, सब वैसाही, केवल—" "केवल क्या?"

"केवल गोविन्दलाल का नाम काट कर उस ठौर हमारे भाई के लड़के की स्त्री भ्रमर का नाम लिखो। भ्रमर अब मौजूद न रहेगी तो

इस आधे हिस्से को उस समय गोविन्दलाल पावेगा, लिखो।"

सब कोई चुप रहा। कोई कुछ न बोला। मुहर्रिर ने गोविन्दलाल के मुख की ओर देखा। गोविन्दलाल ने इशारा किया, लिखो।

मुहर्रिर ने लिखना आरम्भ किया, लिखना समाप्त होने पर कृष्णकान्त ने स्वाक्षर किया। गवाह लोगों ने हस्ताक्षर किया। गोविन्दलाल ने आप मांग कर, दानपत्र को लेकर, उस पर साक्षी स्वरूप अपना भी हस्ताक्षर किया।

दानपत्र में गोविन्दलाल की एक कौड़ी भी नहीं—भ्रमर का आधा।

उसी रात को हरिनाम उच्चारण करते करते तुलसी के नीचे कृष्णकान्त ने परलोक की यात्रा की।

---

# सप्तविंश परिच्छेद।

---

कृष्णकान्त का मरना सुन कर देश के लोग दुख करने लगे। कोई बोला एक इन्द्र का पात हुआ, कोई बोला एक दिक्पाल मरा। कोई बोला एक विशाल पर्वत का शिखर टूट पड़ा, कृष्णकान्त विषयी लोग थे पर खरे न थे। और दरिद्र व ब्राह्मण पण्डितों को भली भांति दान देते। इस लिये उन के वास्ते बहुत लोग कातर हुए।

सब से बढ़ कर भ्रमर अर्थ भ्रमर को काज विशेष से कातर

पड़ा! कृष्णकान्त के मरने के दूसरे दिन ही गोविन्दलाल की माता ने उद्योगी होकर पताह्न को बुलाने के लिये लोगों को भेजा। भ्रमर आकर कृष्णकान्त के लिये रोने लगी।

गोविन्दलाल के साथ भ्रमर की पहली भेंट में, रोहिणी की बातों के लिये किसी महाप्रलय के उपस्थित होने की सम्भावना थी या नहीं, उस को हम लोग ठीक नहीं कह सकते। पर कृष्णकान्त के शोक से वे सब बातें इस घड़ी दब कर रह गईं। भ्रमर के साथ गोविन्दलाल की जब पहली भेंट हुई, उस घड़ी भ्रमर जेठे ससुर के लिये रोती थी। गोविन्दलाल को देखकर और भी रोने लगी। गोविन्दलाल ने भी आंखों से आंसू बरसाया।

इस लिये जिस बड़े भारी हंगामे की आशङ्का थी, वह गोलमाल में मिट गया। इस को दोनों जनों ही ने समझा। दोनों जनों ही ने मन ही मन ठीक किया, कि जब पहली देखा देखी ही में कोई बातें नहीं हुईं, तो फिर टंटा बखेड़ा करने का कोई काम नहीं—यह टंटा बखेड़े का समय नहीं है। किसी तरह कृष्णकान्त का श्राद्ध ठीक ठीक हो जाय, पीछे जिस के मन में जो होगा वही होगा। यही सोच कर गोविन्दलाल ने, एक बार उपयुक्त समय देख कर, भ्रमर से कह रक्खा था।—

"भ्रमर! तुम्हारे साथ मेरी कई एक बातें हैं। उन बातों के कहने में मेरा कलेजा फट जायगा। पितृशोक से बढ़ कर जो शोक, उसी शोक से इस घड़ी मैं कातर हूं। इस घड़ी मैं उन सब बातों को तुम से नहीं कह सकता; श्राद्ध के पीछे जो कहना है उस को कहूंगा। इस बीच उन सब बातों का किसी प्रसंग से ही काम नहीं है।"

भ्रमर ने बड़े कष्ट से आंखों के आंसू को रोक कर, बाल्य परिचित देवता, काली, दुर्गा, शिव, हरि, को स्मरण कर के कहा, "मुझ को भी कुछ कहना है। तुम को जब अवकाश हो, पूछना।"

दूसरी और कोई बात नहीं हुई। दिन जैसे कटता है, उसी प्रकार कटने लगा—देखने में, उसी प्रकार दिन कटने लगा; दास, दासी, गृहिणी, गांव की स्त्रियां, अपने, सगे, किसी ने न जान पाया, कि आकाश में मेघ उठा है, फूल में कीड़े ने प्रवेश किया है, इस सुन्दर प्रेम प्रतिमा में घुन लगा है। घुन लगा तो है सत्य। पर जो था, वह अब नहीं रहा। जो हंसी थी, वह हंसी अब नहीं रही। भ्रमर क्या नहीं हंसती? गोविन्दलाल क्या नहीं हंसते? हंसते हैं, पर वह हंसी अब नहीं है। आंखों से आंखों के मिलते मिलते जो हंसी आपही उछल पड़ती, वह हंसी अब नहीं रही। जो हंसी, आधी हंसी, आधी प्रीति, वह हंसी अब नहीं रही। जिस हंसी के एक आधे के बल से, संसार सुखमय, एक आधे के बल से सुख की आकांक्षा पूरी नहीं होती—वह हंसी अब नहीं रही। वह चितवन नहीं रही, जिस चितवन को देखकर भ्रमर सोचती, "इतना रूप!" जिस चितवन को देखकर गोविन्दलाल सोचते, "इतना गुण!" वह चितवन अब नहीं रही। जिस चितवन में स्नेह पूर्ण, स्थिरदृष्टि, प्रमत्त गोविन्दलाल की आंखें देखकर भ्रमर सोचती, समझती हूं इस समुद्र को अपने इस जीवन में तैरकर मैं पार न हो सकूंगी—जिस चितवन को देखकर—गोविन्दलाल समझ समझ कर, इस संपूर्ण संसार को भूल जाता वह चितवन अब नहीं रही।

वह सब प्रिय सम्बोधन अब नहीं रहा; वह 'भ्रमर', 'भोमरा', 'भोमर', 'भोम', 'भूमरि', 'भूमि', 'भूम', वह सब नित्त नया, नित्य स्नेह पूर्ण, रंगपूर्ण, सुखपूर्ण, सम्बोधन अब नहीं रहा। वह काला, काली, काला चांद, काला सोना, काला मानिक, कालिन्दी, कालीये, इत्यादिक प्रिय सम्बोधन नहीं रहा। अरी, ओरी, ओरे, अरे, इत्यादिक प्रिय संबोधन अब नहीं रहा। वह झूठ मूठ का एक दूसरे को पुकारना अब नहीं रहा। वह झूठ मूठ का आपस में एक दूसरे से बक झक करना अब नहीं रहा। वह बात कहने की रीति अब नहीं रही। पहले बातें पूरी नहीं होतीं, चुकतीं नहीं, अब उन को खोज कर लाना होता! जो बातें आधी बोल चाल में, आधी आंखों आंखों, आधी अधरों अधरों, प्रकाश होतीं, इस दम वे सब बातें उठ गई हैं। जिन बातों के कहने का प्रयोजन नहीं, उत्तर में केवल कंठ स्वर सुनने का प्रयोजन, इस दम वे सब बातें उठ गई हैं। पहले जब गोविन्दलाल और भ्रमर एक साथ होते, तब गोविन्दलाल को पुकारने पर कोई सहज ही नहीं पाता। भ्रमर को पुकारने पर एक बार ही नहीं पाता। इन दिनों पुकारना नहीं होता, यातो 'बड़ी गरमी है' नहीं तो 'कौन पुकारता है' यह कह कर एक आदमी उठ जाता। सुन्दर पूर्णिमा को मेघ ने ढाका, कार्तिकीय राका में ग्रहण लगा। किस ने खरे सच्चे सोने में खोट मिलाया—किस ने सुर बंधे हुए यंत्र के तार को काटा।

उस समय दोपहर के सूर्य्य की किरनों से विकसित हृदय में

रोहिणी की चिंता करता—भ्रमर उस घोर, महाघोर, अंधकार में उंजाला करनेके लिये,-यम की चिन्ता करती—निराश्रय के आश्रय, अगति के गति, प्रेमशून्य के प्रीतिस्थान, यम ! तुम्हीं हो, चित्त विनोदन, दुःखविनाशन, विपद्भंजन, दीनरंजन, यम ! तुम्हीं हो, आशाशून्य की आशा, प्यारशून्य के लिये प्यार, यम ! तुम्हीं हो ! हे यम ! भ्रमर को शीघ्र ही ग्रहण करो ।

—:::※:::—

## अष्टाविंश परिच्छेद ।

तिस के पीछे कृष्णकान्त राय का भारी श्राद्ध हो गया । शत्रु-पक्ष के लोगों ने कहा हां घटा अकर उठी, पांच सात दश हज़ार रुपया व्यय हो गया है । मित्रपक्ष के लोगों ने कहा लाख रुपया खरच हुआ है । कृष्णकान्त के उत्तराधिकारियों ने मित्रपक्ष के लोगों से छिपे छिपे कहा । अन्दाज़न पचास हज़ार रुपया खर्च हो गया है । हम लोगों ने खाता देखा है । कुल खर्च ४२२८६।,२॥ पाई है ।

जो हो कितने दिन बड़ी भीड़ रही । श्राद्ध के अधिकारी हरलाल नें आकर श्राद्ध किया । कितने दिन मक्खियों की भनभनाहट, बरतनों की खनखनाहट, कंगालों के कोलाहल, नैयायिकों के विचार से, गांव में कान नहीं दिया गया । कुछ दिन तक पेड़े और मिठाइयों की आमदनी, मांझतों की आमदनी, टिकिया और

नौरियों की आमदनी, कुटुम्ब के कुटुम्ब की, उन के कुटुम्ब की, उन के भी कुटुम्ब की आमदनी, खूब रही। बालकों ने लड्डू और मगदरों को लेकर गेंद खेलना आरंभ किया। स्त्रियों ने नारियल के तेल को महंगा देखकर सिर पर पूरी और कचौरियों से टपके हुए घी को लगाना आरंभ किया। मदक की सब दूकानें बन्द हुई, सब अफीमची फलाहार पर आ जमे। शराब की दुकान बन्द हुई, सब मतवालों ने टिकिया रखकर और तम्बाकू खरीद कर पास के कागज़ों के सहारे ही छुटकारा पाया। चावल महंगा हुआ, क्यों कि केवल अन्न का ही खर्च न था, इतना मैदे का खर्च, कि अब चावलों की ढेर से भी पूरा नहीं पड़ता था। इतना घी का खर्च कि बीमार लोग खोजने पर भी रेंड़ी का तेल न पाते। अहीरों के पास मट्ठा खरीदने जाने पर वे कहते, हमारा मट्ठा ब्राह्मणों के आशीर्वाद से दही हो गया है।

किसी प्रकार श्राद्ध का बखेड़ा दूर हुआ। अंत में दानपत्र पढ़ने की चर्चा आरंभ हुई। दानपत्र पढ़कर हरलाल ने देखा, दानपत्र पर बड़ी गवाहियां हैं,—किसी गोलमाल करने की सुविधा नहीं है। हरलाल श्राद्ध के अंत में जहां से आये थे वहां चले गये।

दानपत्र पढ़े जाने पीछे आकर गोविन्दलाल ने भ्रमर से कहा। "दानपत्र की बात तुम ने सुनी है?"

भ्र०। क्या?

गो०। उस में तुम्हारा आधा हिस्सा है।

भ्र०। हमारा या तुम्हारा ?

गो०। इस दम हमारे तुम्हारे में कुछ भेद हुआ है। हमारा नहीं तुम्हारा।

भ्र०। ऐसा होने ही से तुम्हारा।

गो०। ना, तुम्हारा ऐश्वर्य्य मैं भोग न करूंगा।

भ्रमर को बहुत ही रुलाई आई, पर भ्रमर अहङ्कार के वश में होकर रोना रोककर बोली, "तो क्या करोगे ?"

गो०। जिस से दो पैसा कमा कर दिन बिता सकें, वही करेंगे।

भ्र०। वह क्या ?

गो०। देश देश घूम कर नौकरी मिलने की चेष्टा करूंगा।

भ्र०। ऐश्वर्य हमारे जेठे स्वसुर का नहीं है, हमारे सगे ससुर का है। तुम्हीं उनके उत्तराधिकारी हो, मैं नहीं। जेठे को दानपत्र लिखने का कोई अधिकार नहीं था। दानपत्र असिद्ध है। हमारे बाप श्राद्ध के समय न्योते आकर यह बात मुझ को समझा गये हैं। ऐश्वर्य तुम्हारा है, हमारा नहीं।

गो०। हमारे जेठे चाचा झूठे नहीं थे। ऐश्वर्य तुम्हारा है हमारा नहीं। वह जब तुम को लिख गये हैं तो ऐश्वर्य तुम्हारा है हमारा नहीं।

भ्र०। जो यह सन्देह हो हो, तो मैं तुम को लिखे देती हूं।

गो०। तुम्हारा दान ले कर जीवनधारण करना होगा।

भ्र०। इस में ही क्या हानि है ? मैं भी तो तुम्हारी दासानुदासी ही न हूं।

गो०। आज कल ये बातें सोहतीं नहीं भ्रमर।

भ्र०। मैं ने कौन गुनाह किया है? मैं तुम को छोड़ कर इस जगत संसार में और किसी को नहीं जानती। आठ बरस की उमर में मेरा ब्याह हुआ है। मैं सतरह बरस की हुई हूं। मैं इस नौ बरस में और कुछ नहीं जानती, केवल तुम को जानती हूं। मैं तुम्हारी प्रतिपालिता, मैं तुम्हारे खेलने का खिलौना—मुझ से कौन सा अपराध हुआ?

गो०। जी में सोचकर देखो।

भ्रमर। असमय बाप के घर चली गई थी—घाट हुई, मुझ से, सौ, हज़ार, लाख, अपराध हुआ। हम को क्षमा करो। मैं और कुछ नहीं जानती, केवल तुम को जानती हूं। तभी बुरा माना था।

गोविन्दलाल कुछ न बोले। उन के आगे, आलुलायित कुन्तला, अश्रुविप्लुता, विवशा, कातरा, मुग्धा, पद प्रान्त में विलुण्ठिता, वही सप्तदशवर्षीया वनिता है। पर गोविन्दलाल कुछ न बोले। गोविन्दलाल उस घड़ी सोच रहा था "यह काली! रोहिणी परम सुन्दरी! इस में गुण है, उस में रूप है। इतने दिन तक गुण की सेवा की, अब कुछ दिन रूप की सेवा करूंगा।— मैं अपने इस असार, आशाशून्य, प्रयोजन शून्य, जीवन को यथेच्छ बिताऊंगा। मिट्टी का बरतन जिस दिन इच्छा होगी उसी दिन ठिकाने लगाऊंगा।"

भ्रमर पैर पकड़कर रोती है—क्षमा करो! मैं बालिका हूं!

जो अनन्त सुख दुख का विधाता, अन्तर्यामी, दुखियों का बन्धु, अवश्यही उस ने इन बातों को सुना। पर गोविन्दलाल ने

म को नहीं सुना चुप हो रहा। गोविन्दलाल रोहिणी का ध्यान कर रहा था। ताम्र ज्योतिर्म्मयी, अनन्त प्रभाशालिनी, प्रभात शुक्र नक्षत्र रूपिणी, रूपतरंगिणी, चंचला, रोहिणी का ध्यानकर रहा था।

भ्रमर ने उत्तर न पाकर कहा, "क्या कहते हो?"

गोविन्दलाल बोला,

"मैं तुम को त्याग करूंगा।"

भ्रमर ने पैर छोड़ दिया, उठी। बाहर जाती थी। दरवाजे पर मूर्छिता होकर गिर पड़ी।

---

# ऊनत्रिंश परिच्छेद।

"क्या अपराध हमने किया है कि हम को त्याग करोगे?"

यह बात भ्रमर गोविन्दलाल से मुख से न कह सकी—पर इस घटना के पीछे पल पल, मनहीं मन पूछने लगी, कि हमारा कौन सा अपराध है?

गोविन्दलाल भी मनहीं मन खोज करने लगा, कि भ्रमर का कौन सा अपराध है? भ्रमर से जो बड़ा भारी अपराध हुआ है, गोविन्दलाल के मन में यह एक प्रकार से ठीक होगया था। पर अपराध क्या है? इस को इतना विचार कर उन्होंने नहीं देखा। विचार के साथ देखते तो उनके मन में आता, कि भ्रमर ने इनके

ऊपर अविश्वास किया था, अविश्वास करके उन को इतना कड़ा पत्र लिखा था—एक बार भी उन से मुख से सच झूठ न पूछा—यही उस का अपराध ! जिस के लिये इतना किया, उस ने इतना सहज में हमारा अविश्वास किया, यही उस का अपराध है। हम ने कुमति सुमति की बात पहले कही है। गोबिन्दलाल के हृदय में पास पास बैठकर, कुमति सुमति में जो बात चीत होती थी, उस को सब को सुनाऊंगा।

कुमति बोली, "भ्रमर का पहला अपराध, यही अविश्वास।"

सुमति ने कहा, "जो अविश्वास के योग्य, उस का अविश्वास क्यों न करेगी? तुम रोहिणी के साथ जो आनन्द मना रहे हो, भ्रमर ने उसी का सन्देह किया, क्या यही उस का इतना बड़ा दोष है?"

कुमति। हम ने माना कि अब हम अविश्वासी हुए, पर जब भ्रमर ने अविश्वास किया था, तब हम निर्दोषी थे।

सुमति। दो दिन आगे पीछे में इतना भेद नहीं रहता, दोष तो किया है। जो दोष कर सकता है, उस को दोषी समझना क्या इतना बड़ा अपराध है?

कुमति। भ्रमर ने जो दोषी मुझ को समझा, इसी लिये मैं दोषी हुआ। साधु को चोर कहते कहते वह चोर होता है।

सुमति। दोष उसी का है जो चोर कहे, जो चोरी करे उस का कोई दोष नहीं!

कुमति। तुझ से झगड़ा कर के मैं जीत नहीं सकती, देखो न भ्रमर ने मेरा कैसा अपमान किया। मैं विदेश से आता हूं, यह सुनकर वह बाप के घर चली गई!

सुमति। जो उस ने सोचा था; अगर उस में उस का पूरा विश्वास हो गया हो तो, उस ने उचित काम ही किया। स्वामी के पराई स्त्री के प्रेम में फंसने से नारी देहधारण कर के कौन बुरा न मानेगी?

कुमति। वह विश्वास ही उस का भ्रम—और कौन सा दोष?

सुम०। यह बात क्या एक बार उस से पूछी गई है?

कुम०। नहीं।

सुम०। तुम बिना पूछे ही बुरा माने बैठे हो, और भ्रमर नितान्त बालिका, जो बिना पूछेही उस ने बुरा माना इस लिये इतना बखेड़ा? ये सब मतलब की बातें नहीं हैं—असल बुरा मानने का कारण क्या कहना होगा?

कुम०। क्या कहो न?

सुम०। असल कारण रोहिणी है। रोहिणी में मन अटका है—तभी अब काली भोमरा भली नहीं लगती।

कुम०। इतने दिन भोमरा कैसे भली लगी?

सुम०। इतने दिन रोहिणी मयस्सर नहीं हुई। एक दिन में ही सब कुछ नहीं हो जाता। काल पाकर सब होता है। आज खिलखिलाती धूप पड़ रही है, कल्ह मेघ क्यों न उठेंगे? स्वाली क्या यही—और भी कुछ है।

कुम०। और क्या ?

सुम०। कृष्णकान्त का दानपत्र। बूढ़ा मनही मन जानता, भ्रमर को विषय दे जाने से विषय तुम्हाराही रहा। यह भी जानता कि भ्रमर एक महीने के भीतर उसको तुमको लिख देगी। पर बीच में तुम को कुछ बिगड़ते देख कर तुम्हारी चाल चलन ठीक करने के लिये तुम को भ्रमर के आंचल के साथ बांध गया। तुमने इतना भी न समझ कर भ्रमर के ऊपर क्रोध किया है।

कुम०। सो तो ठीक ही है। मैं क्या स्त्री का महीना खाऊंगा ?

सुम०। अपने विषय को तुम क्यों भ्रमर से नहीं लिखा लेते ?

कुम०। स्त्री के दान से दिन बिताऊंगा !

सुम०। अरे बापरे ! कैसे कुल पुरुष सिंह ! तो भ्रमर के साथ मुक़द्दमा चलाकर डिगरी क्यों नहीं करा लेते—तुम्हारे ही बाप दादे की जायदाद तो है ?

कुम०। स्त्री के साथ मुक़द्दमा लड़ूंगा ?

सुम०। तो और क्या करोगे ? कहीं निकल जाओ।

कुम०। उसी चेष्टा में हूं।

सुमति०। क्या रोहिणी भी साथ जावेगी ?

तब कुमति से सुमति से भारी झोंटाझोंटी और घूसाघूसी आरम्भ हुई।

—:•※•:—

# त्रिंश परिच्छेद ।

---

मेरा ऐसा विश्वास है कि जो गोविन्द लाल की मा पकी गृहिणी होतीं, तो फूंक मारने से ही यह काला मेघ उड़ जाता। वह समझ सकी थीं कि पतोहू के साथ उन के पुत्र का भीतरी विच्छेद हुआ है। स्त्रियां यह सहज ही समझ सकती हैं। जो वह इस समय अच्छे उपदेशों से, स्नेह के वाक्यों से, और स्त्री बुद्धि सुलभ अन्यान्य सदुपायों से उस का प्रतीकार करने में यत्न करतीं, तो समझ पड़ता है कि वह सुफल फला सकतीं। पर गोविन्दलाल की माता इतनी पकी गृहिणी नहीं हैं। विशेष कर के पतोहू विषय की अधिकारिणी हुई है, यह समझ कर भ्रमर के ऊपर कुछ उन का विद्वेष हुआ था। जिस प्रीति के सहारे वह भ्रमर की भलाई की कामना करेंगी, भ्रमर के ऊपर उन की वह प्रीति नहीं थी। बेटा रहते, पतोहू की सम्पत्ति हुई, यह उन से नहीं सहा गया। उन्होंने एक बार भी विचार के साथ न सोचा, कि भ्रमर की और गोविन्दलाल की सम्पत्ति को एक ही समझ कर, और गोविन्द लाल के चरित्र को बिगड़ते देख कर, कृष्णकान्त राय गोविन्द लाल को ताड़ना के लिये, भ्रमर को विषय की अधिकारिणी कर गये हैं। एकबार भी उन्हों ने मन में यह न सोचा कि कृष्णकान्त ने मरने की दशा में कुछ कुछ बुद्धि को खोकर कुछ कुछ भ्रान्तचित्त होकर इस अविधेय काम को किया था। उन्होंने सोचा कि पुत्र बधू के चलते में,उन को केवल खाने पहनने को

अधिकारिणी, और अन्न के भिखारी सुअनी और सगों में गिनी जाकर यह जीवन निर्वाह करना होगा। इस लिये संसार छोड़ना ही अच्छा, यह मन में ठीक किया। एक तो पतिहीना, तिस पर कुछ आत्मपरायणा, वह स्वामी के मरने के समय से ही काशी चलेजाने की कामना करतीं। केवल स्त्री स्वभाव सुलभ पुत्र स्नेह में पड़ कर इतने दिन जा न सकीं। इस घड़ी यह वासना और प्रबल हुई। उन्होंने गोविन्दलाल से कहा, "मालिक सब एक एक कर के स्वर्गगामी हुए, अब हमारा समय भी निकट चला आता है, तुम सच्चे पुत्र का काम करो, हम को काशी भिजवा दो।"

गोविन्दलाल तुरन्त इस प्रस्ताव में सम्मत हुए। कहा, "चलो, हमतुम को आप काशी पहुंचा आवेंगे।" भाग के खोटेपन से इस समय भ्रमर एक बार अपनी इच्छा से बाप के घर गई हुई थी। किसी ने उस को मना नहीं किया। इसलिये भ्रमर की अज्ञात अवस्था में गोविन्दलाल काशी जाने के लिये सब ठीक ठाक करने लगे। उनके नाम कुछ सम्पत्ति थी,—उस को छिपे छिपे बेंच कर रुपया उन्हों ने हाथ में किया। सोना, हीरा, और दूसरी जो मोलवाली वस्तु उन की निज की थी, उस को भी बेंचा। इसी प्रकार से लगभग लाख रुपया के हाथ आया। आगे को गोविन्द लाल अब इसी के द्वारा दिन बितावेंगे—ऐसा जी में ठीक किया।

तब मा के साथ काशीयात्रा का दिन ठीक कर के लोगों को भ्रमर को बुलाने के लिये भेजा। सास काशी की यात्रा करेंगी, यह सुन कर भ्रमर बहुत शीघ्र आई। आकर सास के चरणों को पकड़ कर बहुत कुछ बिनय किया, सास के पैरों पर गिर कर

रोने लगी, कहा—"मा, मैं बालिका, मुझ को अकेली छोड़ कर न जाओ—हम संसारधर्म्म अभी क्या जानती हैं? मा! संसार समुद्र है, मुझ को इस समुद्र में अकेली डुबो कर न जाओ।" सास ने कहा, "तुम्हारी बड़ी ननद रही, वही तुम को हमारे समान यत्न करेगी, और अब तुम भी गृहिणी हुई हो।" भ्रमर ने कुछ न समझा, केवल रोने लगी।

भ्रमर ने देखा, बड़ी भारी विपद आगे आई। सास त्याग कर के चलीं, और स्वामी भी उन को पहुंचाने चले—वह भी इन को पहुंचाने जाकर समझ पड़ता है अब न आवेंगे! भ्रमर गोविन्दलाल का पैर पकड़ कर रोने लगी, बोली, "कितने दिन में आओगे बतला जाओ?"

गोविन्दलाल बोले, "नहीं कह सकता, आने की इतनी इच्छा नहीं है।"

भ्रमर पैर छोड़ कर उठ खड़ी हुई, सोचा, "क्या डर है विष खाऊंगी।"

तिस के पीछे ठहराया हुआ यात्रा का दिन आ पहुंचा, हरिद्रा ग्राम से कुछ दूर पालकी पर जाकर रेल मिलती है। शुभ यात्रिकलग्न उपस्थित हुई। सब प्रस्तुत हैं। कांवर और बहंगियों पर सन्दूक, पेटारा, बक्स, बेग, गठरी, ढोनेवालों ने ढोना आरम्भ किया। दास दासियों ने साफ धोये हुए कपड़ों को पहन कर, बालों को गूंध कर, दरवाज़े के सामने खड़े होकर पान खाना आरम्भ किया। ये सब साथ आवेंगे। दरबानों ने छींट के जामा के बन्दों को लगा कर हाथ में लाठी लेकर कंवरवालों के साथ

बकझक आरम्भ किया। पड़ोस की स्त्रियां और लड़के देखने के लिये झुके। गोविन्दलाल की माता गृहदेवता को प्रणाम कर के, गांव के सब लोगों के साथ यथा उचित बात चीत करने पीछे, रोते रोते पालकी पर सवार हुईं। गांव के सभी लोग रोने लगे। वह पालकी पर सवार होकर आगे हुईं।

इधर गोविन्दलाल गांव की दूसरी दूसरी स्त्री लोगों से यथोचित सम्बोधन कर के शयनगृह में रोती हुई भ्रमर के पास विदा लेने के लिये गये। भ्रमर को रोती हुई देख कर वह जो कहने के लिये आये थे, उस को न कह सके, केवल इतनाही कहा, "भ्रमर! मैं मा को पहुंचाने चला।"

भ्रमर ने आंख के आंसू को पोंछ कर कहा, "मा तो वहां वास करेंगी—क्या तुम भी न आओगे?"

यह बात जब भ्रमर ने पूछी, तब उस की आंखों का जल सूख गया था, उस के स्वर की स्थिरता, गम्भीरता, उस के होठों पर स्थिर प्रतिज्ञा देख कर गोविन्दलाल कुछ विस्मित हुए। एक व एक जवाब न दे सके। भ्रमर स्वामी को चुप देख कर फिर बोली—

"देखो—तुम्हीं ने हम को सिखाया है—सत्य ही एक मात्र धर्म्म है, सत्य ही एक मात्र सुख है, आज तुम हम से सच्च बोलना—मैं तुम्हारी आश्रित बालिका हूं—आज मुझ से छल न करना—कब आओगे?"

गोविन्दलाल बोले, "तो सचही सुनो। फिर आने की इच्छा नहीं है।"

भ्रमर। क्यों इच्छा नहीं है—क्या उस को न बतला जाओगे?

गोविन्दलाल। यहां रहने से तुम्हारा अन्नदास होकर रहना होगा।

भ्रमर। इसी में कौन सी हानि है? मैं तो तुम्हारी दासानुदासी ही न हूं।

गोविन्दलाल। हमारी दासानुदासी भ्रमर, हमारे परदेस से वापस आने के समय, जङ्गला पर बैठ कर राह देखती। उस समय वह जाकर बाप के घर न रहती।

भ्र०। उस के लिये कितनी बार पैरों पड़ी हूं, क्या एक अपराध क्षमा नहीं हो सकता?

गो०। इस घड़ी वैसे सौ अपराध होंगे। तुम अब सम्पत्ति की अधिकारिणी हो।

भ्र०। ऐसा नहीं है। अब की बार बाप के यहां जाकर, बाप की सहायता से मैंने जो कुछ किया है, उस को देखो।

यह कह कर भ्रमर ने एक कागज़ दिखलाया। इस को गोविन्दलाल के हाथ में देकर कहा, "पढ़ो।"

गोविन्दलाल ने पढ़ कर देखा—दानपत्र। भ्रमर उचित मूल्य के छाम्प पर अपनी कुल सम्पत्ति स्वामी को दान करती है। उस की रजिष्टरी भी हुई है। गोविन्दलाल पढ़ कर बोले—

"अपने योग्य काम तुमने किया है। पर हमारे तुम्हारे क्या सम्बन्ध है? हम तुम को गहने देंगे, तुम पहनोगी। तुम सम्पत्ति दान करोगी हम भोग करेंगे—यह सम्बन्ध नहीं है।" यह कह कर गोविन्दलाल ने बहुमूल्य दानपत्र को टुकड़े टुकड़े कर डाला।

अमर बोली, " पिता ने कह दिया है, इस को फाड़ देना वृथा है। सरकार में इस की नक़ल मौजूद है। "

गो०। हो, होवे, मैं चला।

अ०। कब आओगे?

गो०। नहीं आऊंगा।

अ०। क्यों? मैं तुम्हारी स्त्री, शिष्या, आश्रिता, प्रतिपालिता— तुम्हारी दासानुदासी— तुम्हारी बातों की भिखारिणी—आओगे क्यों नहीं?

गो०। इच्छा नहीं है।

अ०। क्या धर्म्म भी नहीं है?

गो०। समझ पड़ता है कि मुझ में वह भी नहीं है।

बड़े कष्ट से अमर ने आंखों के जल को रोका। हुक्म से आंखों का जल फिरा—अमर हाथ जोड़ कर, अविकम्पित कंठ से कहने लगी—" तो जाओ—जो मैं आवे आना, नहीं न आना। बिना अपराध हम को त्याग करना चाहते हो, करो।—पर याद रक्खो ऊपर देवता हैं। याद रक्खो एक दिन हमारे लिये तुम को रोना होगा। याद रक्खो एक दिन तुम खोजोगे कि इस पृथ्वी में अकृत्रिम आन्तरिक स्नेह कहां है?—देवता साक्षी हैं। जो मैं सती होऊं, जो मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारे चरणों में मेरी भक्ति होवे—तो हमारी तुम्हारी फिर भेंट होगी। मैं इसी आशा से प्राण रक्खूंगी। इस घड़ी जाओ, कहने की इच्छा हो तो कहो कि अब न आऊंगा। पर मैं कहती हूं—फिर आओगे— फिर अमर कहकर पुकारोगे— फिर हमारे लिये आंसू बहाओगे। जो ये

बातें झूठी हों तो जानना—देवता मिथ्या, धर्म्म मिथ्या, भ्रमर असती! तुम जाओ मुझ को दुःख नहीं है। तुम हमारे ही हो—रोहिणी के नहीं।"

यह कहकर भ्रमर ने भक्ति के साथ स्वामी के चरणों में प्रणाम किया। और गजेन्द्रगमन से दूसरे घर में जाकर दरवाज़ा बन्द किया।

---

# एकत्रिंश परिच्छेद।

इस आख्यायिका के आरंभ के कुछ पहले भ्रमर को एक बेटा होकर सूतिकागार ही में मर गया। भ्रमर आज दूसरे मकान में जाकर, दरवाज़ा बंद कर के, उसी सात दिन के लड़के के लिये रोने बैठी। धरती पर गिरकर धूल में लोटती हुई पल पल लम्बी सांस भरकर वह उस लड़के के लिये रोने लगी—"मेरी आंखों के तारे, मुझ कंगाल के सोना, आज तुम कहां हो? आज तू होता तो किस का ऐसा बश था कि मुझ को छोड़ता? हमारी माया को उन्हों ने दूर किया, तुम्हारी माया को कौन दूर करता? मैं कुरूपा हूं, काली हूं, तुझ को कौन काला कुरूप कहता? तुझ से बढ़कर कौन सुन्दर है? भैया! एक बार तो दिखलाई दे—इस विपत्ति के समय में क्या तू एक बार भी दिखलाई नहीं दे सकता—मरने पर क्या फिर कोई एक बार नहीं देखा जा सकता?—"

भ्रमर तब हाथ जोड़कर, मनही मन सिर को ऊपर उठाकर, अस्फुट वचनों के साथ देवतालोगों से पूछने लगी—"कोई मुझ को बतला दो—हमारे किस दोष से, इस सत्रह बरस की ही उमर में ऐसी असंभव दुर्दशा हमारी हुई; हमारा प्यारा पुत्र मरगया, हमारे स्वामी ने हम को त्याग किया—हमारा अभी केवल सत्रह बरस का सिन है, मैं इस वयस में स्वामी के प्यार बिना और किसी वस्तु को प्यार नहीं करती—मुझ को इस लोक में और कोई दूसरी कामना नहीं है—दूसरी किसी और कामना का करना हमने सीखाही नहीं—आज मैं इस सत्रह बरस के वय में ही उस से निराश क्यों हुई ?"

भ्रमर ने रो धो कर सिद्धान्त किया—देवता सब बड़े निठुर हैं—जब देवता सब निठुर हैं—तब मनुष्य और क्या कर सकता है—केवल रोवेगा, भ्रमर केवल रोने लगी।

इधर गोविन्दलाल भ्रमर के निकट से बिदा होकर धीरे २ बाहर आये। हम लोग सच्ची बातें कहेंगे—गोविन्दलाल आंखों के जल को पोंछते हुए आये। बालिका की बहुत ही सरल जो प्रीति-अकृत्रिम, उद्वेलित, प्रत्येक बातों से प्रगट, जिस का प्रवाह दिन रात चलता—भ्रमर से उसी अमूल्य प्रीति को पाकर गोविन्द लाल सुखी हुए थे वह अब गोविन्दलाल को याद आई। उन्हों ने समझा जिस को आज वे त्याग करते हैं, फिर उस को कभी पृथ्वी में न पावेंगे। पर साथ ही यह बात भी जी में आई, जो इस दम हमने किया, उसका प्रतिकार अब नहीं हो सकता, अब चलें। अब चले

हैं तो चलें। समझ में आता है कि अब न फिरेंगे। ओ हो, चले हैं तो चलें।

उस समय जो गोविन्दलाल दो कदम फिर कर, भ्रमर के बंद दरवाज़े को ढकेलकर, एक बार कहते—"भ्रमर मैं फिर आता हूं" तो सभी मिटता। गोविंलाल की अनेक बार ऐसी इच्छा हुई थी। पर इच्छा होने पर भी उन्हों ने वैसा नहीं किया। इच्छा होने पर भी कुछ लज्जा मालूम हुई। समझा, इतनी कान जल्दी है? जब जी में आवेगा, तभी फिरेंगे। भ्रमर के निकट गोविन्दलाल अपराधी हैं। फिर भ्रमर के साथ भेंट करने का साहस नहीं हुआ। जो करना चाहिये उस को उन की बुद्धि ठीक न कर सकी। जिस ओर जाते थे उसी ओर चले। उन्हों ने चिन्ता को दूर किया—बाहर आकर सजे हुए घोड़े पर सवार होकर उस को कोड़ा लगाया। रास्ते में जाते जाते रोहिणी की सुन्दरता हृदय में विकसित हो उठी॥

प्रथम खंड समाप्त।

---

# द्वितीय खण्ड।

## प्रथम परिच्छेद

### पहला साल।

हरिद्राग्राम के घरों में संदेसा आया। गोविन्दलाल माता इत्यादि के साथ, निर्विघ्न स्वस्थ शरीर से काशी धाम पहुंच गये। भ्रमर के पास कोई चीठी नहीं आई। अभिमान से भ्रमर ने भी चीठी नहीं लिखी। चीठीपत्री अमला लोगों के पास आनेलगी।

एक महीना बीता। दो महीना बीता। चीठीपत्री आने लगी। अंत में एक दिन खबर आई। गोविन्दलाल ने काशी से घर की ओर यात्रा की है।

भ्रमर ने सुन कर समझा, गोविन्दलाल ने केवल मा को भुला कर किसी दूसरी ठौर गमन किया। घर आवेंगे ऐसा भरोसा नहीं हुआ।

इस समय भ्रमर छिपे छिपे सदा रोहिणी का सम्वाद लेने लगी। रोहिणी, रोटी बनाती है, खाती है, बरतन मांजती है, नहाती धोती है, पानी लाती है। और कोई सम्वाद नहीं आया। धीरे धीरे एक दिन सम्वाद पहुंचा, रोहिणी पीड़िता है। घर के भीतर सिर पकड़ कर पड़ी रहती है। बाहर नहीं होती। ब्रह्मा-नन्द [illegible] पकड़ते आते हैं

पीछे एक दिन सम्बाद आया। रोहणी कुछ सम्हली है। पर पीड़ा की जड़ नहीं गई। शूलरोग—औषध काम नहीं करती—रोहिणीनीरोग होने के लिये तारकेश्वर के यहां हत्या करने जावेगी। शेष सम्वाद—रोहिणी हत्या करने के लिये तारकेश्वर गई। अकेली गई—साथ कौन जावे ?

इधर तीन चार महीना बीता—गोविन्दलाल फिर कर नहीं आया। पांच महीना बीता, छः महीना हुआ। गोविन्दलाल नहीं फिरे। भ्रमर के रोने का अन्त नहीं था। केवल यही सोचती, अब कहां हैं, कैसे हैं—यह सम्वाद पाने से ही बच सकती हूं। वह सम्वाद भी अब क्यों नहीं मिलता ?

अन्त में ननद से कह कर सास के यहां चीठी लिखायी—आप मा हैं, अवश्य ही पुत्र का सम्वाद पाती होंगी। सास ने लिखा, मैं ने गोविन्दलाल का सम्वाद पाया है। गोविन्दलाल, प्रयाग, मथुरा, जयपुर, इत्यादिक स्थानों में घूम कर, इन दिनों दिल्ली में ठहरे हुए हैं। बहुत जल्द वहां से दूसरी ठौर जावेंगे। किसी जगह ठहरते नहीं हैं।

इधर रोहिणी भी फिर नहीं फिरी। भ्रमर सोचने लगी—भगवान् जाने रोहणी कहां गई ? अपने मन के सन्देह को मैं अपने पापी मुख से न कहूंगी। भ्रमर अब और न सह सकी। रोते रोते ननद से कह कर पालकी द्वारा बाप के घर चली गई।

वहां जाने पर गोविन्दलाल के किसी सम्वाद का मिलना कठिन देख कर भ्रमर पुनः फिर आई। आकर हरिद्राग्राम में भी स्वामी का कुछ सम्वाद न पाकर फिर सास को चीठी लिख

आई। इस बार सास ने लिखा—"गोविन्दलाल अब अपना सम्वाद नहीं देता, इन दिनों वह कहां है मैं नहीं जानती। कोई सम्वाद नहीं मिला।" इसी प्रकार पहला साल बीत गया। पहले साल के अन्त में भ्रमर बीमार हो पड़ी। अपराजिता फूल सूख गया।

---

# द्वितीय परिच्छेद।

---

भ्रमर को बीमार सुन कर भ्रमर के पिता उस को देखने के लिये आये। भ्रमर के पिता का परिचय हमलोगों ने अब तक नहीं दिया—अब देंगे। उन के पिता माधवीनाथ सरकार की वयस इकतालीस साल की थी। वे देखने में बड़े सुपुरुष थे, पर उनके चरित्र के विषय में लोगों में बड़ा मतभेद था। बहुत लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करते—बहुत लोग कहते उन के ऐसा दुष्ट आदमी दूसरा नहीं है। वह जो चतुर आदमी यह सभी मानता—और जो उन की प्रशंसा करता, वह भी उन का भय रखता।

माधवीनाथ कन्या की दशा देख कर बहुत रोये। देखा—वह श्यामा सुन्दरी, जिस के सब अंग सुललित गठन से गठित थे, इन दिनों बहुत ही दुबली हो रही थी, मुख सूख गया था, गले की हड्डियां निकल आई थीं, कमल ऐसी आंखों में गढ़हे पड़ रहे थे। [illegible] भी बहुत ही रोई। अन्त में दोनों के रोना बन्द करने

पर भ्रमर ने कहा, "बाबा! बोध होता है अब और दिन नहीं रहे। मुझ से कुछ धर्म्म कर्म्म कराओ। मैं अभी लड़की हूं तो क्या, मेरा दिन तो पूरा हुआ। दिन पूरा हुआ तो अब और विलम्ब कैसे करूंगी? मेरे पास बहुत रुपया है। मैं व्रत नियम करूंगी। कौन यह सब करावेगा? बाबा! तुम इस को ठीक कर दो।"

माधवीनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया—कष्ट के न सहे जाने पर वे घर में से बाहर आये। बाहर आकर बहुत काल तक बैठ कर रोये। केवल रोये ही नहीं—उसी कलेजे टुकड़े करने वाले दुख से माधवीनाथ के हृदय में घोरतर क्रोध का आविर्भाव हुआ। मनही मन सोचने लगे, "जिस ने मेरी कन्या के ऊपर यह अत्याचार किया है—उस के ऊपर वैसाही अत्याचार करे—ऐसा क्या जगत् में कोई नहीं है?" सोचते सोचते माधवीनाथ का हृदय कातरता के बदले प्रदीप्त क्रोध से पूर्ण हो गया। माधवीनाथ ने तब लाल लाल आंख कर के प्रतिज्ञा की, "जिस ने हमारे भ्रमर का इस प्रकार सत्यानाश किया है—मैं भी उस का उसी प्रकार सर्वनाश करूंगा।"

तब माधवीनाथ कुछ सुस्थिर होकर फिर अन्तःपुर में गये। कन्या के पास आकर बोले—

"बेटी, तुम व्रत, नियम करने की बातें कहती थी, मैं वही बातें सोचता था। इन दिनों तुम्हारा शरीर बहुत ही बीमार है। व्रत, नियम करने पर बार बार उपवास करना होता है। अभी

तुम से उपवास का करना नहीं सहा जावेगा, कुछ शरीर संभल ले।"

भ्र०। यह शरीर क्या फिर सम्हलेगा?

मा०। सम्हलेगा बेटी! क्या हुआ है? तुम्हारी कुछ दवा यहां नहीं हो सकती है—कैसे होगी? ससुर नहीं, सास नहीं, कोई दूसरा भी पास नहीं, कौन दवा करावेगा? तुम अब हमारे साथ चलो। हम तुम को घर पर ले चल कर दवा करावेंगे। हम अभी दो दिन यहां रहेंगे—पीछे तुम को साथ लेकर राजगांव चलेंगे।

राजगांव में भ्रमर के बाप रहते थे।

कन्या के यहां से बिदा होकर माधवीनाथ कन्या के कार्य्य-कारक लोगों के पास गये। दीवानजी से पूछा, "क्यों दीवानजी! बाबू की कोई चीठी पत्री आती है?" दीवानजी ने कहा, "कोई नहीं।"

मा०। वह इन दिनों कहां हैं?

दी०। उनका कोई सम्वाद ही, हमलोगों में से कोई कुछ नहीं कहसकता। वह कोई सम्वाद ही अपना नहीं भेजते।

मा०। किस से यह सम्वाद हम पा सकेंगे?

दी०। जो यह मालूम हो सकता तो हमलोग आप उन का सम्वाद लेते। काशी में मा जी के पास सम्वाद मंगाने के लिये हमलोगों ने आदमी भेजा था—किन्तु वहां भी उन का कोई सम्वाद नहीं आता। बाबू का इन दिनों अज्ञात वास है।

# तृतीय परिच्छेद ।

माधवीनाथ ने कन्या की बुरी दशा देख कर पूरी प्रतिज्ञा की थी, "कि इस का प्रतिकार करेंगे । गोविन्दलाल और रोहिणी इस अनिष्ट की जड़ हैं इस लिये पहलेही खोज करना चाहिये, कि वे पामर पामरी कहां हैं। नहीं तो दुष्ट की तारना न होगी—और भ्रमर भी मरेगी।"

वे दोनों एक वारही छिपे हैं। जिन सब सूत्रों से उन के पकड़ आने की सम्भावना है, उन सब को उन्हों ने तोड़ रक्खा है; पैर के चिन्ह तक को दूरकर फेंका है। पर माधवीनाथ ने कहा, कि जो हम इन दोनों का पता न लगासके, तो वृथा हम अपने पौरुष का अभिमान करते हैं।

इस प्रकार अपने विचार को पक्का करके माधवीनाथ अकेले राय लोगों के घर से बाहर हुए। हरिद्राग्राम में एक डाकघर था। माधवीनाथ हाथ में बेत लिये हिलते डोलते, पान खाते खाते, धीरे धीरे, निरीह भलेमानुसों की तरह, वहां जापहुंचे।

डाकघर में, एक अँधियाले खपरैल के मकान में, पंद्रह रुपया महीना पानेवाले एक डिप्टी पोष्टमाष्टर विराज रहे थे। एक आम की लकड़ी के टूटे हुए टेबिल पर कई चीठियां, चीठी का फाइल, चीठी का फारम,—एक मट्टी की घरिया में थोड़ा सा बबूल का गोंद—एक टूटी फूटी तख्ती, एक कांटा, कुछ थोड़ी सी डाकघर की मोहर इत्यादि को लेकर पोष्टमाष्टर किम्बा पोष्टबाबू गंभीर भाव

से पियन महाशय के समीप अपना प्रभुत्व प्रकाश कर रहे थे। डिप्टी पोष्टमाष्टर पंद्रह रुपया पाते हैं, पियन सात रुपया पाता है। इस लिये पियन सोचता कि सात आना और पन्द्रह आना में जो अन्तर है, बाबू के साथ हमारा उस से अधिक अन्तर नहीं है। पर बाबू मनही मन सोचते कि मैं एक डिप्टी हूं—और वह बेचारा पियादा, मैं उस का हर्त्ता, कर्त्ता, विधाता—इसलिये उस से और मुझ से ज़मीन आस्मान का अन्तर है। इसी बात के सप्रमाण करने के लिये, पोष्टमाष्टर बाबू सदा उस गरीब के ऊपर तर्ज्जे गर्ज्जन किया करते—वह भी सात आने के अन्दाज़ से उत्तर देता। बाबू चीठी के वज़न करने में दत्तचित्त थे, और पियादा को साथ ही साथ अस्सी आने के वज़न से डांट डपट रहे थे, कि इसी बीच प्रशान्तमूर्त्ति सहास्यवदन माधवीनाथ बाबू वहां आकर उपस्थित हुए। किसी भले आदमी को आता देखकर, पोष्टमाष्टरबाबू ने अन्त को पियादा के साथ के कचकच को बन्द किया। और हां ! करके उन की ओर देखनेलगे। भले आदमी का समादर करना होता है, ऐसा कुछ कुछ उन के मन में आया—पर समादर कैसे करना होता है—इस की उन को शिक्षा नहीं हुई थी। इस लिये वह वैसा न करसके।

माधवीनाथ ने देखा, यह एक बानर है। हंसकर बोले, "आप ब्राह्मण हैं ?"

पोष्टमाष्टर बोले, "हां—तु—तुम—आप।"

माधवीनाथ ने मुसकुराहट को रोककर, दोनों हाथों को जोड़ कर, और उन को मस्तक से छुलाकर, सिर नीचा कर के कहा, "प्रणाम करता हूं।"

तब पोष्टमाष्टर बाबू बोले, " बैठिये। "

माधवीनाथ कुछ बखेड़े में पड़े—पोष्ट बाबू ने तो कहा " बैठिये " पर वह बैठें कहां—बाबू आप एक बहुत ही पुरानी चौकी पर जिस को तीन टांगें रह गई थीं बैठे हुए थे—उस को छोड़कर और कोई आसन कहीं नहीं था। तब उन्हीं पोष्टमाष्टर बाबू के सात आने हरिदास पियादा ने—एक टूटे हुए ट्रङ्क के ऊपर से बहुत सी फटी हुई बहियों को नीचे रखकर, उस को माधवीनाथ को बैठने के लिये दिया। माधवीनाथ ने बैठने पीछे उस की ओर आंखें फेरकर के कहा

" कहो बाबू कैसे हो? क्या हमने तुम को कभी देखा है? "

पियादा। आज्ञा, मैं चीठी बांटने का काम करता हूं।

मा०। तभी पहचानता हूं। एक चिलम तम्बाकू तो चढ़ाओ—

माधवीनाथ दूसरे गांव के रहनेवाले थे, उन्हों ने कभी हरिदास वैरागी पियादा को नहीं देखा था। और वैरागी बाबाजी ने भी कभी उन को नहीं देखा था। पर बाबाजी ने मन में सोचा, बाबू का रंग ढंग भलेमानसों का सा दीखता है। मांगने पर क्या चारगंडा बकसीस न देंगे। यही सोचकर हरिदास हुक्के की खोज में दौड़ा।

माधवीनाथ तमाखू नहीं पीते थे—केवल हरिदास बाबाजी को वहां से हटाने के लिये उन्हों ने तमाखू पीने का लटका लगाया। पियादा महाशय के चले जाने पर माधवीनाथ ने पोष्टमाष्टर बाबू से कहा—

" आप के पास कुछ पूछने के लिये मैं आया हूं। "

पोष्टमाष्टर बाबू मनही मन कुछ हंसे। वह मध्य बंगाल के रहनेवाले थे निवास विक्रमपुर में था। दूसरी बातों में जितने अनजान क्यों न हों–पर अपना मतलब गांठने में शूच्यग्र बुद्धि हैं। समझा, कि बाबू किसी विषय की खोज में आये हैं। बोले–

"कौन सी बात साहब?"

मा०। ब्रह्मानन्द घोष को आप पहचानते हैं?

पो०। नहीं पहचानता—पहचानता हूं—अच्छी तरह नहीं पहचानता।

माधवीनाथ ने समझा, अवतार अपनी मूर्तिधारण करने का उपक्रम करता है। बोले, "आप के डाकघर में ब्रह्मानन्द घोष के नाम कोई चीठी पत्री आती है?"

पो०। आप के साथ ब्रह्मानन्द घोष की जान पहचान नहीं है?

मा०। हो या न हो, पर कुछ पूछने के लिये मैं आपही के पास आया हूं।

पोष्टमाष्टर बाबू तब अपने उच्चपद और डिपटी नाम को स्मरण करके गंभीर होकर बैठे। और थोड़ा सा रूखेपन के साथ बोले,

"डाकघर की बातें हमलोगों को कहने की आज्ञा नहीं है।" यह कहकर पोष्टमाष्टर बाबू चुपचाप चीठी वज़न करने लगे।

माधवीनाथ मनही मन हंसने लगे। प्रगट में बोले,

"ए बाबू साहब! मैं यह जानता हूं कि तुम सीधे बातें न करोगे। इस लिये कुछ साथ भी लाया हूं—कुछ दे जाऊंगा—इस घड़ी मैं जो जो पूछता हूं उस को ठीक ठीक कह चलो—"

तब पोष्टमाष्टर बाबू बहुत ही प्रसन्न होकर बोले, "क्या कहते हैं कहिये ?"

मा० । यही कहता हूं, कि ब्रह्मानन्द घोष के नाम कोई चीठी पत्री डाकघर में आती है ?

पो० । आती है ।

मा० । कितने कितने दिन पर ?

पो० । जो बात हम ने कही, उसका रुपया हमने अब तक नहीं पाया । पहले उस का रुपया बाहर कीजिये । पीछे दूसरी बातें मुझ से पूछिये ।

माधवीनाथ की इच्छा थी, कि पोष्टमाष्टरबाबू को कुछ दे जावें । पर उस के व्यवहार से बहुत ही बिरक्त होपड़े—बोले, "बाबू ! मैं देखता हूं तुम परदेसी आदमी हो—क्या मुझ को चीन्हते हो ?"

पोष्टमाष्टर ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, पर आप कोई क्यों न हों—क्या हमलोग डाकघर की बातें जिस तिस के साथ कहने चलते हैं ? तुम कौन हो ?"

मा० । हमारा नाम है माधवीनाथ सरकार—घर राजगांव में है । हमारे यहां कितने लठ बहादुर हैं जानते हो ?

पोष्टबाबू डरे—माधवीनाथ बाबू का नाम और उग्र प्रताप सुने हुए थे । पोष्ट बाबू चुप हो रहे ।

माधवीनाथ कहने लगे, "मैं तुम से जो पूछता हूं—सच सच उस का उत्तर दो । कुछ कपट कपट न करो । करोगे तो तुम को कुछ न दूंगा—एक पैसा भी नहीं । और जो न कहोगे—या झूठ कहोगे—तो तुम्हारा घर फूंक दूंगा तुम्हारा डाकघर लूट लूंगा,

अदालत में साबित कराऊंगा कि तुम ने आप लोगों से मिल कर सरकारी रुपया अपहरण किया है—क्यों अब कहोगे?"

पोष्ट बाबू की थरहरी कांपने लगी—बोले—"आप बुरा क्यों मानते हैं? मैं तो आप को चीन्हता नहीं, साधारण लोग समझकर ही वैसी बातें कही थीं—आप जब आये हैं—तो जो कुछ पूछियेगा, मैं उस को बतलाऊंगा।—

मा०। कितने दिन पीछे ब्रह्मानन्द के पास चीठी आती है?

पो०। प्रायः महीने महीने—कुछ ठीक ठिकाना नहीं है।

मा०। क्या रजिस्टरी होकर चीठियां आती हैं?

पो०। हां—प्रायः अनेक चीठी ही रजिष्टरी की होती है।

मा०। किस आफिस से रजिस्टरी होकर आती है?

पो०। याद नहीं है।

मा०। तुम्हारे आफिस में एक रसीद रहती है न?

पोस्टमास्टर ने रसीद खोज कर बाहर किया। एक को पढ़ कर कहा, "प्रसादपुर"।

"प्रसादपुर कौन ज़िला है? अपनी लिस्ट देखिये।"

पोस्टमास्टर ने कांपते कांपते छपी हुई लिस्ट देख कर कहा, "यशोर।"

मा०। देखिये और कहां कहां से रजिस्टरी चीठी उस के नाम आया की है। सब रसीद देखिये।

पोस्टमास्टर बाबू ने देखा। आज कल जितनी चीठियां आई हैं, सभी प्रसादपुर से आई हैं। माधवीनाथ पोस्टमास्टर बाबू के कांपते हुए हाथ में एक दस रुपये का नोट देकर उनको बिदा

हुए। तब भी हरिदास बाबाजी को हुक्का नहीं प्राप्त हुआ था। माधवीनाथ हरिदास के लिये भी एक रुपया रख गये। कहना बाहुल्य मात्र है कि पोस्टमास्टर बाबू ने उस को आत्मसात् किया।

---

## चतुर्थ परिच्छेद।

—:::*:::—

माधवीनाथ हंसते हंसते फिर आये। माधवीनाथ ने गोविन्द-लाल और रोहिणी के अधः पतन की कहानी को भली भांति धीरे धीरे लोगों से सुना था। उन्हों ने मनहीमन ठीक किया था, कि रोहिणी और गोविन्दलाल एक ही ठौर छिप कर निवास करते हैं। ब्रह्मानन्द घोष की दशा भी वह भली भांति जानते थे। जानते थे कि सिवाय रोहिणी के उन का और कोई नहीं है। इसलिये जब डाकघर में उन्हों ने जाना, कि ब्रह्मानन्द के नाम महीने महीने रजिस्टरी हो कर चीठी आया करती है, तब समझा कि या तो रोहिणी, नहीं तो गोविन्दलाल उन के पास महीने महीने खरच भेजता है। प्रसादपुर से चीठी आती है इसलिये दोनों प्रसादपुर में या उस के पास के किसी स्थान में अवश्य रहते हैं। पर ठीक किये गये को और ठीक करने के लिये कन्या के घर पर लौट कर उन्हों ने थाने में एक आदमी भेजा। सबइन्सपेक्टर को लिख भेजा कि आप एक कान्सटेबुल भेज दीजियेगा। आशा है कि कुछ चुराया हुआ माल पकड़वा दूंगा।

सब इन्सपेक्टर माधवीनाथ को अच्छी तरह जानते थे—डरते भी थे—चीठी पाते ही निद्रासिंह कान्सटेबुल को भेज दिया। माधवीनाथ ने निद्रासिंह के हाथ में दो रुपया देकर कहा, " ए बाबू हिन्दी उर्दू न बोलना, जो कहता हूं वही करो। इस पेड़ के नीचे जा कर छिप जाओ। पर पेड़ के नीचे इस प्रकार से खड़े होना, जिस से वहां से तुम को देखा जा सके। और कुछ न करना होगा।" निद्रासिंह स्वीकृत हो कर विदा हुए। माधवीनाथ ने तब ब्रह्मानन्द को बुलवा भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पास बैठे। उस समय वहां और कोई नहीं था।

आपस में कुशल प्रश्न होने पर माधवीनाथ बोले, "आप हमारे स्वर्गीय समधियों के बड़े ही आत्मीय थे। अब तो उन में से कोई नहीं रहा। हमारे जामाता भी परदेश में हैं। आप के ऊपर किसी विपद् आपद् पड़ने पर हमीं लोगों को सम्हालना उचित है—इसी लिये आप को बुलवाया है।"

ब्रह्मानन्द का मुंह सूख गया। बोले, "विपद् कैसी महाशय?" माधवीनाथ गंभीर भाव से बोले, " आप कुछ विपद्ग्रस्त मालूम होते हैं।"

ब्र०। कौनसी विपद् महाशय?

मा०। विपद् समूह। पुलीस ने न जाने कैसे निश्चय किया है कि आप के पास एक चुराया हुआ नोट है। ब्रह्मानन्द आकाश से गिरे। "यह क्या! हमारे पास चुराया हुआ नोट!"

मा० तुम्हारी जान में सम्भव है कि चोरी न हुई हो पर जाल

पकड़ता है दूसरे ने तुम को चुराया हुआ नोट दिया है। और तुमने उस को अनजान में उठा रक्खा है।

ब्र०। सो क्या महाशय! हम को नोट कौन देगा? माधवी-नाथ ने तब धीमी आवाज़ से कहा, "हमने सभी जाना है, पुलीस ने भी जाना है, सच्ची बात तो यह है कि पुलीस से ही हमने ये सब बातें सुनी हैं। चुराया हुआ नोट प्रसादपुर से आया है। यह देखो एक पुलीस कान्सटेबुल आ कर तुम्हारे लिये खड़ा है— हमने उस को कुछ देकर थोड़ी देर के लिये ठहराया है।"

माधवीनाथ ने तब वृत्तल विहारी, रूलधारी, गुम्फश्मश्रु-शोभित, जलधरसन्निभ, कान्सटेबुल की कान्तमूर्त्ति को दिखलाया।

ब्रह्मानन्द थर थर कांपने लगे, माधवीनाथ के पैर को पकड़ कर रोते हुए बोले,

"आप मेरी रक्षा कीजिये।"

मा०। भय नहीं है। इस बार प्रसादपुर से किस किस नम्बर का नोट पाया है बोलो देखें। पुलीस के लोग हमारे यहां नोट का नम्बर रख गये हैं। जो उस नम्बर का नोट न होगा तो कौन डर है? फिर नम्बर बदलने ही में कितनी देर लगेगी? इस बार की प्रसादपुर की चोठी ले आओ देखें—नोट का नम्बर देखें।

ब्रह्मानन्द जाय कैसे? डर लगता था—कान्सटेबुल जो पेड़ के नीचे खड़ा है।

माधवीनाथ बोले, "कोई डर नहीं है, मैं आदमी साथ किये देता हूं।" माधवीनाथ की आज्ञा से एक दरबान ब्रह्मानन्द के साथ

गया। ब्रह्मानन्द रोहिणी की चीठी लाये। उस पत्र में माधवीनाथ जो जो खोजते थे, वह सभी पाया।

पत्र पढ़ कर ब्रह्मानन्द को वापस देकर बोले, "इस नम्बर का नोट नहीं है। कोई डर नहीं—तुम घर जाओ। मैं कान्सटेबुल को बिदा किये देता हूं।"

ब्रह्मानन्द की मरी हुई देह में प्राण आया। हांफते हांफते वहां से दौड़कर भाग आया।

माधवीनाथ दवा करने के लिये कन्या को अपने घर ले गये। उस की चिकित्सा के लिये एक उपयुक्त चिकित्सक को नियुक्त कर के आप कलकत्ते चले। भ्रमर ने अनेक आपत्ति की, माधवीनाथ ने न सुना। जल्द ही आता हूं—यह कह कर कन्या को समझा बुझा गये। कलकत्ते में निशाकरदास नामक माधवीनाथ के एक जन बड़े आत्मीय थे। निशाकर माधवीनाथ से उमर में आठ दस साल के छोटे थे। निशाकर कुछ न करते—बाप दादे की जायदाद थी—कुछ कुछ गाने बजाने का अनुशीलन करते। बेकार होने कारण सदा सैर सपाटा करने के लिये इधर उधर आया करते। माधवीनाथ ने उन के पास आकर उनसे साक्षात् किया। दूसरी दूसरी बातों के पीछे निशाकर से पूछा,

"क्यों जी घूमने चलोगे?"

नि०। कहां?

मा०। ज़िला—जे—सो—सो—र—

नि०। जैसोर क्यों?

मा०। नील की कोठी खरीद करेंगे।

नि० । चलो ।

पीछे विहित उद्योग करके दोनों बंधु ने दो एक दिन में यशोहर की ओर यात्रा की । वहां से प्रसादपुर जावेंगे ।

---

## पञ्चम परिच्छेद ।

---

देखो धीरे धीरे शीर्णशरीरा चित्रा नदी बहती है—तीर पर पीपल, कदम्ब, आम, खजूर, इत्यादि असंख्य वृक्ष शोभित, उपवन में कोकिल, पपीहा, मोर, बोल रहे हैं । पास कोई गांव नहीं है । प्रसादपुर नामक एक छोटा सा बाज़ार वहां से प्रायः एक कोश पथ दूर । यहां मनुष्य का समागम न देख कर, निःशङ्क पापाचरण करने का स्थान समझ कर, पूर्वकाल में एक नील के साहब ने, एक नील की कोठी प्रस्तुत की थी । आज कल नील के साहब और उन का ऐश्वर्य दोनों ध्वंसपुर प्रयाण कर गये हैं । उन के अमीन, तगादगीर, नायब, गुमाश्ता, सभी उपयुक्त स्थान में अपनी कमाई हुई करनी का फल भोग कर रहे थे । एक बंगाली ने उसी जनशून्य प्रान्तरस्थित रम्य-अट्टालिका को मोल लेकर उस को सुसज्जित किया था । फूलों से, माटी के खिलौनों से, सुन्दर आसनों से, दर्पणों से, चित्र विचित्र चित्रों से गृह विचित्र हो उठा था । उस के भीतर द्वितलस्थ एक बृहत मकान में हमलोग चलें । मकान में कितने

ही रमणीय चित्र हैं—पर कितने ही सुरुचि विगर्हित—अवर्ण-नीय। निर्म्मल सुकोमल आसन पर बैठकर एक जन दाढ़ीवाले मुसलमान एक तम्बूरे की खूंटियां ऐंठ रहे थे—पास बैठकर एक युवती ठिङ् ठिङ् कर के एक तबले के ऊपर थाप देती थी—साथ ही साथ हाथ का स्वर्णालङ्कार झन्झन् कर के बज रहा था। पास के प्राचीरविलम्बी दो बृहत् दर्पणों में दोनों की छाया भी उसी प्रकार करने में संलग्न थी। पासवाले मकान में बैठ कर एक जन युवापुरुष उपन्यास पढ़ते थे, और बीच के खुले हुए द्वारपथ से युवती की कार्य्यावली अवलोकन करते थे।

तम्बूरे की खूंटियां ऐंठते ऐंठते वह दाढ़ीवाला उस के तारों को उँगलियों से छेड़ रहा था। जब तारों की मैं मैं और तबले का ख्यान् ख्यान् उस्ताद जी के विचार में एक होकर मिला—तब उन्हों ने उसी गुम्फश्मश्रु के अन्धकार में से कितने तुषारधवल दांतों को निकाल कर, वृषभ दुर्लभ कण्ठरव को बाहर करना आरम्भ किया। रव बाहर करते करते वे तुषारधवल दन्तसमूह अनेक प्रकार के विकृत भावों में परिणत होने लगे, और भ्रमर—कृष्णश्मश्रुराशि उस का अनुवर्तन कर के नाना प्रकार का रङ्ग दिखलाने लगी। तब युवती ने उन नाना विकृत भावों से संतारित होकर उसी वृषभ दुर्लभ रव के साथ अपने कोमल कण्ठ को मिलाकर गीत आरम्भ किया—उस से पतली मोटी आवाज़ों में [illegible] की भांति एक प्रकार का गीत होने लगा।

इसी ठौर यवनिका पतन करने की इच्छा होती है। जो अपवित्र, अदर्शनीय है, उस को हमलोग न दिखलावेंगे—जिस को बिना दिखलाये नितान्त नहीं चलता—उसी को लिखेंगे। किन्तु तथापि, उसी अशोक बकुल कुटज कुरबक कुंजों में भ्रमर गुंजन, कोकिल कूजन, उसी क्षुद्र नदी तरंग चालित राजहंस का कलनाद, उसी यूथी जाति मल्लिका मधुमालती इत्यादि कुसुमों का सौरभ, उसी गृह में नील काच प्रविष्ट रौद्र की अपूर्व माधुरी, उसी रजत-स्फटिकादि निर्मित पुष्पाधारों में सुविन्यस्त कुसुमगुच्छ की शोभा, उसी गृह शोभाकारी द्रव्य समूहों का विचित्र उज्ज्वल वर्ण, और उसी गायक के विशुद्ध स्वर लहरी की भूयसी सृष्टि, इन्हीं सभों का क्षणिक उल्लेख मैंने किया। क्योंकि जो युवक निविष्ट चित्त से युवती के चंचल कटाक्षों को अवलोकन कर रहा है, उस के हृदय में इस कटाक्ष के माधुर्य से ही इन सभों को वास्तविक छटा की स्फूर्ति हो रही है।

यह युवा गोविन्दलाल, यह युवती रोहिणी, इस गृह को गोविन्दलाल ने मोल लिया है। इसी ठौर ये दोनों रहते हैं।

अकस्मात रोहिणी का तबला बेसुरा बोला। उस्ताद जी के तमूरे का तार टूटा—तार टूट कर उस के गले में ज़ोर से लगा—गाना बन्द हुआ—गोविन्दलाल के हाथ से उपन्यास छूट कर नीचे गिरा। उसी समय उसी प्रमोदगृह के द्वार से एक जन अपरिचित युवा ने प्रवेश किया। हमलोग उनको पहचानते हैं—वह निशाकर दास हैं।

# षष्ठ परिच्छेद।

—:*:—

द्वितल अट्टालिका के ऊपर वाले तल में रोहिणी रहती थी—वह अर्द्ध परदेनशीन। नीचे के तल में नौकर सब रहते थे। उस निर्जन स्थान में बहुधा कभी भी कोई गोविन्दलाल से मिलने जुलने के लिये न आता। इसलिये वहां बैठक की आवश्यकता न थी। जो काम पाकर कोई दुकानदार वा और दूसरा कोई आता न, कोठे पर बाबू के पास संदेसा जाता, बाबू नीचे आकर उस से भेंट करते। इसलिये बाबू के बैठने के लिये नीचे भी एक घर था।

नीचेवाले तल के द्वार पर आकर, खड़े होकर निशाकरदास ने कहा, "कोई भाई यहां है?"

गोविन्दलाल के सोना रूपा नाम के दो नौकर थे। मनुष्य के शब्द से दोनों हो द्वार के निकट आकर निशाकरदास को देख कर विस्मित हुए। निशाकरदास के देखने से ही बोध हुआ कि यह कोई बहुत बड़ा आदमी है—निशाकरदास भी खूब बनठन कर वहां गये थे। उस प्रकार के आदमी ने कभी उस चौकठ को कांघा नहीं था—इसीलिये देखकर ही नौकर सब आपस में मुंहामुंही करने लगे।

सोना ने पूछा—

"आप किस को खोजते हैं?"

नि० । तुम्हीं लोगों को । अपने बाबू को सम्बाद दो कि कोई भला आदमी आप से भेंट करने के लिये आया है ।

सोना । क्या नाम बतलाऊंगा ?

नि० । नाम बतलाने का कौन काम है ? कहना कोई भला आदमी आया है ।

नोकर सब जानते, कि किसी भले आदमी के साथ बाबू साक्षात् नहीं करते थे—ऐसा स्वभाव ही नहीं था । इसलिये नोकर सब सम्वाद देने में उतने इच्छुक न थे । सोना इधर उधर करने लगा । रूपा ने कहा, "आप बाहक आये हैं, बाबू किसी के साथ साक्षात् नहीं करते ।"

नि० । तो तुम लोग ठहरो—हम बिना संवाद के ही ऊपर जाते हैं ।

नोकर सब झगड़े में पड़े । बोले, "नहीं महाशय ! हमलोगों की नोकरी जावेगी ।"

निशाकर ने तब एक रुपया बाहर निकाल कर कहा, "जो सम्वाद देगा—उसी को यह रुपया दूंगा" ।

सोना विचार करने लगा । रूपा चील की तरह चोंच मार कर निशाकर के हाथ से रुपया ले उड़ा, और ऊपर सम्वाद देने गया ।

घर को घेरे हुए जो पुष्पोद्यान था, वह बहुत ही सुन्दर था । निशाकर ने सोना से कहा, 'मैं इस फूल की वाटिका में टहलता हूं—रोक टोक न करना—जब सम्वाद आवे—तब हम को यहा

से बुला लेना। यह कह कर निशाकर ने सोना के हाथ में और एक रुपया प्रदान किया।

रूपा जब बाबू के पास गया, तब बाबू किसी काम में उलझे हुए थे। नौकर उन से निशाकर दास का सम्वाद कुछ न कह सका। इधर उद्यान में टहलते २ निशाकर ने एक बार आंखों को ऊपर उठा कर देखा कि एक परम सुन्दरी खिड़की में खड़ी होकर उनको देख रही है।

रोहिणी निशाकर दास को देख कर सोचती थी, " यह कौन है? देखने ही से बोध होता है कि इस देश के आदमी नहीं हैं। वेश भूषा चाल ढाल से समझ में आता है, कोई बड़े आदमी हैं। देखने में भी सुपुरुष गोविन्द लाल से बढ़ कर—नहीं—ऐसा नहीं। गोविन्द लाल का रंग गोरा है—किन्तु इन का मुख और आंखें अच्छी हैं। विशेष कर के आंखें—आहा! कैसी आंखें हैं! यह कहां से आये? हलूद गांव के लोग तो नहीं हैं—यहां के तो मैं सब किसी को पहचानती हूं। क्या मैं उन के साथ दो बातें नहीं कर सकती हूं? बुराई ही क्या है—मैं तो कभी गोविन्दलाल से विश्वासघातिनी न हूंगी।"

रोहिणी इसी प्रकार सोचती थी, इसी समय निशाकर दास के मुख ऊंचा कर के ऊपर आंखें उठाने से चार आंखें एकट्ठी हुईं। आंखों आंखों से कोई बातें हुईं या नहीं, इस को हम लोग नहीं जानते—जानने पर भी कहने को जी नहीं चाहता—पर हम लोगों ने सुना है कि इस रीति से बातें हुआ करती हैं।

इसी समय बाबू को अवकाश में पाकर रूपा ने जनाया कि एक भला आदमी आप से साक्षात् करने के लिये आया है। बाबू ने पूछा, "कहां से आया है?"

रूपा। यह मैं नहीं जानता।

बाबू। बिना यह पूछे-तू खबर देने क्यों आया-?

रूपा ने देखा, मैं उल्लू बनता हूं। उपस्थित बुद्धि की सहायता से बोला,

"यह मैंने पूछा था, पर उन्हों ने कहा—बाबू से ही बतलाऊंगा।"

बाबू ने कहा, 'तो जा कर कह दे कि साक्षात् नहीं होगी।'

इधर निशाकरने विलम्ब देख कर सन्देह किया, कि समझ पड़ता है कि गोविन्द लाल ने साक्षात् करना स्वीकार नहीं किया। पर पापी आदमी के साथ भलमनसाहत क्यों की जाय? हम क्यों आप ही न ऊपर चले चलें?

इस प्रकार विचार कर के नौकर के वापस आने की प्रतीक्षा बिना कियेही, घरमें उन्होंने फिर प्रवेश किया। देखा नीचे सोना, रूपा कोई नहीं है। तब वह बेखटके सीढ़ी पर चढ़ कर जहाँ गोविन्दलाल, रोहिणी, और दानिशखां गायक मौजूद थे—वहीं जा धमके। रूपा ने उन को देख कर दिखला दिया कि यही बाबू आप से मिलना चाहते थे।

गोविन्दलाल ने बहुत ही बुरा माना। पर देखा कोई भला आदमी है। पूछा,

'आप कौन हैं?'

नि०। हमारा नाम रासबिहारी दे, है।

गो०। निवास ?

नि०। बराहनगर।

निशाकर दास जम कर बैठ गये। समझा था गोविन्दलाल बैठने के लिये कहेंगे।

गो०। आप किस को खोजते हैं ?

नि०। आप को।

गो०। आप हमारे घर में जो जबरदस्ती न घुस आकर कुछ ठहरते, तो नौकर के मुख से सुनते कि हम को भेंट करने का अवकाश नहीं है।

नि०। आप को बहुत कुछ अवकाश देखता हूं। घबड़ाने डराने से उठ जाऊंगा, जो मैं इस प्रकृति का आदमी होता, तो आप के पास न आता। जब मैं आया हूं, तो हमारी दो एक बातें सुन लेने से ही तमाम बखेड़े निबट जाते हैं।

गो०। न सुनें, यही हमारी इच्छा है। पर जो दो बातें कह करही आप शेष करें, तो कह कर मुझ से बिदा हूजिये।

नि०। दो बात ही कहूंगा। आप की स्त्री भ्रमर दासी अपने कुल विषयों का ठीका लिखना चाहती हैं।

दानिशखां गायक उस समय तमूरे पर नया तार चढ़ा रहा था। वह एक हाथ से तार चढ़ाने लगा। एक हाथ की उंगली पर गिनकर कहा, "एक बात हुई।"

नि०। मैं उस का ठीका लेना चाहता हूं। दानिशखां ने फिर उंगली पकड़ कर कहा, 'दो बात हुई।'

नि०। मै उस के लिये हरिद्राग्राम में आप के मकान पर गया था।

दानिश खां बोला, "दो बात छोड़ कर तीन बात हुई।"

नि०। उस्ताद जी सूअर, तू गिनता है क्या?

उस्ताद जी ने आंखें लाल कर के गोविन्दलाल से कहा— "बाबू साहब! इस बेतमीज़ आदमी को रुखसत कीजिये।"

पर बाबू साहब इस समय अन्यमनस्क हुए थे। कुछ न बोले।

निशाकर दास कहने लगे—"आप की स्त्री हम को कुल विषयों का ठीका लिख देने में स्वीकृत हुई हैं। पर आप की अनुमति लेना आवश्यक है। वह आप का ठिकाना भी नहीं जानतीं। चीठी पत्री भी लिखना नहीं चाहतीं। इस लिये आप के अभिप्राय जानने का भार मुझ पर पड़ा। मैं बहुत खोजने पीछे आप का ठिकाना जानकर, आप की अनुमति लेने आया हूं।"

गोविन्दलाल कुछ न बोले—बहुतही अन्यमनस्क! बहुत दिनों पीछे भ्रमर की बातें सुना, उन की वही भ्रमर! प्रायः दो बरस हुआ!!

निशाकर दास ने कुछ कुछ समझा। फिर बोले—"आप की भी जो अनुमति हो—तो एक सतर लिख दीजिये कि आप को कोई रोक टोक नहीं है। ऐसा होने से ही मैं यहां से उठ जाता हूं।"

गोविन्दलाल कुछ न बोले। निशाकर ने समझा, फिर कहना पड़ा। फिर सब बातों को अच्छी तरह समझा कर कहा। गोविन्दलाल ने एक बार चित्त को सम्हार कर सब बातें सुनीं। निशाकर की सब बातें ही झूठी हैं—इस को पाठक आप समझ गये

होंगे—पर गोविन्दलाल ने यह सब कुछ न समझा । पहले के उग्रभाव को छोड़कर कहा,

"हमारी अनुमति लेना अनावश्यक है । विषय हमारी स्त्री का है, हमारा नहीं है, बोध होता है इस को आप जानते हैं, उनकी जिसको इच्छा हो दे सकती हैं, मुझको इस में कुछ विधि निषेध नहीं है । मैं भी कुछ न लिखूंगा । बोध होता है कि अब आप मुझ को छुटकारा देवेंगे । "

निदान अब लाजभाव होकर निशाकर दास को उठना पड़ा । वह नीचे उतर आये । निशाकर के चले जाने पर गोविन्दलाल ने दानिशखां से कहा, "कुछ गाओ । "

दानिशखां ने प्रभु की आज्ञा पाकर, फिर तमूरे के सुर को ठीक ठाक कर के पूछा—'क्या गाऊं ? "

"जो जी में आवे । " यह कह कर गोविन्दलाल ने तबला उठाया । गोविन्दलाल पहले ही कुछ कुछ बजाने जानते, आज कल उत्तम बजाना सीख लिया था । पर आज दानिशखां के साथ उन की संगति नहीं हुई । सब ताल पर ही वह चूक जाने लगे । दानिशखां ने विरक्त होकर तमूरा फेंक कर गाना बन्द किया, और बोला, 'आज मैं बहुत परेशान हुआ । " तब गोविन्दलाल ने एक सितार लेकर बजाने की चेष्टा की । पर तमाम गतें भूल जाने लगीं, सितार फेंक कर उपन्यास पढ़ना आरंभ किया । पर जो पढ़ते थे उस का अर्थ उन को न बोध हुआ । तब किताब फेंककर गोविन्दलाल सोने के घर में गये । रोहिणी को न देखा, पर [illegible] पाचक [illegible] था । दरवाज़े से गोविन्दलाल ने सोना के

कहा, "मैं अब कुछ देर सोऊंगा, मैं जब तक अपने आप न उठूं, मुझ को कोई जगावे न।" यह कह कर गोविन्दलाल ने सोने के घर के दरवाज़े को बन्द किया। उस समय संध्या प्रायः उत्तीर्ण हो चली थी।

दरवाज़ा बन्द कर के गोविन्दलाल सोये नहीं। चारपाई पर बैठ कर दोनों हाथों से मुंह ढांककर रोना आरंभ किया।

क्यों रोये, यह मैं नहीं जानता। भ्रमर के लिये रोये, या अपने लिये रोये, यह नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है दोनों ही बातें हैं। हम लोग तो सिवाय रोने के गोविन्दलाल के लिये दूसरा उपाय नहीं देखते। भ्रमर के लिये रोने का रास्ता है, पर भ्रमर के पास फिर जानेका उपाय नहीं है। हरिद्राग्राम में फिर मुख नहीं दिखाया जा सकता, हरिद्राग्राम के पथ में कांटा पड़ा है। फिर सिवाय रोने के और कौन उपाय है?

---

# सप्तम परिच्छेद।

---

जब निशाकर आकर बड़े कमरे में बैठा, रोहिणी को पास-वाले कमरे में प्रवेश करना पड़ा था। पर केवल आंखों की ओट हुई—कानों की नहीं। जो कुछ बात चीत हुई—वह सब उस ने कान लगा कर सुना। वरन द्वार के परदे को कुछ हटा कर निशाकरदास को देखने लगी। निशाकरदास ने भी देखा कि परदे की आड़ से उन को एक पटलचारी आंख अवलोकन कर रही है।

रोहिणी ने सुना कि निशाकरदास अथवा रासबिहारी देहरिद्रा ग्राम से आया है। रूपा चाकर भी रोहिणी की तरह सब बातें खड़े हो कर सुनता था। निशाकर के उठ जाने पर रोहिणी ने परदे का आड़ से मुख निकाल कर उंगली के इशारे से रूपा को बुलाया। रूपा के पास आने पर, उस के कान में कहा, 'जो मैं कहूं वह तुझ से हो सकेगा? बाबू से सब बातें छिपानी होंगी। जो तू करेगा जो बाबू उस को न जान सकेंगे, तो तुझ को पांच रुपया इनाम दूंगी।'

रूपा ने मनही मन सोचा—आज उठ कर न जाने मैं ने किस का मुख देखा था—देखता हूं तो आज रुपया कमाने का दिन है। ग़रीब आदमी को दो पैसा मिलने ही से ठीक है। प्रगट में बोला,

'आप ने जो कहा वही कर सकूंगा. क्या आज्ञा होती है?'

रो०। इन बाबू के साथ आज उतर आ। वह हमारे बाप जहां रहते हैं, उसी देश से आये हैं। वहां का कोई समाचार हमने कभी नहीं पाया। इस लिये कितना रोती हूं। जो देश से एक आदमी आया है, तो उस से एक बार अपने लोगों की दो एक बातें पूछूंगी। बाबू ने तो रुष्ट हो कर उन को उठा दिया। तू जाकर उन को बैठा। ऐसी जगह बिठला, कि बाबू नीचे जावें, तो न देख सकें। दूसरा कोई भी न देखने पावे। मैं थोड़ा सा सूनसान होने पर उन के पास जाऊंगी। जो ठहरना न चाहें, तो चिरौरी मिन्नती करना।

रूपा ने इनाम का गंध पाया था—जो आज्ञा—कह कर दौड़ा।

निशाकर किस अभिप्राय से गोविन्दलाल को छलने के लिये आये थे, यह मैं नहीं कह सकता। पर वह नीचे आकर जैसा व्यवहार कर रहे थे, उस को बुद्धिमान् देखता तो बन पर बड़ा अविश्वास करता। वह घर में पैठनेवाले दरवाज़े के किवाड़, कील, कुबज़ा, इत्यादि को भली भांति देख भाल रहे थे। इसी बीच रूपा खानसामा आकर उपस्थित हुआ।

रूपा बोला, "क्या तमाकू पीने की इच्छा होती है ?"

नि०। बाबू ने तो दिया नहीं, क्या नौकर से मांगकर पीना होगा ?

रूपा। जी ऐसा नहीं है। कुछ आप से चुपचाप कहना है। ज़रा एकान्त में आइये। रूपा निशाकर को साथ ले कर अपने रहने के निर्जन मकान में लाया। निशाकर भी बिना कुछ पूछे पाछे उस के साथ गये। वहां पर कुछ निशाकर को बैठने के के लिये देकर, जो जो रोहिणी ने कहा था, रूपचांद ने वह सब कहा।

निशाकर ने आकाश के चांद को हाथ बढ़ा कर पाया। अपने अभिप्राय के सिद्ध करने का बहुत ही सहज उपाय उन्हों ने देख पाया। कहा, "भैया ! तुम्हारे मालिक ने तो हम को फटकार दिया—मैं उन के मकान में छिप कर कैसे रहूं ?"

रूपा। जी ! वह कुछ न जान सकेंगे। इस घर में वह कभी नहीं आते।

नि०। न आवें, पर जब तुम्हारी ठकुराइन नीचे आवेंगी, तब जो तुम्हारे बाबू सोचें कि वह कहां गई देखें ? यही सोच कर

पीछे पीछे आवें, या किसी प्रकार से जो हमारे पास उन को देख लेवें, तो हमारी दशा क्या होगी, बतलावो?

रूपचांद चुप रहा। निशाकर कहने लगे,

"इस उजाड़ में, घर में बन्द कर के जो हमारा खून करके कोई इस बाग में गाड़ देवे तो हमारी मा भी न जान सकती, बाप भी नहीं जान सकता। तब तुम्हीं हम को दश लाठी जमा दोगे इस लिये ऐसा काम नहीं कर सकते, अपनी ठकुराइन से समझा कर कहना कि ऐसा काम मैं नहीं कर सकता। पर यह भी कहना कि उन के चचा ने मुझ से कई बहुत बड़ी बातें इन से कहने के लिये कह दी थीं। मैं तुम्हारी ठकुराइन से उन बातों के कहने के लिये बहुत ही व्यस्त था। पर तुम्हारे बाबू ने हम को भगा दिया। इस लिये मैं न कह सका। अब मैं जाता हूं।"

रूपा ने देखा पांच रुपया हाथ से जाता है। बोला, "तो यहां न ठहरिये, पर क्या बाहर थोड़ा दूर पर आप नहीं ठहर सकते?"

नि०। मैं भी यही बात सोचता था, आने के समय तुम्हारे कोठी के निकट, नदी के किनारे पर एक बंधा हुआ घाट है, उस के पास दो बकुल के पेड़ मैं देख आया हूं। वह जगह तुम चीन्हते हो?

रूपा। चीन्हता हूं।

नि०। मैं जाकर वहीं बैठता हूं। संध्या हुई है—रात्रि होने पर वहां बैठने से कोई अच्छी तरह देख न सकेगा। तुम्हारी ठकुराइन जो वहां आ सकें, तो सब समाचारों को पावेंगी। जो कुछ गड़बड़

मालूम होगा, तो भाग कर मैं अपनी प्राणरक्षा कर सकूंगा। घर में बन्द कर के जो कुत्ते की मौत तुम लोग हम को मारा चाहते हो, वह मुझ को स्वीकार नहीं है।

आगे रूपा चाकर ने रोहिणी के पास जाकर निशाकर दास ने जो जो कहा था उस को निवेदन किया। इस समय रोहिणी के मन का भाव क्या था, उस को हम लोग नहीं कह सकते। जब आदमी आप अपने मन के भावों को नहीं समझ सकता—तो हम लोग कैसे कह सकते हैं कि रोहिणी के मन का भाव यही था? पर रोहिणी जो ब्रह्मानन्द को इतना चाहती, उनका सम्वाद लेने के लिये वह ऐसा दिग् विदिग् ज्ञानशून्य होगी ऐसा विश्वास हम लोगों को नहीं है। समझ पड़ता है और भी कुछ है। कुछ कुछ ताका ताकी ऐंचा पेंची हुई थी। रोहिणी ने देखा था कि निशाकर रूपवान् है—उसकी आंखें चीरे हुए परवल के समान हैं। रोहिणी ने देखा था कि मनुष्यों में निशाकरदास मनुष्यत्व में एक प्रधान पुरुष है। रोहिणी के मनही मन दृढ़ संकल्प था कि मैं गोविन्दलाल के साथ विश्वासघातिनी न हूंगी। पर विश्वासघात एक बात—और यह एक और बात है। समझ पड़ता है कि इस महापापिनी ने सोचा था कि "अनवधान मृग पाने पर कौन व्याधा, व्याधव्यवसायी होकर उसको शर बिद्ध न करेगा?" सोचा, नारी होकर जेय पुरुष देखने पर कौन नारी उसको जय करने की कामना न करेगी? बाघ जानवरों को मारता है—पर सब जानवरों को खाता नहीं। इसी प्रकार स्त्रियां पुरुष को जय करती हैं—केवल विजय पताका उड़ाने के लिये। बहुत आदमी मछलियां पकड़ते हैं—केवल

मछली पकड़ने की कामना से—मछली को खाते नहीं, फेंक देते हैं। कितने आदमी चिड़ियों का शिकार करते हैं--केवल शिकार की इच्छा से—शिकार कर के उसको छोड़ देते हैं । शिकार केवल शिकार के लिये है—खाने के लिये नहीं । समझ में नहीं आता कि इस में क्या रस है । रोहिणी ने विचार किया होगा, कि जो यह आयत लोचन मृग इस प्रसादपुर कानन में आपड़ा है—तो क्यों न मैं उस को शरविद्ध कर के छोड़ूं ? समझ में नहीं आता कि इस पापीयसी के पाप चित्त में कौनसी बात उदय हुई थी—पर रोहिणी स्वीकृत हुई, कि संध्या समय अवकाश पाते ही, छिपकर चित्रा के बंधे घाट पर अकेली वह निशाकरदास के पास जाकर अपने चचा का सम्वाद उनसे सुनेगी ।

रूपचांद ने यह बात आकर निशाकरदास से कही, निशाकर ने सुनकर, धीरे धीरे, हर्षोत्फुल्ल मन से गात्रोत्थान किया ।

—:::※:::—

## अष्टम परिच्छेद ।

रूपा के चले जाने पर निशाकरदास ने सोना को बुलाकर कहा, "तुम लोग बाबू के पास कितने दिन से हो ?"

सोना। यही—जितने दिन से यह यहां आये हैं उतने दिन से हूं।

नि०। तो अभी थोड़े दिन से ही हो ? पाते क्या हो ?

सो० । तीन रुपया महीना खाना कपड़ा ।

नि० । इतने थोड़े वेतन में तुम्हारे ऐसे खानसामा का काम कैसे चलता है ?

बात सुन कर बोना खानसामा पानीपानी होगया । बोला, क्या करूं, यहां पर और कहां नौकरी मिल सकती है ?

नि० । नौकरी की कौन चिन्ता है ? हम लोगोंके देश चलने पर तुम लोगों का बहुत कुछ लाभ हो सकता है । पांच, सात, दश, रुपया अनायासही महीने में पाओगे ।

सो० । अनुग्रह कर के जो आप साथ लेचलें ।

नि० । कैसे ले चलें, ऐसे मालिक की नौकरी छोड़ोगे ?

सो० । मालिक बुरे नहीं हैं—पर हमारी ठकुराइन बड़ी हराम-ज़ादी हैं !

नि० । धीरे धीरे हमने भी इस बात को जाना है । तो हमारे साथ चलनाही तुमने ठीक किया ?

सो० । हां ! ठीकही है ।

नि० । तो चलते समय अपने मालिक का कुछ भला कर चलो । पर बड़ी सावधानी का काम है । हो सकेगा ?

सो० । भला काम हो तो क्यों न हो सकेगा ?

नि० । तुम्हारे मालिक के लिये अच्छा है, पर मालकिन के लिये बहुतही बुरा ।

सो० । तो अभी कहिये, देर करने का काम नहीं है । इस में मैं बड़ा राज़ी हूं ।

नि०। तुम्हारी ठकुरानी ने मुझ से कहला भेजा है, कि जो मैं विज्ञा के बंधेहुए घाट पर बैठा रहूंगा, तो रात को वह मुझसे छिप कर साक्षात् करेंगी। समझा? मैंने भी इस बात को स्वीकार किया है। मेरा अभिप्राय है कि तुम्हारे मालिक की आंखें मैं खोल दूं। तुम धीरे धीरे अपने मालिक को ये सब बातें बतला आ सकते हो!

सो०। अभी—उस पापिनी के मरने से ही बचता हूं।

नि०। अभी नहीं, इस दम मैं घाट पर जाकर बैठता हूं। तुम होशयार रहो। जब देखना कि ठकुराइन घाट की ओर चलीं, तब जाकर अपने मालिक से कह देना। रूपा कुछ न जानने पावे। पीछे हमारे पास पहुंचो।

'जो आज्ञा' कहकर निशाकर के पैर की धूल सोना ने ग्रहण की। तब निशाकर हिलते डोलते गजेन्द्रगमन से विज्ञा-तीरशोभी सोपानावलियों पर आकर बैठे। अंधकार में नक्षत्र छाया प्रदीप्त चित्रावारि चुपचाप बह रहा है। चारों ओर कुत्ते शृगाल बहुत प्रकार का शब्द कर रहे हैं। कहीं दूर वर्त्ती नौका पर बैठकर केवट सब ऊंचे स्वर से श्यामा विषय गान करते हैं। इस के अतिरिक्त इस विजन प्रान्तर में और कोई शब्द नहीं सुनाआता है। निशाकरदास वह गीत सुनते हैं और गोविन्दलाल के वासगृह के छिद्रकृत-वातायन निःसृत दीपालोक को अवलोकन करते हैं, और मनहीमन सोचते हैं—'मैं कैसा नृशंस हूं! एक स्त्री का सर्वनाश करने के लिये कितना कौशल करता हूं! अथवा इस में नृशंसता ही क्या है! दुष्ट का दमन अवश्यही करना चाहिये।

जब बंधु की कन्या के जीवन की रक्षा के लिये इस काम को हमने बंधु के निकट स्वीकार किया है, तो अवश्य करूंगा, पर हमारा मन इस से प्रसन्न नहीं है। रोहिणी पापिनी है, उस को पाप का दंड दूंगा, पापस्रोत का रोध करूंगा; इस में अप्रसन्नता ही क्या है? कहा नहीं जा सकता। समझ पड़ता है कि सीधे रास्ते चलने पर मुझको इतनी चिन्ता न करनी पड़ती। मैं टेढ़े रास्ते पर चलता हूं, इसीलिये इतना संकोच होता है। फिर पाप पुण्य का दंड पुरस्कार देनेवाला मैं कौन? हमारे पाप पुण्य का दंड पुरस्कार जो करेंगे, रोहिणी के विचारकर्ता भी वही हैं, मैं कह नहीं सकता, जान पड़ता है उन्हों ने ही मुझ को इस काम के लिये नियोजित किया है। क्या मालूम—

त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन।
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि॥

इसी प्रकार चिन्ता करते करते पहर रात बीत गई। तब निशाकर ने देखा, चुपचाप पैर रखती हुई रोहिणी पास आ कर खड़ी हुई। निश्चय को सुनिश्चय करने के लिये निशाकर ने पूछा "कौन है?"

रोहिणी भी निश्चित को सुनिश्चित करने के लिये बोली "तुम कौन हो?"

निशाकर बोले, "मैं रासबिहारी दे"

रोहिणी बोली, "मैं रोहिणी"

नि॰ 'इतनी रात क्यों हुई?

रो० । बिना अच्छी तरह देखे आ तो आ नहीं सकती थी । न जाने कौन कहां से देख लेता । सो आप को बड़ा कष्ट हुआ ।

नि० । कष्ट हो न हो, पर मनहीं मन डरता था, कि मालूम होता है तुम मुझ को भूल गई ।

रो० । मैं जो भूलनेवाली होती, तो हमारी दशा ऐसी क्यों होती ? एक जन को जो न भूल सकी थी, इस लिये इस देश में आई और आज तुम को न भूल सकी इस लिये यहां आई ।

ये बातें वह कह रही थी, कि इसी बीच किसी ने पीछे से आकर रोहिणी के गले को गह कर पकड़ा । रोहिणी ने चौंक कर पूछा, " कौन है रे ? "

गंभीर स्वर से किसी ने उत्तर दिया, ' तुम्हारा यम ' रोहिणी ने पहचाना कि गोविन्दलाल हैं । तब उस ने आसन्न बिपद समझ कर चारों ओर अंधेरा देखा । रोहिणी डर से कांपती हुई आवाज़ से बोली,

"छोड़ो ! छोड़ो !! मैं किसी बुरे अभिप्राय से यहां नहीं आई हूं । मैं जिस लिये आई हूं, आप चाहिये तो इन्हीं बाबू से ही पूछ देखिये । "

यह कह कर रोहिणी ने जहां निशाकर दास बैठे हुए थे, उसी ओर उंगली उठा कर दिखलाया । देखा कोई वहां नहीं है । निशाकर दास गोविन्दलाल को देख कर पलभर में ही न जानें कहां सरक गया था । रोहिणी चकित होकर बोली, " क्यों ! यहां तो कोई कहीं नहीं है ! "

गोविन्दलाल बोले, "यहां कोई नहीं है । हमारे साथ घर आओ ।"

रोहिणी दुखित चित्त से धीरे धीरे गोविन्दलाल के साथ घर फेर आई ।

---

# नवम परिच्छेद ।

---

घर फिर आकर गोविन्दलाल ने नौकरों को मना किया, 'कोई ऊपर न आना' ।

उस्ताद जी घर चले गये थे ।

गोविन्दलाल ने रोहिणी को लेकर एकान्त शयनगृह में प्रवेश कर के दरवाज़ा बन्द किया । रोहिणी, सामने नदीस्रोतविकम्पिता वेतसी की भांति खड़ी होकर कांपने लगी । गोविन्दलाल मृदुस्वर से बोला, "रोहिणी !"

रोहिणी बोली, "क्यों ?"

गो० । तुम्हारे साथ मेरी दो चार बातें हैं ।

रो० । क्या ?

गो० । तुम हमारी कौन ?

रो० । कोई नहीं, जितने दिन चरणों में रक्खो उतने दिन दासी । नहीं तो कोई नहीं ।

गो० । पैर छोड़कर मैं ने तुमको सर पर रक्खा था । राजा के ऐसा ऐश्वर्य्य राजा से अधिक सम्पद, अकलंक चरित्र,

अत्यज्यधर्मा, सब तुम्हारे लिये हम ने त्याग किया। तुम क्या वही रोहिणी हो—जिस के लिये मैं यह सब छोड़ कर वनवासी हुआ? तुम क्या वही रोहिणी हो, जिस के लिये मैं ने भ्रमर—संसार में अतुल, चिन्ता में सुख, सुख में अतृप्ति, दुःख में अमृत जो भ्रमर, उसको मैं ने त्याग किया?

यह कह कर गोविन्दलाल और तुरत क्रोध का वेग सम्बरण न कर सके। रोहिणी को पदाघात किया।

रोहिणी बैठ गई। कुछ न बोली। रोने लगी। पर आंख के आंसुओं को गोविन्दलाल ने न देख पाया।

गोविन्दलाल बोले, "रोहिणी खड़ी हो"

रोहिणी खड़ी हुई।

गोविन्दलाल। तू एक बार मरने गई थी। क्या फिर मरने के लिये तुझ में साहस है?

रोहिणी उस समय मरने की इच्छा करती थी। अतिकातर स्वर से बोली, "इस घड़ी, और मरना, क्यों न चाहूंगी? कपाल में जो था, वह हुआ।"

गो०। तो खड़ी हो, हिलना मत।

रोहिणी बदस्तूर खड़ी रही।

गोविन्दलाल ने पिस्तौल का बक्स खोला। पिस्तौल बाहर निकाला। पिस्तौल भरा था। भरा ही रहता।

पिस्तौल लाकर रोहिणी के सामने रख कर, गोविन्दलाल बोले, "क्यों, मर सकेगी?"

रोहिणी चिन्ता करने लगी—जिस दिन अनायास बिना किसी कष्ट के वारुणी के जल में डूब कर मरने गई थी, आज वह दिन रोहिणी भूली। वह दुख नहीं रहा, इसलिये वह साहस भी न रहा। सोचा, "मरें क्यों? यह छोड़ देवें, देवें। इनको कभी न भूलूंगी, किन्तु इसी लिये मरूंगी क्यों? इनको जो मन ही मन चिन्ता करूंगी, दुख की दशा में पड़ने पर इनको जो याद करूंगी, इस प्रसादपुर के सुखराशि को चिन्तन करूंगी, यह भी तो एक सुख है, यह भी तो एक आशा है, मरें क्यों?"

रोहिणी बोली,

"मरूंगी नहीं, मारना मत। चरणों में न रक्खो, बिदा दो।"

गोविन्दलाल। देता हूं।

यह कह कर गोविन्दलाल ने पिस्तौल उठा कर रोहिणी के ललाट की ओर लक्ष्य किया।

रोहिणी रो उठी। बोली, "मारना न! मारना न! हमारा नवीन वयस है, नूतन सुख है। मैं अब तुम्हारे सामने न आऊंगी, तुम्हारे रास्ते में कंटक न हूंगी, अब चली। हम को न मारना! न मारना!!"

गोविन्दलाल के पिस्तौल में खट् कर के शब्द हुआ, पीछे भारी शब्द, तिस के पीछे सब अन्धकार! रोहिणी गतप्राणा हो कर भूपतिता हुई।

गोविन्दलाल पिस्तौल पृथ्वी में फेंक कर अति द्रुत वेग से घर से बाहर हो गये।

पिस्तौल का शब्द सुनकर कृपा इत्यादि नौकर सब देखने के लिये आये। देखा, बालक नखरविच्छिन्न पद्मिनीवत् रोहिणी का मृतदेह पृथ्वी में पड़ा हुआ है। गोविन्दलाल कहीं नहीं हैं।

---

# दशम परिच्छेद।

—*:*:*:*—

## दूसरा साल।

उसी रात में चौकीदार ने थाने में आकर सम्वाद दिया, कि प्रसादपुर की कोठी में खून हुआ है। सौभाग्यवशतः थाना वहां से छः कोश की दूरी पर था। दूसरे दिन दारोगा के आते २ पहर दिन चढ़ा। आकर वह खून की छानबीन में प्रवृत्त हुये। रीति अनुसार उपस्थित दशा और लाश के विषय में जांच कर के उन्हों ने रिपोर्ट भेजा। पीछे रोहिणी के मृत देह को बांध छान कर गाड़ी पर लदवाया, और चौकीदार के साथ उस की चालान डाक्टरखाने में किया। पीछे नहा कर भोजनादिक किया। तब निश्चिन्त हो कर अपराधी की खोज में दत्तचित्त हुये। अपराधी कहां? गोविन्द लाल रोहिणी को घायल कर के ही घर से बाहर हुये थे। फिर अब तक उस में न आये! एक रात एक दिन का अवकाश पाकर गोविन्दलाल कहां कितनी दूर गये, उस को कौन बतला सकता है। किसी ने उन को देखा नहीं, किधर भागे किसी ने जाना नहीं। उन का नाम तक कोई नहीं जानता था।

गोविन्दलाल ने प्रसादपुर में कभी अपना नाम धाम प्रकाशित नहीं किया था। वहां पर चुन्नीलाल दत्त अपना नाम लोगों से बतलाया था। किस देश से आये थे इस को नौकर तक न जानते थे। दारोगा कुछ दिन तक इसे उसे पकड़ कर इज़हार लिखते फिरे। पर गोविन्दलाल का कुछ पता न लगा सके। अंत में उन्हों ने 'असामी फ़रार', लिख कर एक ख़ातमा रिपोर्ट दाखिल किया।

तब यशोहर से फ़ज़लखां नामक एक अन सुदक्ष डिटेक्टिव इन्सपेक्टर भेजा गया। फ़ज़लखां की अनुसंधानप्रणाली को सविस्तर लिखने का प्रयोजन हम लोगों को नहीं है। कईएक चीठियां उन्हों ने घर की तलाशी ले कर पाईं। उन से उन्हों ने गोविन्दलाल के प्रकृत नाम को अवधारित किया। कहना बाहुल्य मात्र है कि उन्हों ने कष्ट उठाकर छद्मवेश में हरिद्रा ग्रामपर्यन्त गमन किया। पर गोविन्दलाल हरिद्राग्राम न गये थे, इसलिये फ़ज़लखां वहां गोविन्दलाल को न पाकर नाकामयाब वापस फिरा।

इधर निशाकरदास उस कराल समान रजनी में विपन्ना रोहिणी को छोड़ कर प्रसाद पुर के बाज़ार में अपने डेरे पर आकर उपस्थित हुये। वहां पर माधवीनाथ उन की प्रतीक्षा कर रहे थे। माधवीनाथ गोविन्दलाल से सुपरिचित होने के कारण उन के पास न गये थे। इस दम निशाकर ने आकर उन से सब हाल पूरा पूरा कहा, सुनकर माधवीनाथ बोले, 'काम अच्छा नहीं हुआ, ख़ून ख़राबा की कौन नौबत पहुंचा चाहती है, इस का परिणाम क्या होता है, इस बात के जानने के लिये

दोनों आदमी प्रसादपुर के बजार में, छिपे २ बहुत सावधानी के साथ ठहर गये। सबेरे ही सुना कि चुन्नीलाल दत्त अपनी स्त्री को मारकर कहीं भाग गये। वह लोग विशेष भीत और शोकाकुल हुये। भय गोविन्दलाल के लिये था। पर अंत में देखा कि दारोगा कुछ न कर सके। गोविन्दलाल का कुछ पता भी कहीं न चला। तब उन लोगों ने एक प्रकार से कुछ निश्चिन्त हो कर किन्तु अत्यन्त विषरणभावसे घर की ओर प्रस्थान किया।

—*:*:*—

## एकादश परिच्छेद।

### तीसरा साल।

भ्रमर मरी नहीं। क्यों नहीं मरी इस को नहीं जानता। इस संसार में विशेष दुःख यही है कि मरण के उपयुक्त समय में कोई नहीं मरता। सभी असमय मरते हैं। भ्रमर जो नहीं मरी समझ पड़ता है इस का यही कारण है। जो हो भ्रमर ने उत्कट रोग से कुछ कुछ छुटकारा पाया है। भ्रमर फिर पित्रालय गई। माधवीनाथ जो गोविन्दलाल का सम्वाद लाये थे, उन की स्त्री ने उस को बहुत छिपा कर अपनी बड़ी लड़की अर्थात् भ्रमर की भगिनी से कहा था। उन की बड़ी लड़की ने उस को बहुत छुपे छुपे भ्रमर से कहा। इस समय भ्रमर की जेठी बहिन यामिनी उस से कह रही थी, "अब वह क्यों हलुद गांव में आकर नहीं रहते। क्योंकि मैं समझती हूं कि जो वह ऐसा करेंगे, तो कोई

आपदा न रह जावेगी।"

भ्र०। आपदा क्यों न रहेगी?

यामिनी। वह प्रसादपुर में नाम बदल कर रहते थे। वही जो गोविन्दलाल बाबू हैं, यह तो कोई नहीं जानता।

भ्र०। सुना नहीं कि हलूदगांव में भी पुलिस के लोग उन की खोज में आये थे? तो फिर कोई कैसे नहीं जानता?

या०। हम ने मान लिया कि वह लोग जानते हैं। पर यहां आकर अपने विषय पर अधिकार कर लेने से, रुपया हाथ में आवेगा। बाबा कहते हैं पुलीस रुपया के वश है।

भ्रमर रोने लगी—बोली, "यह सलाह उन को कौन देगा? कहां उन से भेंट होगी, जो यह सलाह उन को दूंगी। बाबा ने एक बार खोज कर उन का पता लगाया था—क्या एक बार और खोज कर सकते हैं?"

या०। पुलिस के लोग कैसे सन्धानी हैं—वही लोग जब खोज खोज खोज लगा कर उन का पता नहीं पाते हैं, तो बाबा किस प्रकार पता लगा सकेंगे? पर मैं समझती हूं कि गोविन्दलाल बाबू आप ही हलूदगांव में आ बैठेंगे। प्रसादपुर की उस घटना के बाद ही जो वह हलूदगांव में दिखाई पड़ते, तो वही जो प्रसाद-पुर के बाबू हैं, इस बात का लोगों को पूरा विश्वास होता। इसी लिए, इतने दिन वह नहीं आये। अब आवेंगे, ऐसा भरोसा किया जा सकता है।

भ्र०। मुझ को कोई भरोसा नहीं है।

या०। जो आवेंही।

भ्र०। जो यहां आने से उन का मंगल हो तो देवता लोगों से मैं काय मन वचन से प्रार्थना करती हूं, कि वह आवें। जो न आने से उन का मंगल हो तो, काय मन वचन से प्रार्थना करती हूं, कि फिर इस जन्म में वह हलूदगांव में न आवें। जिस से वह निरापद रहैं, ईश्वर उन को वही मति देवें।

या०। हमारी समझ में बहिन! तुम्हारा वहीं रहना उचित है। क्या जानें वह किसी दिन अर्थ के अभाव से वहां आवें, और अमलों का विश्वास न कर के उन लोगों से न मिलें, तो तुम को न पाकर वह वैसे ही वापस चले जावेंगे।

भ्र०। मैं बीमार हूं। कब मरूं कब जीऊं—मैं वहां किस के सहारे रहूंगी?

या०। जो तुम कहो तो हमलोगों में से कोई वहां चले—पर तुम्हारा वहीं रहना ठीक है।

भ्रमर ने सोच कर कहा, :"अच्छा! मैं हलूदगांव जाऊंगी। मा से कहना, कलह ही हम को भेज देवें। इस घड़ी तुम लोगों में से किसी को न आना होगा। पर हमारे विपद के दिन तुम लोग दिखाई देना।"

या०। विपद कैसी भ्रमर?

भ्रमर रोते रोते बोली, 'जो वह आवें?'

या०। सो कैसी विपद भ्रमर? तुम्हारा खोया हुआ धन जो फिर मिले, तो इस से बढ़ कर आनन्द की बात दूसरी कौन है?

भ्र०। आनन्द की बात जो जो! आनन्द की बात अब हमारे लिए क्या है?

भ्रमर और कुछ न बोली। उस के जी की बातों को यामिनी कुछ समझ न सकी। भ्रमर के मर्म्मान्तिक रोदन को, यामिनी कुछ हृदयगम न कर सकी। भ्रमर ने मानस की आंखों से धूम-मय चित्रवत्, इस काण्ड का जो शेष होगा उस को देख पाया। यामिनी कुछ न देख सकी। यामिनी ने नहीं समझा कि गोविन्द-लाल हत्याकारी हैं। पर भ्रमर उस को नहीं भूल सकती है।

## द्वादश परिच्छेद।

भ्रमर फिर ससुरार गई। कदाचित् स्वामी आवें—नित्य प्रतीक्षा करने लगी। पर स्वामी तो न आया। दिन गया, महीना गया पर स्वामी न आया। कोई सम्बाद भी न आया। इसी तरह तीसरा साल भी बीत गया। गोविन्दलाल न आये। तिस पीछे चौथा साल भी बीत गया, पर गोविन्दलाल न आये। इधर भ्रमर की बीमारी बढ़ने लगी, दमे का रोग—नित्य शरीर क्षय—यम अग्रसर—समझता हूं इस जन्म में अब फिर देखा देखी न हुई।

तिस पीछे पांचवां साल आरंभ हुआ। पांचवें साल एक बहुत बड़ा बखेड़ा उपस्थित हुआ। हरिद्राग्राम में सम्बाद आया कि गोविन्दलाल पकड़े गये। सम्बाद आया कि बैरागी के बेश में गोविन्दलाल श्रीवृन्दावन धाम में बास करते थे। वहीं से पकड़ कर पुलीस उन को यशोहर में लाई है। यशोहर में उन का बिचार होगा।

जनरव द्वारा भ्रमर ने इस सम्वाद को सुना । जनरव का सूत्र यह था । गोविन्दलाल ने भ्रमर के दीवान जी को चीठी लिखी "मैं जेलखाने चला—हमारे बाप दादे के धन में से हमारी रक्षा के लिये कुछ व्यय करना तुम लोगों को समझ में जो उचित जान पड़े—तो उसका यही समय है। मैं इस योग्य नहीं हूं । मुझे बचने की इच्छा भी नहीं है। पर फांसी न पड़ने पाऊं यही हमारा भिक्षा है। जनरव द्वारा इस बात को भीतर जतलाना, मैंने चीठी लिखी है यह बात प्रगट न करना।" दीवान जी ने चीठी की बात प्रगट नहीं की—जनरव कहकर सम्वाद भीतर भेजा ।

भ्रमर ने सुनतेही बाप के लाने के लिये आदमी भेजा । सुनते मात्र माधवीनाथ कन्या के पास आये । भ्रमर ने उनको नोट और कागजों द्वारा पचास हज़ार रुपया बाहर करके दिया, और आंखों में आंसू भरकर कहा, "बाबा इस दम जो करना हो करो—देखना मुझको आत्महत्या न करनी पड़े ।"

माधवीनाथ ने रोते रोते कहा, "बेटी ! निश्चिन्त रहना—मैं आज ही यशोहर चला । कोई चिन्ता न करना । गोविन्दलाल ने ही खून किया है—इसका कोई प्रमाण नहीं है । मैं प्रतिज्ञा कर जाता हूं, कि तुम्हारा अरतालीस हज़ार रुपया बचा लाऊंगा—और अपने जामाता को देश में वापस लाऊंगा"।

माधवीनाथ ने तब यशोहर की ओर यात्रा की । सुना कि प्रमाण की दशा बहुतही बुरी है । इनसपेक्टर फज़लखां ने मामिले की छानबीन करके गवाह किये थे । पर उन्हों ने रूपा सोना इत्यादि का जो सब सच्चा मामिला जानते थे, खोज कर पता न पाया ।

सोना निशाकर के पास था—रूपा किस देश गया था, यह कोई जानता न था। प्रमाण की ऐसी बुरी दशा देख कर, कुछ नकद देकर फ़ज़ल खां ने तीन गवाह तैयार किये थे। गवाहों ने मजिस्ट्रेट साहेब के पास कहा, कि हम लोगों ने अपनी आंखों देखा कि गोविन्दलाल ने जिसका दूसरा नाम चुनीलाल है, अपने हाथ से पिस्तौल मार कर रोहिणी का खून किया था। हमलोग उस घड़ी वहां गाना सुनने गये थे। मजिस्ट्रेट साहब अहल विलायत थे—सुशासन के लिये सदा गवर्नमेन्ट से प्रशंसित होते रहे थे—उन्हों ने इसी प्रमाण पर निर्भर करके, गोविन्दलाल को सेशनसुपुर्द किया। जब माधवीनाथ यशोहर में पहुंचे, तब गोविन्दलाल जेल में सड़ रहे थे। माधवीनाथ पहुंच कर सब हाल पूरा पूरा सुन कर बहुत ही दुखी हुये।

वह गवाहों के नाम धाम का पता लगा कर उनके घर गये। उन सबों से कहा, "भैया! मजिस्ट्रेट साहब के यहां जो कुछ सो कहा। अब जज साहब के यहां कुछ दूसरा ही कहना होगा। कहना होगा कि हमलोग कुछ नहीं जानते। यह पांच पांच सौ रुपया नगद लो। अपराधी के छूटजाने पर और पांच पांच सौ दूंगा।"

गवाह सब बोले, "झूठ कहने के अपराध में हमलोग मारे जो पड़ेंगे?"

माधवीनाथ ने कहा, "डर नहीं है। हम रुपया खर्च कर के गवाहों द्वारा साबित करावेंगे कि फ़ज़ल खां ने तुम लोगों को मार पीट कर मजिस्ट्रेट साहब के यहां झूठी गवाही दिलायी है।"

गवाहों ने चौदह पुरुषों के बीच कभी हजार रुपया इकट्ठा न देखा था, इसलिये उसी दम वह सब राजी हुये।

खोन में विचार का दिन उपस्थित हुआ। गोविन्दलाल कठ-घरे के भीतर थे। पहले गवाह के उपस्थित होने पर हलफ़ दिया गया। वकील सरकार ने पूछा—

तुम इस गोविन्दलाल को जिसका दूसरा नाम चुन्नीलाल है पहचानते हो?

ग०। ऐं—नहीं—याद तो नहीं आता।

व०। कभी देखा है?

ग०। नहीं।

व०। रोहिणी को पहचानता था?

ग०। कौन रोहिणी?

व०। प्रसादपुर की कोठी में जो थी।

ग०। मैं कभी अपने बाप दादे के समय से प्रसादपुर की कोठी में नहीं गया।

व०। रोहिणी कैसे मरी?

ग० सुना है कि आत्महत्या किया था।

व०। इस के मामिले में कुछ जानता है?

ग०। कुछ नहीं।

वकील तब, गवाह ने जो मजिस्ट्रेट साहब के यहां इज़हार दिया था, उसको पढ़कर गवाह को सुनाकर पूछा, "क्या तुम ने मजिस्ट्रेट साहब के यहां इन सब बातों को कहा था?"

ग०। हां। कहा था।

व० । जो कुछ नहीं जानता था, तो क्यों कहा ?

ग० । मारों की चोट से । फज़लखां ने मार मार कर हमलोगों के शरीर में कुछ बाकी न छोड़ा ।

यह कह कर गवाह ने कुछ रो दिया । दो चार दिन पहले सगे भाई के साथ खेत के लिये झगड़ा कर के मार पीट किया था, उसका दाग़ था । गवाह ने चेहरे पर बिना किसी मैल के उन दागों को, फज़लखां की मार पीट का दाग़ कह कर जज साहब को दिखलाया ।

वकील सरकार ने हतप्रभ होकर दूसरे गवाह को पुकरवाया । दूसरे गवाह ने भी ऐसा ही बयान किया । रांगचित्र * का गोंद लगाकर पीठ में घाव कर के आया था—हज़ार रुपये के लिये सब किया जा सकता है । उसने उसको जज साहब को दिखलाया ।

तीसरा गवाह भी इसी तरह गुज़रा । तब जज साहब ने प्रमाण का अभाव देख कर अपराधी को छोड़ दिया । और फज़लखां के ऊपर अत्यन्त असन्तुष्ट होकर उस के आचरण के विषय में उस का दंड करने के लिए मजिस्ट्रेट साहब को लिखा ।

विचार के समय गवाहों की ऐसी सफलता देख कर गोविन्दलाल विस्मित होते थे । पर अब भीड़ के भीतर माधवीनाथ को देखा, तभी सब समझ गये । छूट जाने पर भी और एक बार उन को जेल जाना पड़ा । वहां अब जेलर परवाना पावेगा तभी छोड़ेगा । जब वह जेल फिर चले, तब माधवीनाथ ने उनके निकट आकर कान में कहा,

* एक प्रकार का वृक्ष । अ० सिं० ।

'जेल से छूट कर हमारे साथ भेंट करना, हम अमुक स्थान पर ठहरे हुये हैं।'

पर गोविन्दलाल जेल से छूट कर माधवीनाथ के पास न गये। कहां गये किसी ने न जाना। माधवीनाथ ने चार पांच दिन उन का पता लगाया। पर कुछ ठिकाना न पाया।

अन्त को अकेले ही हरिद्राग्राम में वापस आये।

---

# त्रयोदश परिच्छेद।

## छठा साल।

माधवीनाथ ने आकर भ्रमर को सम्वाद दिया! गोविन्दलाल छूट गया, पर घर नहीं आया, कहां चला गया, कुछ पता भी न लगा। माधवीनाथ के चले जाने पर भ्रमर बहुत रोई। पर क्यों रोई नहीं कहा जा सकता।

इधर गोविन्दलाल छूटते ही प्रसादपुर गये। आकर देखा, प्रसादपुर के घरों में कुछ नहीं है, कोई नहीं है। सुना कि अट्टालिका में जो उन की द्रव्य सामग्री थी, उस को कुछ लोग मिल कर लूट ले गये थे—जो बच गई थी, लावारिस होने कारण बेच दी गई थी, केवल घर पड़ा हुआ है—पर उस के चौकठ और किवाड़ तक को लोग निकाल ले गये थे। प्रसादपुर के बाज़ार में दो एक दिन रह कर गोविन्दलाल ने घर के बचे हुये ईंट काठ को पानी के दामों एक आदमी के हाथ बेच कर जो कुछ पाया, उस

को ले कर वह कलकत्ते चले गये।

कलकत्ते में बहुत छिपे छिपे साधारण अवस्था में गोविन्दलाल दिन बिताने लगे। प्रसादपुर से बहुत थोड़ा रुपया लाये थे। वह एक साल में चुक गया। अब दिन बीतना संभव न जान पड़ा। तब छः बरस पीछे, गोविन्दलाल ने मन में सोचा, भ्रमर को एक चिट्ठी लिखूंगा।

गोविन्दलाल कलम दावात कागज़ ले कर भ्रमर को चिट्ठी लिखने बैठे। हम लोग सच्ची बात लिखेंगे—गोविन्दलाल चिट्ठी लिखना आरम्भ कर के रोये। रोते रोते याद आया, भ्रमर जो आज तक बची है, इसी का ठिकाना क्या? किस को चिट्ठी लिखूंगा? तिस पीछे सोचा, एक बार लिख कर ही देखें। न होगी, तो हमारी चिट्ठी ही फिर आवेगी। तभी हम जानेंगे कि भ्रमर अब जीती नहीं है।

क्या लिखूं, इस बात को गोविन्दलाल ने कब तक सोचा, नहीं कहा जा सकता। पीछे सोचा, जिस को बिना अपराध हम ने जन्म भर के लिये त्याग किया, उस को जो हो, वही लिखने से हो कौन सी अधिक क्षति होगी? गोविन्दलाल ने लिखा।

"भ्रमर!

छः साल पीछे यह नीच फिर तुम को चिट्ठी लिखने बैठा है। इच्छा हो पढ़ना, न इच्छा हो, बिना पढ़े ही फाड़ कर फेंक देना।

मेरे भाग्य में जो जो हेर फेर हुये हैं, समझ पड़ता है तुम ने सभी सुना होगा। जो कहूं, कि यह हमारे कर्म का फल था,

तो तुम सोच सकती हो, कि मैं तुम्हारे मन की बात कहता हूं। क्योंकि मैं आज तुम्हारा भिखारी हूं।

मैं अब कंगाल हूं। तीन बरस भीख मांग कर दिन बिताया है। तीर्थस्थान में था, वहां भिक्षा मिलती। पर यहां भिक्षा नहीं मिलती—इस लिये मैं बिना अन्न के मर रहा हूं।

हमारे जानें का एक स्थान था—काशी में मा की गोद में। मा को काशी प्राप्त हुई है, बोध होता है तुम इस को जानती होगी। इस लिये अब हम को कोई ठौर नहीं है—अब हमारे लिये अन्न नहीं है।

इसी लिये हम ने मन में सोचा है, कि फिर हरिद्रा ग्राम में अपने कालिख पुते मुंह को दिखलावेंगे—नहीं तो खाने को न मिलेगा। जो तुम को बिना अपराध छोड़ कर परदारनिरत हुआ, जिस ने स्त्रीहत्या तक की उस को अब और कौन सी लाज है? जो अन्नहीन, उस के लिए कैसी लज्जा? हम अपने कालिख पुते मुंह को दिखला सकते हैं, पर तुम विषयाधिकारिणी हो—घर तुम्हारा है—हम ने तुम से बैरिता की है—क्या तुम हम को रहने के लिए स्थान दोगी?

पेट की विपत्ति में पड़ कर मैं तुम्हारा आश्रय चाहता हूं—क्या न दोगी?

चिट्ठी लिख कर लाह मोहर कर के गोविन्दलाल ने चिट्ठी को डाक में छोड़ा। यथा समय चिट्ठी भ्रमर के हाथ में पहुँची।

चिट्ठी पाते ही भ्रमर ने लिखना पहचाना। चिट्ठी खोल कर कांपते कांपते भ्रमर ने सोने के घर में आकर दरवाज़ा बन्द

किया। तब भ्रमर ने एकान्त में बैठ कर आंखों की सहस्रधारा को पोछते पोछते, उस चिट्ठी को पढ़ा। एक बार, दोबार, सौबार, सहस्र बार पढ़ा। उस दिन भ्रमर ने फिर दरवाज़ा न खोला। जो उन को खाने के लिए पुकारने आया, उस से उन्हों ने कहा, हम को तप चढ़ा है, मैं न खाऊंगी। भ्रमर को सदा तप चढ़ता, इस लिए सभी ने विश्वास किया।

दूसरे दिन बिना रात भर सोये जब भ्रमर चारपाई पर से उठी, तब उस को यथार्थ ही तप चढ़ आया था। किन्तु इस काल चित्त स्थिर—विकार शून्य था। चिट्ठी का जो उत्तर लिखेंगी, वह पहले ही ठीक हो गया था। भ्रमर ने उस को सहस्रों बार सोच कर ठीक किया था। अब फिर सोचना न पड़ा। पाठ तक ठीक कर छोड़ा था।

"सेविका" पाठ न लिखा। पर स्वामी सब अवस्था में ही प्रणाम के योग्य है इस लिये लिखा।

"प्रणामाशत सहस्र निवेदनञ्च विशेष" पीछे लिखा,

"आप की चिट्ठी मैं ने पाई। विषय आप का है। हमारा होने पर भी हम ने उस को आप को दिया है। जाने के समय आप ने उस दानपत्र को फाड़ दिया था शायद यह बात आप को याद होगी। पर सरिश्ता रजिस्टरी में उस की नक़ल मौजूद है। हम ने जो दान लिखा है, वह सिद्ध है, अब भी बलवत है। उस में किसी प्रकार का पर फेर नहीं हुआ है।

इस लिए आप बे अटक हरिद्राग्राम में आकर अपनी निज-सम्पत्ति को दखल कर सकते हैं। घर आप का है।

और इस पांच बरस में मैं ने बहुतसा रुपया जमा किया है। वह भी आपका है। आकर उसको भी ग्रहण कीजियेगा।

इस रुपये में से कुछ मैं आप से मांगती हूं। आठ हज़ार रुपया मैं ने उसमें से लिया। तीन हज़ार रुपये में गंगा के किनारे, मैं एक मकान बनवाऊंगी। पांच हज़ार रुपये में हमारा जीवन निर्वाह होगा।

आप के आने के लिये सब बन्दोबस्त कर के मैं बाप के यहां आऊंगी। जितने दिन मेरा नया मकान न बन जावेगा उतने दिन मैं नैहर में रहूंगी। आप के साथ मेरी इस जन्म में साक्षात् होने की संभावना नहीं है। इस से मैं सन्तुष्ट हूं, आप भी सन्तुष्ट होंगे इसमें मुझको संदेह नहीं है।

आप की दूसरी चीठी आने तक मैं यहां रही।

यथा समय चीठी गोविन्दलाल के हाथ में पड़ी—कैसा भयानक पत्र! कोमलता का नामतक नहीं। गोविन्दलाल ने भी लिखा था। छ बरस बाद लिखता हूं, पर भ्रमर की चीठी में इस तरह की एक बात भी न थी। वही भ्रमर!

गोविन्दलाल ने चीठी पढ़कर उत्तर लिखा—"मैं हरिद्राग्राम में न आऊंगा। जिस से हमारा यहां दिन पात होवे, उसी अनुसार मासिक भिक्षा हम को यहीं भेजा करना।"

भ्रमर ने लिखा—"महीने महीने आप को पांच सौ रुपया भेजूंगी। और अधिक भेज सकती हूं, पर अधिक रुपया भेजने से उसके व्यर्थ व्यय होने की संभावना है। हमारा एक और निवेदन है—साल साल जो रुपया जमा होता है—

आप के यहां आकर भोग करने से ही अच्छा जान पड़ता है। हमारे लिये आप देश त्याग न कीजिये—हमारा दिन पूरा हो आया है।"

गोविन्दलाल कलकत्ते ही रहे। दोनों ने ही समझा अच्छा हुआ।

—:*:—

# चतुर्दश परिच्छेद ।

—:o*o:—

## सातवां साल ।

—:::o*o:::—

वास्तव में भ्रमर का दिन पूरा हो गया था। बहुत दिन से भ्रमर की संघातिक पीड़ा चिकित्सा से दबी हुई थी। पर रोग ने अब चिकित्सा को उतना न माना। आज कल भ्रमर का शरीर दिन दिन क्षय होने लगा।

अगहन के महीने में भ्रमर ने चारपाई पकड़ी। फिर चारपाई से न उठी। माधवीनाथ आप आकर पास रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी हरिद्राग्राम में आकर भगिनी की अन्तिम शुश्रूषा करने में तत्पर हुई।

रोग ने चिकित्सा न मानी। पूस का महीना इसी तरह गया। माघ के महीने में भ्रमर ने दवाखाना छोड़ दिया। दवाखाना अब वृथा था यामिनी से कहा "जी जी अब मैं दवा न खाऊंगी

आगे फागुन का महीना है, चाहती हूं कि जिस में इसी फागुन महीने की पूर्णिमा की रात में मैं मरूं । जो जी देखना—जिस में फागुन महीने की पूर्णिमा की रात चली न जावे । जो देखना कि पूर्णिमा की रात मैं मांगा चाहती हूं—तो मुझको कोई एक प्राणनाशिनी गोली देने में चूकना न ! रोग से हो, किसी गोली से हो, फाल्गुन की उंजेली रात में मैं मरना चाहती हूं । जीजी यह बात याद रखना । "

यामिनी रोई । पर भ्रमर ने फिर दवा न खायी । औषध न खाती थी, इस से रोग की शान्ति न थी । पर भ्रमर दिन दिन प्रफुल्ल चित्त होने लगी ।

इतने दिनों पीछे भ्रमर ने फिर आमोद प्रमोद आरंभ किया । छ बरस के बाद यही प्रथम आमोद प्रमोद । बुझने के पहले दीवा हंसा ।

जितना दिन आने लगा—अंतिमकाल दिन दिन जितना निकट होने लगा—भ्रमर उतनी ही स्थिर, प्रफुल्ल, हास्य मूर्ति । अन्त में वही भयंकर अन्तिम दिन उपस्थित हुआ । भ्रमर ने पौरजनों का चांचल्य और यामिनी का रोदन देखकर समझा, आज समझती हूं दिन पूरा हुआ । शरीर की यंत्रणा को भी उन्हों ने उसी प्रकार का अनुभूत किया । तब भ्रमर ने यामिनी से कहा,

" आज शेष दिन है । "

यामिनी रोई । भ्रमर बोली,

" जीजी—आज शेष दिन—हमारी कुछ भिक्षा है—बात रखना । "

यामिनी रोने लगी। बोली नहीं।

भ्रमर बोली, "हमारी एक भिक्षा है—आज न रोना—हमारे मरने पर रोना—मैं मना करने न आऊंगी—पर आज तुम्हारे साथ जो दो एक बातें कह सकूं—बिना अटक कह कर मरना चाहती हूं—इच्छा ऐसी ही होती है।"

यामिनी आंखों के आंसू को पोछ कर पास बैठी—पर गला रूंध जाने से कुछ कह न सकी।

भ्रमर कहने लगी—"हमारी एक और भिक्षा है—तुम्हें छोड़ कर और कोई यहां न आवे। समय पर सब के साथ साक्षात् करूंगी—पर इस घड़ी और कोई न आवे। तुम से और कुछ मैं न कह सकूंगी।"

यामिनी और कबतक रोना रोक सकेगी?

धीरे धीरे रात होने लगी। भ्रमर ने पूछा "जीजी उंजेली रात है?"

यामिनी ने खिड़की खोल कर देख कर कहा, "उज्ज्वल चांदनी निकली हुई है।"

भ्रमर। तो तमाम खिड़कियों को खोल दो—जिस से मैं निर्मल चांदनी देख कर मरूं। देखो तो इस खिड़की के नीचे जो पुष्पवाटिका है, उस में फूल फूले हुये हैं कि नहीं?

उन्हीं खिड़कियों पर खड़ी होकर प्रभात काल भ्रमर—गोविन्द लाल के साथ कथोपकथन करती। आज सात साल हुआ कि भ्रमर उन खिड़कियों की ओर गई तक नहीं—उन खिड़कियों को खोला तक नहीं।

यामिनी ने कष्ट से उस खिड़की को खोल कर कहा, "क्यों यहां तो पुष्पवाटिका नहीं है, इस ठौर तो केवल घास फूस का बन दीखता है, और दो एक मरे मुरझाये हुये पेड़ हैं—उन में फूल पत्ता कुछ नहीं है। "

भ्रमर बोली, "सात साल हुआ कि, वहां पुष्पवाटिका थी। बेमरम्मत रहने कारण वह सत्यानाश हुई है। हम ने सात साल से उस को देखा तक नहीं। "

बहुत काल तक भ्रमर चुप हो रही, पीछे भ्रमर ने कहा, "जहां से हो जीजी आज हम को फूल मंगा देना होगा, देखती हो नहीं कि आज हमारी फिर फूलशय्या है ? "

यामिनी की आज्ञा पाकर दास दासी ने बहुत फूल ला दिया। भ्रमर बोली, "फूल हमारे बिछौनों पर छींट दो—आज हमारी फूलशय्या है। "

यामिनी ने वही किया। तब भ्रमर की आंखों से जलधारा बहने लगी। यामिनी बोली, "रोती क्यों हो भ्रमर ? "

भ्रमर बोली, "जीजी एक बड़ा दुख जो मैं रह गया। जिस दिन वह मुझ को छोड़ कर काशी गये, उसी दिन हाथ जोड़ कर रोते रोते मैं ने देवतों से भीख मांगी थी, कि एक दिन जिस में उन के साथ साक्षात् होवे। स्पर्द्धा कर के मैं ने कहा था, कि मैं जो सती हूंगी तो फिर उन से मेरी भेंट होगी। क्यों फिर तो देखा देखी नहीं हुई। आज के दिन—मरने के दिन, जीजी, जो एकबार मैं उन को देख पाती ! तो एक दिन के लिये, जीजी, सात बरस का दुख भूल जाती ! "

यामिनी बोली, "देखोगी ?" भ्रमर मानों बिजली की तरह चौंक उठी—बोली—" किस की बातें कहती हो ? "

यामिनी ने स्थिर भाव से कहा, " गोविन्दलाल की। वह यहां हैं—बाबा ने तुम्हारी बीमारी का समाचार उन को दिया था—सुन कर तुम को एक बार देखने के लिये वह आये हैं। आज पहुँचे हैं। तुम्हारी अवस्था देख कर उस से अब तक मैं इस बात को तुम से न कह सकी—वह भी साहस कर के न आ सके। "

भ्रमर रो कर बोली, " जीजी एक बार देखना चाहती हूं—इस जन्म में और एक बार देखना चाहती हूं ! इस समय और एक बार देखाओ !

यामिनी उठ गई। थोड़ी देर बाद निःशब्द पाद विक्षेप करते हुए गोविन्दलाल ने—सात बरस पीछे अपने शय्यागृह में प्रवेश किया।

दोनों जन ही रोते थे। एक जन भी कुछ न कह सका।

भ्रमर ने स्वामी को पास आकर बिछौने पर बैठने का इशारा किया। गोविन्दलाल रोते रोते बिछौने पर बैठे। भ्रमर ने उन को और पास आने को कहा—गोविन्दलाल और पास आ गये। तब भ्रमर ने अपने करतल के निकट स्वामी के चरण को पाकर, उसी चरणयुगल को छू कर पदरेणु ले कर माथे पर चढ़ाया। बोली, " आज हमारे सब अपराधों को क्षमा कर के, आशीर्वाद देना कि जिस में दूसरे जन्म में मैं सुखी होऊं। "

गोविन्दलाल कुछ न बोल सके। भ्रमर का हाथ अपने हाथ में उठा लिया। उसी प्रकार हाथ में हाथ रहा। बहुत काल तक रहा। भ्रमर ने चुप चाप प्राण त्याग किया।

—:::*:::—

## पञ्चदश परिच्छेद।

भ्रमर मर गई। यथा रीति उस का दाह हुआ। दाह कर के, आकर गोविन्दलाल मकान में बैठे। घर जब से वह फिर कर आये, उस काल से अब तक किसी से कुछ बात चीत न की।

फिर रात बीती। भ्रमर की मृत्यु के पर दिन जिस प्रकार सूर्य प्रति दिन उदय हुआ करता, उसी प्रकार उदय हुआ। वृक्षों के पत्ते छायालोक द्वारा समुज्ज्वल हुए। सरोवर में क्षुद्र-वारि क्षुद्रवीचि विक्षेप कर के ज्वलित होने लगा। आकाश का कृष्णवर्ण मेघ श्वेत हुआ—भ्रमर मानो मरी नहीं। गोविन्दलाल बाहर हुये।

गोविन्दलाल ने दो स्त्रियों को प्यार किया था। भ्रमर को और रोहिणी को। रोहिणी मरी। भ्रमर मरी। रोहिणी के रूप से आकृष्ट हुये थे—यौवन की अतृप्त रूप तृष्णा को शान्त न कर सके। भ्रमर को छोड़ कर रोहिणी को ग्रहण किया। रोहिणी को ग्रहण कर के ही समझा, कि यह रोहिणी भ्रमर नहीं है—यह रूप तृष्णा है, यह स्नेह नहीं है—यह भोग है, यह सुख नहीं है—यह मन्दारघर्षण पीड़ित वासुकि निश्वास निर्गत हलाहल

है—यह धन्वन्तरि भण्डार निःसृत सुधा नहीं है। समझ सके थे, कि इस हृदय सागर को, मथने पीछे, फिर मथ कर जिस हलाहल को हम ने ग्रहण किया है, वह छोड़ा नहीं जा सकता, उस को अवश्य पान करना होगा। भगवान् नीलकंठ की भांति गोविन्दलाल ने उस विष को पान किया। भगवान् नीलकंठ के कंठ के विष की भांति वह विष उन के कंठ के सौंध संलग्न हुआ। वह विष न पचाया जा सकता न उगल दिया जा सकता। किन्तु तब वह पूर्व परिज्ञात स्वाद विशुद्ध भ्रमर प्रणय सुधा—स्वर्गीय गंधयुक्त, चित्तपुष्टिकर, सब रोगों की औषध स्वरूप, दिन रात स्मृतिपथ में जागृत रहने लगी। जिस काल प्रसादपुर में गोविन्दलाल रोहिणी के संगीत स्रोत में मग्न थे, उसी समय भ्रमर उन के चित्त में प्रबल प्रताप युक्ता अधीश्वरी—भ्रमर भीतर, रोहिणी बाहर। उस काल भ्रमर अप्राप्यणीया, रोहिणी अत्याज्या, तब भी भ्रमर भीतर, रोहिणी बाहर। इसी से रोहिणी अति शीघ्र मरी। जो कोई इस बात को न समझ सके, तो मैं ने वृथा यह आख्यायिका लिखी।

जो उस समय गोविन्दलाल, रोहिणी की यथा विहित व्यवस्था करके स्नेहमयी भ्रमर के पास हाथों को जोड़ कर आकर खड़ा होता, कहता, "मुझ को क्षमा करो,—मुझ को फिर हृदयप्रान्त में स्थान दान करो" जो कहता, "मुझ में ऐसा गुण नहीं है, जिस से तुम मुझ को क्षमा करो, किन्तु तुम्हारे में तो अनेक गुण हैं, तुम अपने गुण से मुझ को क्षमा करो" समझ पड़ता है ऐसी दशा में भ्रमर उन को क्षमा करती। क्योंकि रमणी क्षमामयी, दयामयी,

स्नेहमयी—रमणी ईश्वर की कीर्ति की चरमोत्कर्ष है, देवता की छाया है, पुरुष देवता की सृष्टिमात्र है। स्त्री आलोक, पुरुष छाया। आलोक क्या छाया का त्याग कर सकता है?

गोविन्दलाल यह न कर सके। कुछ अहंकार—पुरुष जाति अहंकार से परिपूर्ण। कुछ लज्जा—पापकारी को लज्जा ही दंड है। कुछ भय—पाप सहज ही पुण्य का सामना नहीं कर सकता। भ्रमर के पास अब फिर मुख दिखलाने का पथ नहीं रहा। गोविन्दलाल फिर अग्रसर न हो सके। तिस पीछे गोविन्द-लाल हत्याकारी। तब गोविन्दलाल का आशा भरोसा सब दूर हुआ। अँधेरा उँजेले का सामना न कर सका।

किन्तु तब भी, वही पुनः प्रज्वलित, दुर्निवार, दाहकारी भ्रमर दर्शन की लालसा, बरस बरस, मास मास, दिन दिन, घड़ी घड़ी, पल पल, गोविन्दलाल को दाह करने लगी। (किस ने ऐसा पाया था? किस ने ऐसा खोया था?) भ्रमर ने भी दुख पाया था, गोविन्दलाल ने भी दुख पाया था, पर गोविन्दलाल से भ्रमर सुखी थी। गोविन्दलाल का दुख मनुष्यदेह में असह्य था। भ्रमर का सहायी था—यम सहायी। गोविन्दलाल के लिये यह सहाय भी न था।

फिर रात बीती—फिर सूर्य्य के आलोक से जगत् हंसा। गोविन्दलाल घर से बाहर हुये। रोहिणी को गोविन्दलाल ने अपने हाथों वध किया था। भ्रमर को भी प्रायः अपने हाथ से ही वध किया; इसी लिये सोचते सोचते गोविन्दलाल बाहर हुये।

हम लोग नहीं जानते कि उस रात को गोविन्दलाल ने किस प्रकार बिताया था। समझ पड़ता है रात बड़ी भयानक बीती थी।

दरवाज़ा खोलते ही माधवीनाथ के साथ उन की भेंट हुई। माधवीनाथ उन को देख कर, उन के मुख की ओर ताकते ही रह गये—मुख पर मनुष्य के साध्यातीत रोग की छाया थी।

माधवीनाथ उन से कुछ न बोले। माधवीनाथ ने मन ही मन प्रतिज्ञा की थी। इस जन्म वह गोविन्दलाल से फ़िर न बोलेंगे। बिना कुछ कहे ही माधवीनाथ चले गये।

गोविन्दलाल घर में से निकल कर भ्रमर के शय्यागृह के नीचेवाले उसी पुष्पोद्यान में गये। यामिनी ने ठीक ही कहा था कि वहां अब पुष्पोद्यान न रह गया था। सभी घास पात और गुल्मसमूह के जंगलों से पूरित हो गया था—दो एक अमर पुष्प वृक्ष उसी तृणराजि के जंगल में अब मृतवत् दीख पड़ते थे—किन्तु उन में फल फिर न फले। गोविन्दलाल बहुत काल तक उसी घास फूस के जंगल में घूमे। दिन अधिक चढ़ आया—घाम बहुत ही तीखा हुआ। गोविन्दलाल घूम घूम कर श्रान्त होकर अंत में वहां से बाहर हुये।

वहां से गोविन्दलाल किसी से बिना कुछ कहे, किसी के मुख की ओर बिना दृष्टिपात किये, पुष्करिणी वारुणी के किनारे गये। दोपहर का समय हुआ। तीव्ररौद्र के तेज से वारुणी का गंभीर कृष्णोज्ज्वल वारिराशि ज्वलित हो रहा था—स्त्री पुरुष बहु संख्यक लोग घाट पर स्नान कर रहे थे—लड़के सब नील जल में स्फटिक चूर्णमिश्रण करते हुये पैर रहे थे। गोविन्दलाल को लोगों की उन्मत्त भोड़भाड़ भली न मालूम हुई। घाट से जहां वारुणी के किनारे, कनका वही नाना पुष्परंजित नन्दनतुल्य पुष्पोद्यान था, गोविन्द-

लाल उसी ओर गये। पहले ही देखा रेलिङ्ग टूट गई है—उस लौहनिर्मित विचित्र द्वार के बदले में बांस का बेड़ा था। भ्रमर ने गोविन्दलाल के लिये सब सम्पत्ति की यत्न के साथ रक्षा की थी। पर इस उद्यान की कुछ रक्षा और यत्न नहीं की। एक दिन यामिनी ने उक्त उद्यान की बात उन से कही। भ्रमर ने कहा, 'मैं यम के घर चली' हमारा वह नन्दन कानन भी ध्वंस हो। "जीजी! पृथ्वी में जो हमारा स्वर्ग था—उस को अब मैं किस को दे जाऊंगी?"

गोविन्दलालने देखा फाटक नहीं है। रेलिङ्ग गिर गई है। पैठकर देखा—फूल के पौधे नहीं रहे—केवल डाभ का जंगल है। रेड़ों के पेड़, भांट फूल के पौधे, और अरुसे के वृक्षों से बाग भरा-हुआ था। लतामण्डप सब टूट फूटगये थे—पत्थर की सब मूर्तियां दो दो तीन तीन टुकड़े होकर पृथ्वी में धूल भरी पड़ी हुई थीं—उन पर लतायें फैल गई थीं—कोई कोई टूट कर वैसी ही टूटी फूटी अवस्था में खड़ी थीं। प्रमोदभवन की छत गिर गई थी; झिलमिली, खिड़की इत्यादि को न जाने कौन उखाड़ लेगया था—तमाम संगमर्मर के टुकड़ों को हर्म्यतल में से निकाल कर लोग उठा ले गये थे। उस बाग में फिर फूल न फूले, फल न फले, मैं अनुमान करता हूं सुन्दर हवा भी फिर वहां न चली।

एक भग्न पत्थल की मूर्ति के पैरों के पास गोविन्दलाल बैठे। धीरे धीरे दोपहर का समय हुआ। गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे। सूर्य्य की तीक्ष्ण किरनों के तेज से उन का मस्तक गरम हो गया। पर गोविन्दलाल ने कुछ अनुभव न किया। उन का प्राण निकल

लाल उसी ओर गये। पहले ही देखा रेलिङ्ग टूट गई है—उस लौहनिर्मित विचित्र द्वार के बदले में बांस का बेड़ा था। भ्रमर ने गोविन्दलाल के लिये सब सम्पत्ति की यत्न के साथ रक्षा की थी। पर इस उद्यान की कुछ रक्षा और यत्न नहीं की। एक दिन यामिनी ने उस उद्यान की बात उन से कही। भ्रमर ने कहा, 'मैं यम के घर चली' हमारा वह नन्दन कानन भी ध्वंस हो। "जीजी! पृथ्वी में जो हमारा स्वर्ग था—उस को अब मैं किस को दे आऊंगी?"

गोविन्दलालने देखा फाटक नहीं है। रेलिङ्ग गिर गई है। पैठकर देखा—फूल के पौधे नहीं रहे—केवल डाभ का जंगल है। रेड़ों के पेड़, भांट फूल के पौधे, और अरुसे के वृक्षों से बाग भरा-हुआ था। लतामण्डप सब टूट फूटगये थे—पत्थर की सब मूर्तियां दो दो तीन तीन टुकड़े होकर पृथ्वी में धूल भरी पड़ी हुई थीं—उन पर लतायें फैल गई थीं—कोई कोई टूट कर वैसी ही टूटी फूटी अवस्था में खड़ी थीं। प्रमोदभवन की छत गिर गई थी; झिलमिली, खिड़की इत्यादि को न जाने कौन उखाड़ लेगया था—तमाम संगमर्मर के टुकड़ों को हर्म्यतल में से निकाल कर लोग उठा ले गये थे। उस बाग में फिर फूल न फूले, फल न फले, मैं अनुमान करता हूं सुन्दर हवा भी फिर वहां न चली।

एक भग्न पत्थल की मूर्ति के पैरों के पास गोविन्दलाल बैठे। धीरे धीरे दोपहर का समय हुआ। गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे। सूर्य्य की तीक्ष्ण किरनों के तेज से उन का मस्तक गरम हो गया। पर गोविन्दलाल ने कुछ अनुभव न किया। उन का प्राण निकल

रहा था। रात से ही केवल भ्रमर और रोहिणी की चिन्ता थी। एक बार भ्रमर, फिर रोहिणी, फिर भ्रमर, फिर रोहिणी। चिन्ता करते करते आंखों भ्रमर को देखने लगे। सामने रोहिणी को देखने लगे। जगत् भ्रमर रोहिणी मय हो गया। उसी उद्यान में बैठे बैठे हो एक वृक्ष को भ्रमर समझ कर भ्रम होने लगा। प्रत्येक वृक्ष की छाया में रोहिणी बैठी हुई दीखने लगी। यह भ्रमर खड़ी थी—कहां गई—यह रोहिणी आई। फिर न जाने कहां चली गई। प्रति शब्दों में रोहिणी और भ्रमर के कंठ की ध्वनि सुनने लगे। घाट पर नहानेवाले बातचीत करते हैं। उस को सुन कर बोध हुआ कि भ्रमर बोल रही है। कभी बोध होता रोहिणी बोलती है। कभी बोध हुआ वे दोनों आपस में बातचीत कर रही हैं। सूखा पत्ता गिरता है, बोध हुआ भ्रमर आती है। वन में वन के कीट पतंग उड़ते हैं, बोध हुआ रोहिणी भाग रही है। पवन लगने से डालियां हिलती हैं, बोध हुआ भ्रमर सांस ले रही है—कोयल के बोल उठने पर, जान पड़ा कि रोहिणी गान कर रही है। जगत् भ्रमर रोहिणी मय हुआ।

वेला दोपहर—ढाई पहर हुआ। गोविन्दलाल वहीं रहे—उसी भग्नमूर्ति के पैरों के पास—उसी भ्रमर रोहिणी मय जगत् में। वेला तीन पहर—साढ़े तीन पहर हुआ। अस्नात अनाहारी गोविन्दलाल वहीं, उसी भ्रमर रोहिणी मय जगत् में—उसी भ्रमर रोहिणी मय अनलकुण्ड में। संध्या हुई—पर गोविन्दलाल न उठे—उनको सुधि न हुई। उनके गांव घर के लोगों ने उनको तमाम दिन न देख कर समझा था यह कलकत्ते चले गये, इस

लिये उनकी अधिक खोज किसी ने न की । उसी ठौर संध्या हुई, कानन में अंधकार हुआ। आकाश में तारे निकले । पृथ्वी नीरव हुई । गोविन्दलाल वहीं के वहीं ।

अकस्मात् उसी अंधेरे, सुनसान, सन्नाटे, में गोविन्दलाल का उन्मादग्रस्त चित्त विषम विकार को प्राप्त हुआ । उन्हों ने साफ़ साफ़ रोहिणी कि कंठ के स्वर को सुना । मानों ऊंची आवाज़ से रोहिणी कहती है—

"इसी ठौर !"

इस दम गोविन्दलाल को यह बात याद न रही कि रोहिणी मर चुकी है । इसलिये उन्हों ने पूछा,

"इसी ठौर, क्या ?"

मानों सुना, कि रोहिणी कहती है,

"इसी समय !"

गोविन्दलाल ने धीरे से कहा, "इसी ठौर, इसी समय, क्या रोहिणी ?"

मानसिक व्याधिग्रस्त गोविन्दलाल ने सुना, कि फिर रोहिणी ने उत्तर दिया—

"इसी ठौर, इसी समय, इसी जल में"

'मैं डूबी थी !"

गोविन्दलाल ने अपने मानस से उत्पन्न हुई इस वाणी को सुन कर पूछा,

"मैं भी डूबूं ?"

फिर व्याधिजनित उत्तर सुना,

हां! आओ। भ्रमर स्वर्ग में बैठी हुई बुला रही है, वह अपने पुण्यबल से हमलोगों का उद्धार करेगी।

"प्रायश्चित्त करो, मरो।"

गोविन्दलाल उठे। उद्यान से निकल कर वारुणी के घाट पर आये। वारुणी के घाट पर आकर सीढ़ियों से उतरे। सीढ़ियों से उतर कर जल में उतरे। जल में उतर कर स्वर्गीय सिंहासनारूढ़ा ज्योतिर्म्मयी भ्रमर की मूर्त्ति का मन ही मन ध्यान करते हुये डूब गये॥

दूसरे दिन प्रातःकाल जहां सात बरस पहले उन्हों ने रोहिणी का मृतदेह पाया था। उसी ठौर उनका मृतदेह पाया गया॥

॥ इति॥

## परिशिष्ट।

—:*:—

गोविन्दलाल की सम्पत्ति को उनके अप्राप्त वयस भांजे शचीकान्त ने पाया। कई बरसों पीछे शचीकान्त सयाना हुआ।

शचीकान्त जब सयाना हुआ तब प्रति दिन उसी शोभाहीन कानन में—जहां पहले गोविन्दलाल का प्रमोद उद्यान था, और अब घना जंगल खड़ा था—घूमने आता।

शचीकान्त ने उस दुखमय कहानी को विस्तार के साथ सुना था। प्रतिदिन उसी ठौर वह घूमने आता, और उसी ठौर बैठ कर उन बातों को बिचारता बिचार कर फिर उसी ठौर उसने उद्यान-

बनवाना आरंभ किया। फिर विचित्र रेलिङ् निर्माण कराया—पुष्करिणी में उतरने के लिये मनोहर कृष्ण प्रस्तर निर्मित सीढ़ियां बनवाईं। फिर कियारियां कटाकर सुन्दर २ वृक्ष लगवाये। किन्तु रंगदार फूलों के पौधे नहीं बैठाले। देशी फूल के पेड़ों में बकुल और कामिनी। और विदेशी फूलों में साइप्रस और उइलो। प्रमोदभवन के बदले में एक छोटा सा मंदिर निर्माण कराया। मन्दिर में किसी देव देवी की स्थापना नहीं की। बहुत धन लगा कर भ्रमर की सोने की एक मूर्त्ति बनवा कर उसी मन्दिर में स्थापन किया। स्वर्णप्रतिमा के पैरों के पास खुदवा कर अक्षरों में लिखा—

"जो सुख में, दुख में, दोष में,
गुण में, भ्रमर के समान
होगा, मैं उसी को
यह स्वर्ण-प्रतिमा
दान करूंगा"

॥ शुभम् भूयात् ॥

# उपसंहार।

प्रिय पाठकगण !

आप ने इस उपन्यास को आद्योपान्त पढ़ा, कहिये इस समय आप के हृदय का भाव कैसा है ? जब मैं ने इस उपन्यास के दूसरे भाग को पढ़ना आरंभ किया था, तो पल पल दुःख-पूर्ण हृदय में यही इच्छा होती थी, कि कब उस पृष्ठ-पंक्ति को पढ़ कर दग्ध हृदय को सुशीतल करूंगा, जिस में अभागे गोविन्दलाल और चिरदुःखिनी अबला भ्रमर का प्रिय सम्मिलन हुआ है । किन्तु हाय ! यह आशा पूर्ण नहीं हुई । दुःखिनी भ्रमर की हृदयविदारक मृत्यु और अभागे गोविन्दलाल की कष्टप्रद जीवनपरित्यागकहानी पढ़ कर, इस उपन्यास को शेष करना पड़ा । दुःखपूर्ण हृदय भग्न और विदीर्ण हो गया !

यह उपन्यास 'दुःखान्त' है । ग्रन्थकार ने जिस उद्देश्य से इसको लिखा है, उसको उन्हों ने बहुत ही उत्तमता के साथ अपनी ओजस्विनी भाषा में पूरा किया है । स्त्री पुरुष के परस्पर के विरोध से किस प्रकार सोने का संसार छारखार होता है, इस विषय का इस उपन्यास में उत्कृष्ट निदर्शन है। ग्रन्थकार ने जिस योग्यता के साथ इस विषय को पाठकजनों के हृदय में अङ्कित किया है, [illegible]

और यही कारण है कि उनको यह उपन्यास दुःखान्त करना पड़ा।

प्रत्येक महत् पुरुष का, जो किसी विषय के लिखने के लिये लेखनी ग्रहण करता है, किंवा दश सत्पुरुषों के सम्मुख किसी विषय के संभाषण के लिये अग्रसर होता है यही उद्देश्य रहता है, कि कश्चित ऐसा विषय निरूपण किया जावे, जिस से जनसमाज का उपकार हो। मानवजाति जिसको श्रवण और मनन कर के किसी सत्पथ को अवलम्बन करे। किन्तु मार्ग इस के दोही हैं, रोचक, और भयानक। किसी विषय को इस प्रकार वर्णन करना, जिसमें पढ़ने सुननेवालों को उस कार्य्य के करने की ओर रुचि होवे, रोचक कहलाता है। ऐसेही किसी उपाख्यान अथवा केवल वाक्चातुर्य्य के सहारे ही किसी ऐसे विषय का दरसाना, जिस से बुरे कामों से विराग उत्पन्न हो कर हृदय में भय का संचार होवे, भयानक कहलाता है। इस उपन्यास-प्रणेता ने दूसरे पथ को अवलम्बन किया है। और बहुत ही सुन्दरता के साथ कुमार्ग गामियों को सतर्क करना चाहा है।

किन्तु इस उपन्यास के विषय में मुझ को कुछ वक्तव्य है। और यह वृहत् भूमिका केवल इसी लिए लिखी गई है। वह यह कि इस उपन्यास में भ्रमर की जितनी अधिक तेजस्विता वर्णन की गई है वह असह्य है। इस उपन्यास के प्रणेता प्रातःस्मरणीय अक्षेय श्रीयुत राय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय परिमार्जित बुद्धि के मनुष्य थे। अंगरेज़ी में उन्हों ने बी० ए० पास किया था,

पाश्चात्य रीति नीति से बहुत कुछ अभिज्ञता रखते थे। चिर काल तक डिप्टीकलक्टरी पद को भूषित कर के स्वदेश विषय में भी बहुत कुछ अनुभव लाभ किया था। अतएव कहा जा सकता है कि भ्रमर की तेजस्विता जिसको उन्हों ने लिपिबद्ध की है, उस की इस उपन्यास के लिये बहुत ही आवश्यकता थी। क्योंकि यदि ऐसा न किया जाता, तो जिस उद्देश्य से उन्हों ने इस उपन्यास को लिखा है, उस की सिद्धि में वह इतना लब्धकाम न हो सकते। इस के अतिरिक्त यदि भ्रमर का स्वभाव इतना तेजस्वी न होता, तो पति के अभाव और वियोगावस्था में वह इतनी कष्टसहिष्णु न होती। और न उस का आन्तरिक अनुराग इस प्रकार का रहता।

मैं भी इस बात को मानता हूं। भ्रमर के स्वभाव का तेजस्वी होना इस उपन्यास के लिये आवश्यक है। पर मेरा विरोध केवल उस की अधिक तेजस्विता से है। भ्रमर अपने पहले पत्र में गोविन्दलाल को लिखती है "जितने दिन तुम भक्ति के योग्य, उतने दिन तुम्हारे में हमारी भी भक्ति, जितने दिन तुम विश्वासी, उतने दिन तुम्हारे में हमरा भी विश्वास, अब तुम्हारे ऊपर न हमारी भक्ति है, न विश्वास। तुम्हारे दर्शनसे अब मुझ को सुख नहीं है।" भगवन्! क्या यह एक आर्य्यललना का पत्र है! क्या कभी आर्य्य-ललना अपने एक मात्र जीवन प्राण पूज्यपति को ऐसा लिख सकती है! विश्वास नहीं होता। भ्रमर का दूसरा पत्र और विलक्षण है उस में उसने आर्य्य-नारीजीवन के एकमात्र स्वामी पति को 'सेविका' पाठ नहीं लिखा। यह ममता कैसी! कैसी और विचित्रता है। भ्रमर अपने पति के हृदय-विद्ध्वंसि अति तीव्र

वाक्यों के उत्तर में लिखती है—"आप के आने के लिये सब बन्दोबस्त कर के मैं बाप के यहां जाऊंगी, जितने दिन हमारा नया मकान न बन जावेगा, उतने दिन नैहर में रहूंगी, आप के साथ हमारी इस जन्म में साक्षात् होने की संभावना नहीं है, इस से मैं सन्तुष्ट हूं।" प्रिय पाठक सच कहना यह वाक्य आप को कैसे लगे? क्या इस से भ्रमर के पवित्र आर्य्यनारी जीवन में भीषण स्वभावा पाश्चात्य नारियों के जीवन की झलक नहीं पाई जाती है? वास्तव बात तो यह है कि पाश्चात्य रीति नीति विमुग्ध हमारे माननीय ग्रंथकार ने एक आर्य्यललना के चरित्र का फोटो खींचने में यूरोपीय कुलकामिनियों की तेजस्विता से काम लिया है। अन्यथा भ्रमर का स्वभाव इतना तेजस्वी न वर्णित होता॥

प्रथम खंड के तीसरे परिच्छेद के आदि में उपन्यास कर्त्ता ने लिखा है, 'हमारा विश्वास है कि गोविन्दलाल की माता जो पक्की गृहिणी होतीं, तो फूंक मात्र से यह काला मेघ उड़ जाता।' मैं कहता हूं भ्रमर का स्वभाव जो धीर गंभीर और नम्र होता, तो कदापि यह कुफल न फलता। भ्रमर का स्वभाव उद्धत, तीव्र, और क्रोधन वर्णित हुआ है, बात बात में उलझ जाना, पीठ ऐंठना, रूठजाना उस की प्रकृति हो गई थी। और यही कारण है कि गोविन्दलाल जब सत्पथ से च्युत हुआ, तो वह फिर उस को सुमार्ग पर न ला सकी। मेरा विश्वास है कि यदि स्त्री योग्य हो तो उस का पति कभी कुपथगामी नहीं हो सकता, और यदि हो भी जावे तो वह उस के संसार को नष्ट भ्रष्ट नहीं होने देती। भ्रमर में यह गुण नहीं था, इसी लिये उस का सोने का संसार धूल में मिल गया॥

हो, स्त्री का एक मात्र आराध्य देवता हो है।" पर एक बात तुम्हीं हो, पृथ्वी के किसी भाग में नारीरत्न धारण कर के सदुपदेश के अनुकूल आचरण करिये, यदि कहीं कोई तुम्हीं हो। जब तक तुम लोगों में यह गुण विराजमान रहेगा, तब तक तुम्हारी हृद्य सुख्याति से दिशा प्रतिध्वनित होती रहेगी, तब तक भारत का मुख उज्ज्वल रहेगा, आर्य्यगण का शिर सर्व पृथ्वीमण्डल में उन्नत रहेगा। अतएव आशा है 'कृष्णकान्त दानपत्र' को पढ़ कर आपलोग समस्त विषय में भ्रमर के तुल्य होने की चेष्टा करेंगी। किन्तु भ्रमर की तेजस्विता और स्वभाव अपरिपक्वता पर भूल कर भी दृष्टिपात न करेंगी। अन्यथा जिस उद्देश्य से यह उपन्यास लिखा गया है किंवा अनुवादित है कदापि सफल न होगा। अधिक लिख कर इस लेख बढ़ाना व्यर्थ है॥

२१—८—९७ अनुवादक।